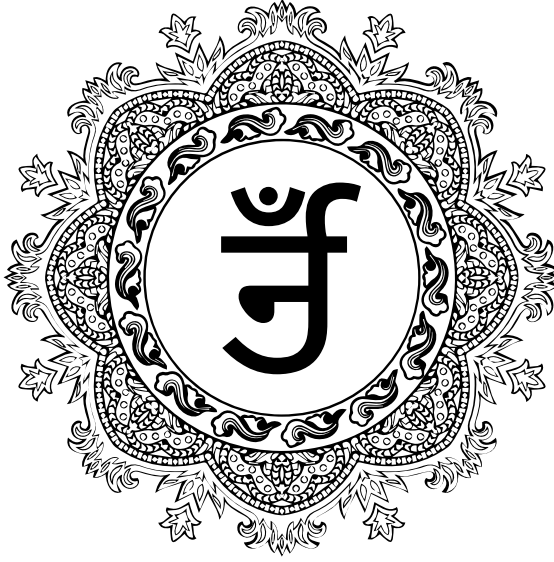




क्षत्रचूडामणिः

आचार्य श्री वादीभसिंह



क्षत्रचूडामणिः

आचार्य श्री वादीभसिंह

आचार्य वादीभसिंह

जीवन-परिचय- 'वादीभसिंह' आचार्य का मूल नाम नहीं है, किन्तु एक उपाधि है, जो वादियों के विजेता होने के कारण उन्हें प्राप्त हुई थी। उपाधि के कारण ही इन्हें वादीभसिंह कहा जाने लगा।

ओडमदेव नाम से पण्डित के. भुजबली शास्त्री ने अनुमान लगाया है कि ये वादीभसिंह जन्मतः ओडेम या उड़िया सरदार होंगे।

आदिपुराण के जिनसेनाचार्य ने वादीभसिंह का स्मरण करते हुए उन्हें उच्च कोटि का कवि, वाग्मी और गमक बतलाया है। पार्श्वनाथचरित के रचयिता वादिराजसूरि ने भी वादीभसिंह का उल्लेख किया है और उन्हें स्याद्वाद की गर्जना करनेवाला तथा कवियों का अभिमान चूर-चूर करनेवाला बतलाया है।

इन उल्लेखों से वादीभसिंह एक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान ज्ञात होते हैं। उनकी स्याद्वादसिद्धि ग्रन्थ उन्हें उच्चकोटि का दार्शनिक सिद्ध करती है। गद्य चिन्तामणि के अन्तिम दो पद्यों से स्पष्ट है कि उनका नाम ओडम देव था।

वादीभसिंह अपने समय के प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् आचार्य थे। उनके कवित्व और गमकत्वादि की प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की है। वे तार्किक विद्वान् थे। मल्लिषेण प्रशस्ति में मुनि पुष्पसेन को आचार्य अकलंकदेव का सधर्मा लिखा है और वादीभसिंह ने उन्हें अपना गुरु बतलाया है। इससे स्पष्ट है कि वादीभसिंह आचार्य अकलंक देव के उत्तरवर्ती विद्वान् हैं। वादीभसिंह का समय ईसा की 8वीं शताब्दी का अन्त और 9वीं शताब्दी का पूर्वार्ध जान पड़ता है।

रचना-परिचय- वादीभसिंह की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं-

1. **स्याद्वादसिद्धि-** इस ग्रन्थ में 14 अधिकार हैं। इन अधिकारों में अनुष्टुप् छन्द में स्याद्वाद विषय का अच्छा वर्णन है। यद्यपि यह ग्रन्थ अपूर्ण है, क्योंकि इसके अन्तिम प्रकरण में साढ़े छह कारिकाएँ ही पायी गयी हैं। इस प्रकरण की अपूर्णता के कारण कोई पुष्पिका वाक्य भी उपलब्ध नहीं होता।

2. **क्षत्रचूडामणि-** यह उच्चकोटि का नीतिकाव्य ग्रन्थ है। भारतीय काव्य साहित्य में इस प्रकार का महत्त्वपूर्ण नीतिकाव्य अन्यत्र देखने में नहीं आया है। इसकी सरस सूक्तियाँ और उपदेश हृदय स्पर्शी हैं। यह पद्यात्मक सुन्दर

रचना है। इसमें महाकवि वादीभसिंह ने क्षत्रियों के चूडामणि महाराज जीवंधर के पावन चरित्र का अत्यन्त रोचक ढंग से वर्णन किया है। कुमार जीवंधर भगवान महावीर के समकालीन थे। उन्होंने शत्रु से अपने पिता का राज्य वापिस ले लिया और उसका उचित रीति से पालन किया। अन्त में संसार के भोगों और देह से विरक्त हो भगवान महावीर के सन्मुख दीक्षा लेकर तपश्चरण द्वारा आत्म शुद्धि कर अविनाशी पद प्राप्त किया। ग्रन्थ का कथानक आकर्षक और भाषा सरल संस्कृत है।

3. गद्यचिन्तामणि- गद्यचिन्तामणि एक गद्यकाव्य है। इसकी भाषा प्रौढ़ है। कवि वादीभसिंह ने गद्यचिन्तामणि जैसा उत्कृष्ट गद्यकाव्य लिखकर जैन संस्कृत काव्य को अमरत्व प्रदान किया है। उनके द्वारा रचा गया गद्यचिन्तामणि ग्रन्थ सभा का भूषण स्वरूप था। कवि ने इसके कथानक को 11 लम्बों (अध्यायों) में विभक्त किया है। कवि की गद्यशैली 'कादम्बरी' के समान है। कवि ने इस कथा में काव्यत्व का पूर्णतया समावेश किया है। पात्रों के चरित्र भी जीवन्तरूप में चित्रित हुए हैं। इस कृति में अप्रतिम कल्पना - वैभव, वर्णन-पटुता और मानव- मनोवृत्तियों का मार्मिक निरीक्षण पाया जाता है।

श्री जिनाय नमः

श्रीमद् वादीभसिंह सूरी विरचित

क्षत्रचूडामणिः

(जीवंधर चरित्र)

प्रथमो लम्बः

श्रीपतिर्भगवान्पुष्याद् भक्तानां वः समीहितम्।

यद्भक्तिः शुल्कतामेति मुक्तिकन्याकरग्रहे॥१॥

अन्वयार्थ- (श्रीपतिः) अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी (भगवान्) श्री जिनेन्द्रदेव (वः) आप (भक्तानां) भक्तों के (समीहितं) इच्छित कार्य को (पुष्यात्) पूर्ण करें। (यद् भक्तिः) जिन जिनेन्द्रदेव की भक्ति (मुक्तिकन्या-करग्रहे) मुक्तिरूपी कन्या के पाणिग्रहण में (शुल्कतां) मूल्यपने को (एति) प्राप्त होती है/धन की तरह सहायक होती है।

संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि चरितं जीवकोद्भवम्।

पीयूषं न हि निःशेषं पिबन्नेव सुखायते॥२॥

अन्वयार्थ- {अहं} मैं वादीभसिंहसूरि (जीवकोद्भवं) जीवन्धर-स्वामी से उत्पन्न (चरितं) चरित्र को (संक्षेपेण) संक्षेपरूप से (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा।

[अत्र नीतिः] (हि) क्योंकि (निःशेषं) सम्पूर्ण (पीयूषं) अमृत को (पिबन्) पीनेवाला (एव) पुरुष ही (सुखायते) सुखी होता हो

(इति न) ऐसा नहीं है; किन्तु {स्वल्पं अपि पिबन् सुखायते} थोड़ा अमृत पीनेवाला पुरुष भी सुखी होता है।

श्रेणिक प्रश्नुद्दिश्य सुधर्मो गणनायकः।

यथोवाच मयाप्येतदुच्यते मोक्षलिप्सया॥३॥

अन्वयार्थ- (सुधर्मः) सुधर्म नाम के (गणनायकः) गणधरदेव ने (श्रेणिकप्रश्नं) श्रेणिक राजा के प्रश्न का (उद्दिश्य) निमित्त पाकर (यथा) जैसा (उवाच) कहा है, (तथा मया अपि) वैसा मैं भी (मोक्ष-लिप्सया) मोक्ष की वांछा से इस चरित्र को (उच्यते) कहता हूँ।

इहास्ति भारते खण्डे जम्बूद्वीपस्य मण्डने।

मण्डलं हेमकोशाभं हेमाङ्गदसमाह्वयम्॥४॥

अन्वयार्थ- (इह) इस मध्यलोक में (जम्बूद्वीपस्य) जम्बूद्वीप के (मण्डने) भूषणस्वरूप (भारते) भरत (खण्डे) खण्ड में (हेमकोशाभं) स्वर्ण के खजाने के समान है आभा जिसकी ऐसा (हेमाङ्गदसमाह्वयं) हेमाङ्गद नाम का (मण्डलं) देश (अस्ति) है।

तत्र राजपुरी नाम राजधानी विराजते।

राजराजपुरी-सृष्टौ स्रष्टुर्या मातृकायते॥५॥

अन्वयार्थ- (तत्र) उस देश में (राजपुरी नाम) राजपुरी नाम की (राजधानी) राजा की प्रधान नगरी (विराजते) सुशोभित है; (या) जो (स्रष्टुः) ब्रह्मा के (राजराजपुरीसृष्टौ) कुबेर की नगरी (अलकापुरी) की रचना में (मातृकायते) माता के सदृश आचरण करती है।

तस्यां सत्यन्धरो नाम राजाभूत्सत्यवाङ्मयः।
वृद्धसेवी विशेषज्ञो नित्योद्योगी निराग्रहः॥६॥

अन्वयार्थ- (तस्यां) उस नगरी में (सत्यवाङ्मयः) सच बोलनेवाले (वृद्धसेवी) वृद्धों की सेवा करनेवाले (विशेषज्ञः) विशेष कार्यों को जाननेवाले (नित्योद्योगी) निरन्तर उद्योग करनेवाले (निराग्रहः) हठ न करनेवाले (सत्यन्धरः नाम) सत्यन्धर नाम के (राजा) राजा (अभूत्) थे।

महिता महिषी तस्य विश्रुता विजयाख्यया।
विजयाद्विश्वनारीणां पातिव्रत्यादिभिर्गुणैः॥७॥

अन्वयार्थ- (तस्य) उन सत्यन्धर राजा की (महिता) बड़ी (महिषी) प्रसिद्ध पटरानी (विश्वनारीणां) सम्पूर्ण स्त्रियों को (पातिव्रत्यादिभिः) पातिव्रत्यादि (गुणैः) गुणों के द्वारा (विजयात्) जीतने से (विजयाख्यया) विजया नाम से (विश्रुता) प्रसिद्ध {आसीत्} थी।

सत्यप्यन्तःपुरस्त्रीणां समाजे राजवल्लभा।
सैवासीन्नापरा काचित् सौभाग्यं हि सुदुर्लभम्॥८॥

अन्वयार्थ- (अन्तःपुरस्त्रीणां) अन्तः पुर की स्त्रियों के (समाजे) समुदाय में अनेक रानियाँ (सति) होने पर (अपि) भी (सा) वह (एव) ही (राजवल्लभा) राजा की प्यारी (आसीत्) थी (अपरा) दूसरी (काचित्) कोई (न) नहीं।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सौभाग्यं) अच्छा भाग्य अर्थात् पतिप्रियत्व (सुदुर्लभं) बड़ा दुर्लभ है।

निष्कंटकाधिराज्योऽयं राजा राज्ञीमनारतम्।
रमयन्नान्यदज्ञासीत्प्राज्ञप्राग्रहरोऽपि सन्॥९॥

अन्वयार्थ- (निष्कंटकाधिराज्यः) निष्कंटक है राज्य जिनका ऐसे (अयं राजा) यह राजा (प्राज्ञप्राग्रहरः) विद्वानों में अग्रसर (सन् अपि) होते हुए भी (अनारतं) निरन्तर (राज्ञीं) रानी के साथ (रमयन्) रमण करते हुए (अन्यत्) अन्य कुछ (न) नहीं (अज्ञासीत्) जानते थे।

विषयासक्तचित्तानां गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्॥१०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (विषयासक्तचित्तानां) विषयों में है आसक्त चित्त जिनका ऐसे पुरुषों के (को वा) कौन से (गुणः) गुण (न) नहीं (नश्यति) नष्ट होते हैं? (तेषु) उनमें (न वैदुष्यं) न पण्डितपना (न मानुष्यं) न मनुष्यपना (न अभिजात्यं) न कुलीनता (न सत्यवाक्) न सच्चाई रहती है।

पराराधनजाद् दैन्यात्पैशून्यात्परिवादतः।
पराभवात्किमन्येभ्यो न विभेति हि कामुकः॥११॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (कामुकः) कामी पुरुष (पराराधनजात्) दूसरों की सेवा से उत्पन्न (दैन्यात्) दीनता से (पैशून्यात्) चुगलीपन से (परिवादतः) निन्दा से और (पराभवात्) तिरस्कार से

(न) नहीं (विभेति) डरता है। (अन्येभ्यः) वह और कामों से (किं) क्या {भेष्यति} डरेगा?

पाकं त्यागं विवेकं च वैभवं मानितामपि।

कामार्ताः खलु मुञ्चन्ति किमन्यैः स्वञ्च जीवितम्॥१२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (कामार्ताः) काम से पीड़ित पुरुष (पाकं) भोजन (त्यागं) दान (विवेकं) विवेक (वैभवं) सम्पत्ति (च) और (मानितां) पूज्यता (अपि) भी (खलु) निश्चय से (मुञ्चन्ति) छोड़ देते हैं (च अन्यैः किं) और तो क्या (स्वं जीवितं) अपने जीवन को (अपि) भी (मुञ्चन्ति) छोड़ देते हैं।

पुनरैच्छदयं दातुं काष्ठाङ्गाराय काश्यपीम्।

अविचारितरम्यं हि रागान्धानां विचेष्टितम्॥१३॥

अन्वयार्थ- (पुनः) पश्चात् (अयं) राजा सत्यन्धर ने (काष्ठाङ्गाराय) काष्ठाङ्गार के लिए (काश्यपीं) राज्य (दातुं) देने की (ऐच्छत्) इच्छा की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (रागान्धानां) राग से अन्धे पुरुषों की (विचेष्टितं) चेष्टाएँ (अविचारितरम्यं) बिना विचार के ही सुन्दर लगती हैं।

तावता तं समभ्येत्य मन्त्रिमुख्या अबूबुधन्।

देव देवैरपि ज्ञातं विज्ञाप्यं श्रूयतामिदम्॥१४॥

अन्वयार्थ- (तावता) उसीसमय (मन्त्रिमुख्याः) प्रधानमन्त्री ने (तं) उन राजा के (समभ्येत्य) समीप आकर (अबूबुधन्) समझाते

हुए कहा-(देव) हे राजन! (देवैः) यद्यपि आपके द्वारा (ज्ञातं) जानी हुई (अपि) भी (इदं विज्ञाप्यं) इस जानने योग्य विज्ञप्ति को (श्रूयतां) आप ध्यान से सुनें।

हृदयं च न विश्वास्यं राजभिः किं परो नरः।

किन्तु विश्वस्तवदृश्यो नटायन्ते हि भूभुजः॥१५॥

अन्वयार्थ- (राजभिः) राजा लोग (हृदयं) अपने हृदय का (च) भी (न विश्वास्यं) विश्वास नहीं करते हैं (परः नरः किं विश्वास्यः) दूसरे मनुष्य का तो क्या विश्वास करेंगे; (किन्तु) किन्तु (परः नरः) दूसरे मनुष्य को (विश्वस्तवत्) विश्वस्त की तरह (दृश्यः) दिखते हैं।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भूभुजः) राजा लोग (नटायन्ते) नट के समान आचरण करते हैं।

परस्पराविरोधेन त्रिवर्गो यदि सेव्यते।

अनर्गलमतः सौख्यं अपवर्गोऽप्यनुक्रमात्॥१६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (यदि) अगर (परस्पराविरोधेन) एक-दूसरे के विरोध के बिना (त्रिवर्गः) धर्म, अर्थ, काम इन तीन वर्गों का (सेव्यते) सेवन किया जाए (अतः) तो (अनर्गलं) बिना रुकावट के (सौख्यं) सुख और (अनक्रमात्) अनुक्रम से (अपवर्गः) मोक्ष (अपि) भी {भवति} होता है।

ततस्त्याज्यौ न धर्मार्थौ राजभिः सुखकाम्यया।

अदः काम्यति देवश्चेदमूलस्य कुतः सुखम्॥१७॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसलिए (राजभिः) राजाओं को (सुख-काम्यया) सुख प्राप्त करने की वांछा से (धर्मार्थौ) धर्म और अर्थ को (न) नहीं (त्याज्यौ) छोड़ना चाहिए। (चेत् देवः) यदि आप (अदः) काम/सुख की (काम्यति) इच्छा करते हैं तो आपको भी धर्म व अर्थ को नहीं छोड़ना चाहिए।

[अत्र नीतिः] (अमूलस्य कुतः सुखं) बिना कारण के सुख कैसे हो सकता है?

नाशिनं भाविनं प्राप्यं प्राप्ते च फलसन्ततिम्।
विचार्यैव विधातव्यमनुतापोऽन्यथा भवेत्॥१८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (प्राप्यं) प्राप्त करने योग्य वस्तु (नाशिनं) नाश होनेवाली है अथवा (भाविनं) उपलब्ध रहनेवाली है (च) और (प्राप्ते) प्राप्त होने पर (फलसन्ततिं) फलों की परम्परा का (विचार्यैव) विचार करके (एव) ही (विधातव्यं) कोई काम करना चाहिए, (अन्यथा) इसके विपरीत करने से (अनुतापः) पश्चात्ताप (भवेत्) करना पड़ता है।

इति प्रबोधितोऽप्येष धुरि राज्ञां न्यवेशयत्।
काष्ठाङ्गारमहोमोहात् बुद्धिः कर्मानुसारिणी॥१९॥

अन्वयार्थ- (इति) इसप्रकार (प्रबोधितः) उपदेशित (अपि) भी (एषः) इस राजा ने (अहो) खेद है कि (मोहात्) मोह से (काष्ठाङ्गारं) काष्ठांगार को (राज्ञां धुरि) राज्य के प्रमुख पद पर (न्यवेशयत्) बिठाया है।

[अत्र नीतिः] (बुद्धिः) बुद्धि (कर्मानुसारिणी) कर्म के अनुसार {भवति} होती है।

विषयान्धविचारेण विरक्तानां नृपस्य तु।

प्रकृष्यमाणरागेण कालो विलयमीयिवान्॥२०॥

अन्वयार्थ- (विरक्तानां) विषयों से विरक्त पुरुषों का (कालः) समय (विषयान्धविचारेण) विषयान्धता से अर्थात् विषयों से विरक्त रहकर (विलयं) व्यतीत (ईयिवान्) होता था (तु) और (नृपस्य) राजा का (कालः) समय (प्रकृष्यमाणरागेण) विषयों में बढ़ते हुए राग से (विलयं ईयिवान्) बीतता था।

सा तु निद्रावती स्वप्नमद्राक्षीत्क्षणदाक्षये।

अस्वप्नपूर्वं हि जीवानां न हि जातु शुभाशुभम्॥२१॥

अन्वयार्थ- (तु) इसके अनन्तर (निद्रावती सा) नींद में सोई हुई उस विजया रानी ने (क्षणदाक्षये) रात्रि के अन्तिम समय में (स्वप्नं) स्वप्न (अद्राक्षीत्) देखा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (जीवानां) मनुष्यों के (अस्वप्नपूर्वं) बिना स्वप्न के (जातु) कभी भी (शुभाशुभं) शुभ और अशुभ कार्यों का प्रादुर्भाव (न) नहीं {भवति} होता है।

वैभातिकविधेरन्ते विभोरन्तिकमीयुषी।

अर्धासननिविष्टेयमभाषिष्ट च भूभुजः॥२२॥

अन्वयार्थ- (वैभातिकविधेः) प्रातःकाल सम्बन्धी शौचादि कार्य के (अन्ते) अनन्तर (इयं) यह रानी (विभोः) अपने पति के

(अन्तिकं) समीप (ईयुषी) आकर (अर्धासननिविष्टा) आधे आसन पर बैठकर (भूभुजः) राजा से अपने देखे हुए स्वप्नों के बारे में (अभाषिष्ट) बोली।

श्रुत्वा स्वप्नत्रयं राजा ज्ञात्वा च फलमक्रमात्।
प्रतिवक्तुमुपादत्त किञ्चिन्न्यञ्चन्मना भवन्॥२३॥

अन्वयार्थ- (राजा) राजा सत्यन्धर (स्वप्नत्रयं) तीनों स्वप्नों को (श्रुत्वा) सुनकर (च) और (फलं) फल को (ज्ञात्वा) जानकर (अक्रमात्) क्रम भंग करके (किञ्चिन्न्यञ्चन्मना भवन्) दुःखित मन से (प्रतिवक्तुं) उत्तर (उपादत्त) देते हैं।

पुत्रमित्रकलत्रादौ सत्यामपि च सम्पदि।
आत्मीयापायशङ्का हि शङ्कु प्राणभृतां हृदि॥२४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पुत्रमित्रकलत्रादौ) पुत्र, मित्र, स्त्री आदिक (च) और (सम्पदि) धनादिक सम्पत्ति के (सत्यां) रहने पर (अपि) भी (आत्मीयापायशङ्का) अपने विनाश की शंका (प्राणभृतां) प्राणधारियों के (हृदि) हृदय में (शङ्कु) कील की तरह सदा {दुःखं ददाति} दुःख देती है।

देवि! दृष्टस्त्वया स्वप्ने बालाशोकः समौलिकः।

आचष्टे सोदयं सूनुमष्टमालास्तु तद्वधूः॥२५॥

अन्वयार्थ- (देवि) हे देवी! (त्वया) तुम्हारे द्वारा (स्वप्ने) स्वप्न में (दृष्टः) देखा हुआ (समौलिकः) मुकुट सहित (बालाशोकः) छोटा अशोक वृक्ष (सोदयं) पुण्यशाली (सूनुं) पुत्र को (आचष्टे) कहता

है (तु) और (अष्टमालाः) स्वप्न में देखी हुई आठ मालाएँ (तद्वधूः) पुत्र की आठ स्त्रियाँ होंगी-ऐसा कथन करती हैं।

आर्यपुत्र ततः पूर्वं दृष्टनष्टस्य किं फलम्।
कङ्केलेरिति चेद्देवि कथयत्येष किञ्चन॥२६॥

अन्वयार्थ- (आर्यपुत्र) हे आर्यपुत्र! (ततः पूर्वं) इससे पहले (दृष्टनष्टस्य) दिखा और फिर नष्ट हो गया-ऐसे (कङ्केलेः) अशोक वृक्ष का (किं) क्या (फलं) फल है? (देवि) हे देवी! (इति चेत्) यदि ऐसा पूछती हो तो (एष) यह स्वप्न भी (किञ्चन) इसका ही कुछ (कथयति) कहता है, ऐसा समझो।

इतीशवाक्यं शुश्रूषी महिषी भुवि पेतुषी।
मूर्च्छिता तन्मुखग्लानेर्वक्त्रं वक्ति हि मानसम्॥२७॥

अन्वयार्थ- (इति) इसप्रकार (ईशवाक्यं) स्वामी का वाक्य (शुश्रूषी) सुनकर (महिषी) पटरानी (तन्मुखग्लानेः) उनके मुख की मलिनता देखने से (भुवि) पृथ्वी पर (पेतुषी) गिरकर (मूर्च्छिता) मूर्च्छित {आसीत्} हो गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वक्त्रं) मुख (मानसं) मन के भावों को (वक्ति) कह देता है।

तन्मोहान्मोहितो राजा तामेवायमबूबुधत्।
सत्यामप्यभिषङ्गातौ जागर्त्येव हि पौरुषम्॥२८॥

अन्वयार्थ- (तन्मोहात्) रानी के मोह से (मोहितः) मोहित (अयं) राजा (तां एव) उसको ही (अबूबुधत्) सचेत करता है।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अभिषङ्गातौ) अकस्मात् दैवादियज्य पीड़ा (सत्यां अपि) होने पर भी (पौरुषं) पुरुषार्थ (जागर्ति) जागता (एव) ही है।

स्वप्नदृष्टकृते सद्यो नष्टासुं किं तनोषि माम्।
न हि रक्षितुमिच्छन्तो निर्दहन्ति फलद्रुमम्॥२९॥

अन्वयार्थ- हे देवी! (स्वप्नदृष्टकृते) स्वप्न देखने से (किं) क्यों (मां) मुझको (सद्यः) तत्काल (नष्टासुं) मरा हुआ (तनोषि) समझती हो?

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (फलद्रुमं) फलवाले वृक्ष की (रक्षितुं इच्छन्तः) रक्षा करने की इच्छावाले पुरुष (तं) उसको (न निर्दहन्ति) नहीं जलाते हैं।

विपदः परिहाराय शोकः किं कल्पते नृणाम्।
पावके न हि पातः स्यादातपक्लेशशान्तये॥३०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (विपदः) विपत्तियों को (परिहाराय) दूर करने के लिए (नृणां) मनुष्यों का (शोकः) शोक (किं) क्या (कल्पते) उचित है? (हि) निश्चय से (आतपक्लेशशान्तये) गर्मी के क्लेश की शान्ति के लिए (किं) क्या (पावके) अग्नि में (पातः स्यात्) गिरा जाता है? {अपि तु न स्यात्} नहीं, ऐसा नहीं किया जाता।

ततो व्यापत्प्रतीकारं धर्ममेव विनिश्चिनु।
प्रदीपैर्दीपिते देशे न ह्यस्ति तमसो गतिः॥३१॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (किं) क्या (ततः) इसलिए निश्चय से (व्यापत्प्रतीकारं) आपत्ति के नाश का उपाय (धर्म एव) धर्म ही है (विनिश्चिनु) तू ऐसा निश्चय कर; (हि) क्योंकि (प्रदीपैः दीपिते) दीपकों से प्रकाशित (देशे) देश में (तमसः) अन्धकार की (गतिः) स्थिति (न अस्ति) नहीं होता।

इत्यादि स्वामिवाक्येन लब्धाश्वासा यथापुरम्।

पत्या साकमसौ रेमे दुःखचिन्ता हि तत्क्षणे॥३२॥

अन्वयार्थ- (इत्यादिस्वामिवाक्येन) इसप्रकार स्वामी के वचनों से (लब्धाश्वासा) प्राप्त हुआ है विश्वास जिसको ऐसी (असौ) यह रानी (पत्या साकं) पति के साथ (यथापुरं) पहले की तरह (रेमे) रमण करने लगी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (तत्क्षणे) दुःख के समय ही (दुःखचिन्ता) दुःख की चिन्ता {भवति} होती है।

अथ प्रबोधितं स्वप्नादप्रबुद्धममुं पुनः।

बोधयन्तीव पत्नीयमन्तर्वत्नीधुरां दधौ॥३३॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके पश्चात् (स्वप्नात्) स्वप्न से (प्रबोधितं) सचेत किया हुआ (पुनः अप्रबुद्धं) और फिर अचेत (अमुं) इस राजा को (बोधयन्ती) ज्ञान कराने के लिए ही (इव) मानो (इयं पत्नी) रानी विजया (अन्तर्वत्नीधुरां) गर्भ के भार को (दधौ) धारण करती है।

सदोहलामिमां वीक्ष्य दुःस्वप्नफलनिश्चयात्।

अनुशेते स्म राजायमात्मरक्षापरायणः॥३४॥

अन्वयार्थ- (आत्मरक्षापरायणः) अपनी रक्षा में तत्पर (अयं राजा) यह राजा (सदोहलां) गर्भ के लक्षणों सहित (इमां) रानी को (वीक्ष्य) देखकर (दुःस्वप्नफलनिश्चयात्) खोटे स्वप्नों के फल के निश्चय से (अनुशेते स्म) पश्चात्ताप करने लगे।

मन्त्रिणां लङ्घितं वाक्यमभाग्येन मया मुधा।

विपाके हि सतां वाक्यं विश्वसन्त्यविवेकिनः॥३५॥

अन्वयार्थ- (अभाग्येन) अभाग्य से (मया) मैंने (मन्त्रिणां) मन्त्रियों के (वाक्य) वचनों का (मुधा) वृथा (लङ्घितं) उल्लंघन किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अविवेकिनः) विवेकरहित पुरुष (विपाके) अन्त समय में अर्थात् दुःख मिलने पर (सतां) सज्जनों के (वाक्यं) वाक्यों का (विश्वसन्ति) विश्वास करते हैं।

न ह्यकालकृता वाञ्छा सम्पुष्पाति समीहितम्।

किं पुष्पावचयः शक्यः फलकाले समागते॥३६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अकालकृता) असमय में की गई (वाञ्छा) इच्छा (समीहितं) इच्छित कार्य को (न सम्पुष्पाति) पूर्ण नहीं करती है। जैसे (फलकाले समागते) फल लगने का समय आ जाने पर (किं) क्या (पुष्पावचयः शक्यः) फूलों का ढेर इकट्ठा किया जा सकता है? {अपि तु न शक्यः} बिलकुल नहीं किया जा सकता।

इत्यातो वंशरक्षार्थं केकियन्त्रमचीकरत्।

आस्था सतां यशःकाये न ह्यस्थायिशरीरके॥३७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (इति) इसप्रकार (आर्तः) दुःख से पीड़ित राजा ने (वंशरक्षार्थं) वंश की रक्षा के लिए (केकियन्त्रं) मयूराकृति यन्त्र (अचीकरत्) बनाया।

(हि) निश्चय से (सतां आस्था) सज्जनों की आस्था (यशः काये) यशरूपी शरीर में ही {भवति} होती है। (अस्थायिशरीरके) नाशवान पुरुषाकार जड़ शरीर में {न भवति} नहीं होती।

आक्रीडे दोहदक्रीडामनुभोक्तुं विशाम्पतिः।

व्यजीहरच्च यन्त्रस्थां पत्नीं वर्त्मनि वार्मुचाम्॥३८॥

अन्वयार्थ- (च) फिर (विशाम्पतिः) राजा (दोहदक्रीडां) दोहल क्रीड़ाओं का (अनुभोक्तुं) अनुभव कराने के लिए (आक्रीडे) क्रीड़ोद्याने में (यन्त्रस्थां) मयूर यन्त्र में बैठी हुई (पत्नी) विजया रानी को (वार्मुचां) मेघों के (वर्त्मनि) मार्ग अर्थात् आकाश में (व्यजीहरत्) विहार कराने लगे।

तावतैव कृतघ्नाख्यां राजघाख्यां च साधयन्।

स्वविधेयां भुवं चेति काष्ठाङ्गारो व्यचीचरत्॥३९॥

अन्वयार्थ- (तावता एव) उससमय ही (कृतघ्नाख्यां) कृतघ्नता (च) और (राजघाख्यां) 'राज-घातक' की संज्ञा को (साधयन्) सिद्ध करता हुआ (च) और (भुवं) पृथ्वी को (स्वविधेयां) अपने

आधीन करने की (इच्छन्) इच्छा से (काष्ठाङ्गारः) काष्ठांगार ने (इति) यह (व्यचीचरत्) विचार किया।

जीवितात्तु पराधीनाज्जीवानां मरणं वरम्।
मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रत्वं वितीर्णं केन कानने॥४०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (पराधीनात्) पराधीन (जीवितात् तु) जीवन से तो (जीवानां) प्राणियों का (मरणं) मरण (वरं) श्रेष्ठ है। (कानने) वन में (मृगेन्द्रस्य) सिंह को (मृगेन्द्रत्वं) सिंहपना (वन के पशुओं का स्वामित्व) (केन) किसने (वितीर्णं) दिया है? {स्वपुरुषार्थेन एव सम्पादितं} अपने पुरुषार्थ से ही उसने प्राप्त किया है।

अचीकथच्च मन्त्रिभ्यो राजद्रोहो विधीयताम्।
इति राजद्रुहा नित्यं दैवतेनाभिधीयते॥४१॥

अन्वयार्थ- (राजद्रोहः विधीयतां) राजा के साथ द्रोह करो, ऐसा (राजद्रुहा) राजा से द्रोह करनेवाला (दैवतेन) देवता (नित्यं) नित्य ही मुझसे (अभिधीयते) कहता है। (इति) इसप्रकार (सः) उसने (मन्त्रिभ्यः) मन्त्रियों से (अचीकथत्) कहा।

स्वन्तं किं नु दुरन्तं वा किमुदर्कं वितर्क्यताम्।
अतर्कितमिदं वृत्तं तर्करूढं हि निश्चलम्॥४२॥

अन्वयार्थ- (स्वन्तं) इसका अन्त अच्छा है (किं नु) अथवा (दुरन्तं) बुरा है? (किं उदर्कं) इसका क्या परिणाम होगा?

(वितर्क्यतां) इस विषय का तुम विचार करो। (इदं वृत्तं) यह वृत्तान्त अभी तक (अतर्कितं) बिना विचार किया हुआ है।

[अत्र नीतिः] जब यह विचार (हि) निश्चय से (तर्करूढं) तर्क पर चढ़ेगा, तब ही (निश्चलं) स्थिर/निश्चित (भवेत्) हो जाएगा।

जिह्मेमि वक्तुमप्येतदुक्तिर्देवभयादिति।

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्धि पापिनाम्॥४३॥

अन्वयार्थ- काष्ठांगार कहता है कि (अहं) मैं तो (एतत् वक्तुं अपि) यह कहते हुए भी (जिह्मेमि) लज्जित हूँ; किन्तु (दैवभयात् इति उक्तिः) देवता के भय से मैंने यह कहा है।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पापिनां) पापियों के (मनसि) मन में (अन्यत्) कुछ होता है और (वचसि अन्यत्) वचन में कुछ होता है और (कर्मणि अन्यत्) कृति में कुछ अन्य ही होता है।

तद्वाक्याद्वाच्यतो वंश्या यमिनः प्राणिहिंसनात्।

क्षुद्रा दुर्भिक्षतश्चैवं सभ्याः सर्वे हि तत्रसुः॥४४॥

अन्वयार्थ- (तद् वाक्यात्) काष्ठांगार के इन वचनों से (वंश्यां) कुलीन पुरुष तो (वाच्यतः) निन्दा से (यमिनः) संयमी पुरुष (प्राणीहिंसनात्) जीवों की हिंसा से (क्षुद्राः) सामान्यजन (दुर्भिक्षतः) अकाल से (तत्रसुः) डर गए। (एवं) इसप्रकार काष्ठांगार के इस कुटिल व्यवहार से (सर्वे सभ्याः तत्रसुः) सम्पूर्ण सभ्य पुरुष भययुक्त हो गए।

आत्मघ्नीं धर्मदत्ताख्यः सचिवो वाचमूचिवान्।

गाढा हि स्वामिभक्तिः स्यादात्मप्राणानपेक्षिणी ॥४५॥

अन्वयार्थ- उससमय (धर्मदत्त आख्यः) धर्मदत्त नाम के (सचिव) मन्त्री ने (आत्मघ्नीं) अपनी जान को जोखिम में डालनेवाली (वाचं) वाणी (ऊचिवान्) कही।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (गाढा स्वामिभक्तिः) स्वामी की अतिशय भक्ति (आत्मप्राणानपेक्षिणी) अपने प्राणों की परवाह नहीं करनेवाली (स्यात्) होती है।

राजानः प्राणिनां प्राणास्तेषु सत्स्वेव जीवनात्।
तत्तत्र सदसत्कृत्यं लोक एव कृतं भवेत् ॥४६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] उसने कहा (राजानः) राजा लोग (प्राणिनां) प्राणियों के (प्राणाः) प्राण हैं; क्योंकि (तेषु सत्सु एव) उनके रहने पर ही (जीवनात्) प्राणियों का जीवन है। (तत्) इसलिए (तत्र) राजा पर किया हुआ (सदसत्कृत्यं) अच्छा-बुरा कर्म (लोकः एव कृतं भवेत्) प्रजा पर ही किया हुआ होता है।

एवं राजद्रुहां हन्त सर्वद्रोहित्व सम्भवे।
राजध्रुगेव किं न स्यात् पञ्चपातकभाजनम् ॥४७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (एवं) इसप्रकार (राजद्रुहां) राजद्रोही पुरुषों के द्रोह में (सर्वद्रोहित्वसम्भवे) सम्पूर्ण पुरुषों का द्रोहपना सम्भव होने पर (हन्त) खेद है (किं) क्या (राजध्रुग् एव) राजद्रोही ही (पञ्चपातक-भाजनं) पाँच महापापों का करनेवाला (न स्यात्) नहीं होता है? {किन्तु स्यादेव} किन्तु अवश्य ही होता है।

रक्षन्त्येवात्र राजानो देवान्देहभृतोऽपि च।

देवास्तु नात्मनोऽप्येवं राजा हि परदेवता॥४८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (अत्र) इस लोक में (राजानः) राजा लोग (एव) ही (देवान्) देव (च) और (देहभृतोऽपि) अन्य प्राणियों की भी (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं; परन्तु (देवाः) देवता (आत्मनोऽपि) अपनी भी (न रक्षन्ति) रक्षा नहीं करते हैं। (एवं) इसलिए (राजा हि परदेवता) राजा ही निश्चय से उत्कृष्ट देवता है।

किञ्चात्र दैवतं हन्ति दैवतद्रोहिणं जनम्।

राजा राजद्रुहां वंशं वंश्यानन्यच्च तत्क्षणे॥४९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (किञ्च अत्र) और इस लोक में (दैवतं) देवता (दैवतद्रोहिणं जनं) अपने से द्रोह करनेवाले मनुष्य को (हन्ति) मारते हैं; परन्तु (राजा) राजा (राजद्रुहां) राजद्रोहियों के (वंशं) कुल और (वंश्यान्) वंश के मनुष्यों को (च) भी (अन्यत्) एवं उनकी धन सम्पत्ति आदि को भी (तत्क्षणे) उसी समय (हन्ति) नाश कर देता है।

अर्थिनां जीवनोपायमपायं चाभिभाविनाम्।

कुर्वन्तः खलु राजानः सेव्या हव्यवहा यथा॥५०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (अर्थिनां) अर्थीजनों के (जीवनोपायं) जीवन की रक्षा (च) और (अभिभाविनां) प्रजा को दुःख देनेवाले शत्रुओं का (अपायं) नाश (कुर्वन्तः) करनेवाले (राजानः) राजा लोग (खलु) निश्चय से (हव्यवहा यथा) हवन की अग्नि की तरह (सेव्याः) आदर से सेवा करने योग्य हैं।

इति धर्म वचोऽप्यासीन्मर्मभित्तीव्रकर्मणः।

पित्तज्वरवतः क्षीरं तिक्तमेव हि भासते॥५१॥

अन्वयार्थ- (तीव्रकर्मणः) दुष्टकर्मवाले काष्ठांगार को (इति) इसप्रकार (धर्म वचः अपि) धर्मयुक्त वचन भी (मर्मभित्) मर्मछेदी/हृदयविदारक (आसीत्) लगे।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पित्तज्वरवतः) पित्तज्वरवाले मनुष्य को (क्षीरं) मधुर दुग्ध (तिक्तं) कड़वा (एव) ही (भासते) लगता है।

स कार्तघ्न्यादिदोषं च गुरुद्रोहं च किं परैः।

परिवादं च नाद्राक्षीत् दोषं नार्थी हि पश्यति॥५२॥

अन्वयार्थ- (सः) उसने (कार्तघ्न्यादिदोषं) कृतघ्नतादि दोषों को (च) और (गुरुद्रोहं) गुरुद्रोह को (न अद्राक्षीत्) नहीं देखा। (परैः किं) और तो क्या? (परिवादं च न अद्राक्षीत्) अपनी निन्दा का भी विचार नहीं किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अर्थी) स्वार्थी मनुष्य (दोषं) दोष को (न पश्यति) नहीं देखता।

मथनो नाम तत्स्यालस्तद्वाचं बह्वमन्यत।

तद्धि पाणौ कृतं दात्रं परिपन्थिविधायिनः॥५३॥

अन्वयार्थ- (मथनः नाम) मथन नाम के (तत्स्यालः) उसके साले ने (तद्वाचं) काष्ठांगार के वचनों की (बहु अमन्यत) अनुमोदना की। (हि) निश्चय से (तत्) मथन के वचन (परिपन्थिविधायिनः)

शत्रुता करनेवाले काष्ठांगार के (पाणौकृतं) हाथ में आए हुए (दात्रं इव) दाँती की तरह (अभवत्) हुए।

प्राहैषीच्च बलं हन्तुं राजानं हन्त पापधीः।
पयोह्यास्यगतं शक्यं पाननिष्ठीवनद्वये॥५४॥

अन्वयार्थ- (हन्त) खेद है! (पापधीः) उस पापबुद्धिवाले काष्ठांगार ने (राजानं) राजा को (हन्तुं) मारने के लिए (बलं) सेना (प्राहैषीत्) भेजी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (आस्यगतं) मुख में गया हुआ (पयः) दुग्ध (पाननिष्ठीवनद्वये) पान और वमन इन दोनों क्रियाओं में (शक्यं) समर्थ {भवति} होता है।

दौवारिकमुखादेतदुपलभ्य रुषा नृपः।
उदतिष्ठत संग्रामे न हि तिष्ठति राजसम्॥५५॥

अन्वयार्थ- (नृपः) राजा (दौवारिकमुखात्) द्वारपाल के मुख से (एतत्) यह (उपलभ्य) जानकर (रुषा) क्रोध से (संग्रामे उदतिष्ठत) युद्ध के लिए उठा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (राजसं न तिष्ठति) राजसी भाव स्थिर नहीं रहता। (वह प्रगट हो ही जाता है।)

तावतार्धासनाद्भ्रष्टां नष्टासुं गर्भिणीं प्रियाम्।
दृष्ट्वा पुनर्न्यवर्तिष्ठ स्त्रीष्ववज्ञा हि दुःसहा॥५६॥

अन्वयार्थ- परन्तु (तावता) उसी समय राजा के (अर्धासनात्) अर्धासन से (भ्रष्टां) गिरी हुई अतएव (नष्टासुं) गतप्राण की तरह

(गर्भिणीं प्रियां) गर्भवती अपनी प्यारी स्त्री को (दृष्ट्वा) देखकर राजा (पुनः) फिर (न्यवर्तिष्ठ) लौट आए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्त्रीषु) स्त्रियों के विषय में (अवज्ञा) अनादर वा अपमान (दुःसहा) सहा नहीं जा सकता/दुःसह होता है।

अबोधयच्च तां पत्नीं लब्धबोधो महीपतिः।

तत्त्वज्ञानं हि जागर्ति विदुषामार्तिसम्भवे॥५७॥

अन्वयार्थ- (च लब्धबोधः) स्वयं सचेत होकर (महीपतिः) राजा ने (तां पत्नीं) अपनी पत्नी को (अबोधयत्) उपदेश दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (आर्तिसम्भवे) पीड़ा के होने पर/विपत्ति काल में (विदुषां) विद्वानों का (तत्त्वज्ञानं जागर्ति) तत्त्वज्ञान जागता ही है।

शोकेनालमपुण्यानां पापं किं न फलप्रदम्।

दीपनाशे तमोराशिः किमाह्वानमपेक्षते॥५८॥

अन्वयार्थ- राजा कहने लगे कि (शोकेन अलं) शोक नहीं करना चाहिए। (अपुण्यानां) पुण्य रहित पापी पुरुषों का (पापं) पाप (किं) क्या (फलप्रदं न) फल देनेवाला नहीं होता? फलदायी {स्यात् एव} होता ही है।

[अत्र नीतिः] (किं) क्या (दीपनाशे) दीपक के बुझ जाने पर (तमोराशिः) अन्धकार का समूह (आह्वानं) आमन्त्रण की

(अपेक्षते) अपेक्षा करता है? {न अपेक्षते} अपेक्षा नहीं करता, स्वयं आ जाता है।

यौवनं च शरीरं च सम्पच्च व्येति नाद्भुतम्।
जलबुदबुदनित्यत्वे चित्रीया न हि तत्क्षये॥५९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (यौवनं) यौवन (च) और (शरीरं) शरीर (च) और (सम्पत्) धन-ये सब (व्येति) नाश को प्राप्त होते हैं; (अत्र अद्भुतं न) इसमें आश्चर्य नहीं। (जलबुदबुदनित्यत्वे) पानी के बुलबुले के बहुत देर तक ठहरने में (चित्रीया) आश्चर्य है। (हि) निश्चय से (तत्क्षये चित्रीया न) उसके नाश होने में कोई आश्चर्य नहीं है।

संयुक्तानां वियोगश्च भविता हि नियोगतः।
किमन्यैरङ्गतोऽप्यङ्गी निःसङ्गो हि निवर्तते॥६०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (संयुक्तानां) संयोगी पदार्थों का (नियोगतः) अवश्य ही (वियोगः) वियोग (भविता) होता है। (अन्यैः किं) और तो क्या? (अङ्गतः) इस शरीर से (अङ्गी अपि) आत्मा भी (निःसङ्गः हि निवर्तते) निःसंग होकर/छोड़कर चला जाता है।

अनादौ सति संसारे केन कस्य न बन्धुता।
सर्वथा शत्रुभावश्च सर्वमेतद्धि कल्पना॥६१॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (संसारे) संसार के (अनादौ सति) अनादि होने पर (कस्य) किसी की (केन) किसी के साथ (सर्वथा)

सर्व- प्रकार से (बन्धुता शत्रुभावः च न) मित्रता और शत्रुता नहीं होती। (हि) निश्चय से (एतत् सर्वं कल्पना) यह सब कल्पना मात्र है।

इति धर्म्यं वचस्तस्या लेभे नैव पदं हृदि।

दग्धभूम्युप्तबीजस्य न ह्यङ्कुरसमर्थता॥६२॥

अन्वयार्थ- (इति) इसप्रकार (धर्म्यं वचः) नीतियुक्त वचनों ने (तस्याः) उस विजया रानी के (हृदि) हृदय में (पदं) स्थान (न एव) नहीं (लेभे) प्राप्त किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (दग्धभूमि-उप्तबीजस्य) जली हुई पृथ्वी में बोए हुए बीज के अन्दर (अङ्कुरसमर्थता न भवति) अङ्कुर पैदा होने की शक्ति नहीं होती।

अयं त्वापन्नसत्त्वां तामारोप्य शिखियन्त्रकम्।

स्वयं तद्भ्रामयामास हन्त क्रूरतमो विधिः॥६३॥

अन्वयार्थ- (तु) तदनन्तर (अयं) राजा ने (आपन्नसत्त्वां तां) गर्भवती उस रानी को (शिखियन्त्रकं) मयूर यन्त्र में (आरोप्य) बिठा करके (स्वयं) अपने हाथ से (तद्) उसको (भ्रामयामास) घुमाया।

[अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है कि (विधिः क्रूरतमः) पूर्वोपार्जित कर्म अत्यन्त कठोर होते हैं।

वियतास्मिन्गते योद्धुं स मोहादुपचक्रमे।

न ह्यङ्गुलिरसाहाय्या स्वयं शब्दायतेतराम्॥६४॥

अन्वयार्थ- (अस्मिन्) इस यन्त्र के (वियता गते) आकाशमार्ग से ऊपर चले जाने पर (सः) उस राजा ने (मोहात्) मोह के वश से (योद्धुं) लड़ना (उपचक्रमे) प्रारम्भ किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (असाहाय्याङ्गुलिः स्वयं) अकेली अँगुली अपने आप (न शब्दायतेतरां) शब्द को नहीं करती है अर्थात् दो के बिना अकेले से लड़ाई नहीं होती है।

अथ युद्ध्वा चिरं योद्धा मुधा प्राणिवधेन किम्।
इत्यूहेन विरक्तोऽभूद् गत्यधीनं हि मानसम्॥६५॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर (योद्धा) योद्धा राजा (चिरं युद्ध्वा) बहुत कालपर्यन्त युद्ध करके (मुधा) निष्प्रयोजन (प्राणिवधेन) प्राणियों की हिंसा से (किं) क्या फल है? (इति ऊहेन) ऐसा विचार करके (विरक्तः अभूत्) लड़ाई से उदासीन हो गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (गत्यधीनं मानसं) गति के अनुकूल ही मन के भाव होते हैं, अर्थात् जिसको जिस गति में जाना होता है, उसके मृत्यु के समय वैसे ही भाव हो जाते हैं।

विषयासङ्गदोषोऽयं त्वयैव विषयीकृतः।
साम्प्रतं वा विषप्रख्ये मुञ्चात्मन्विषये स्पृहाम्॥६६॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मा! (अयं) इस (विषयासङ्गदोषः) विषयासक्ति दोष को (त्वया एव) तूने ही (विषयीकृतः) प्रत्यक्ष कर लिया है। अतएव (साम्प्रतं वा) अब तो (विषप्रख्ये) विष के

समान (विषये) इन्द्रियों के विषय में (स्पृहां) इच्छा को (मुञ्च) छोड़ दो।

भुक्तपूर्वमिदं सर्वं त्वयात्मन्भुज्यते ततः।

उच्छिष्टं त्यज्यतां राज्यमनन्ता ह्यसुभृद्भवाः॥६७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (आत्मन्) हे आत्मन! (इदं सर्वं) इन सब (भुक्तपूर्व) पूर्वजन्म में भोगे हुए को (त्वया) तू (भुज्यते) भोगता है। (अतः) इसलिए (उच्छिष्टं राज्यं) उच्छिष्ट राज्य को (त्यज्यतां) त्याग दे।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (असुभृद्भवाः) जीवों के भव (अनन्ताः) अनन्त {सन्ति} होते हैं।

अवश्यं यदि नश्यन्ति स्थित्वापि विषयाश्चिरम्।

स्वयं त्याज्यास्तथा हि स्यान्मुक्तिः संसृतिरन्यथा॥६८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (यदि) अगर (विषयाः) इन्द्रियों के विषय (चिरं) बहुतकाल तक (स्थित्वा अपि) स्थिर रहकर भी (अवश्यं) अवश्य (नश्यन्ति) नाश को प्राप्त हो जाते हैं तो (स्वयं) स्वयं ही (त्याज्याः) छोड़ देना चाहिए। (तथा हि) ऐसा करने पर (मुक्तिः स्यात्) आत्मा कर्मबन्धन से मुक्त होता है। (अन्यथा) इसके विपरीत करने से (संसृतिः एव स्यात्) संसार ही होता है।

त्यज्यते रज्यमानेन राज्येनान्येन वा जनः।

भज्यते त्यज्यमानेन तत्त्यागोऽस्तु विवेकिनाम्॥६९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः/] (रज्यमानेन राज्येन अन्येन वा जनः) मनुष्य जिस राज्य या अन्य वस्तु पर रीझता है, वह वस्तु (त्यज्यते) उसे छोड़ देती है। (त्यज्यमानेन) तथा जिस वस्तु को त्यागता है, वह वस्तु (जनः) उस मनुष्य को (भज्यते) उपलब्ध होती है (ततः) इसलिए (विवेकिनां) विचारवान पुरुषों को जिसे उपलब्ध/प्राप्त करना हो (तत् त्यागः अस्तु) उससे राग कम करना चाहिए।

इति भावनया राजा वैराग्यं परमीयिवान्।

त्यक्त्वा सङ्गं निजाङ्गं च दिव्यां सम्पदमासदत्॥७०॥

अन्वयार्थ- (राजा) राजा ने (इति भावनया) इसप्रकार की भावना से (परं) उत्कृष्ट (वैराग्यं) वैराग्य (ईयिवान्) प्राप्त किया और फिर अन्त में (सङ्गं) परिग्रह (निजाङ्गं च) और अपने शरीर को (त्यक्त्वा) छोड़कर (दिव्यां सम्पदं) स्वर्गसम्बन्धी ऐश्वर्य को (आसदत्) पाया।

पौराः जानपदाः सर्वे निर्वेदं प्रतिपेदिरे।

पीडा ह्यभिनवा नृणां प्रायो वैराग्यकारणम्॥७१॥

अन्वयार्थ- उस समय (सर्वे पौराः) सारे पुरवासी (च) और (जानपदाः) देशवासी (निर्वेदं) उदास और विरक्तिपने को (प्रतिपेदिरे) प्राप्त हुए।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (अभिनवा) वर्तमान की नई (पीडा) पीडा (नृणां) मनुष्यों को (प्रायः वैराग्यकारणं) प्रायः वैराग्य का कारण बनती है।

अधिस्त्रिरागः क्रूरोऽयं राज्यं प्राज्यमसूनपि।
तद्वज्जिता हि मुञ्चन्ति किं न मुञ्चन्ति रागिणः॥७२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (अयं) यह (अधिस्त्रिरागः) स्त्रीविषयक प्रेम (क्रूरः) बड़ा कठोर है (तद्वज्जिताः) उससे ठगाए हुए मनुष्य (प्राज्यं राज्यं) बड़े भारी राज्य को और (असून) प्राणों को (अपि) भी (मुञ्चन्ति) छोड़ देते हैं। सच है (रागिणः) रागी पुरुष (किं न) क्या-क्या नहीं (मुञ्चन्ति) छोड़ देते? मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु भी छोड़ देते हैं।

नारीजघनरन्ध्रस्थ विण्मूत्रमय चर्मणा।
वराह इव विड्भक्षी हन्त मूढः सुखायते॥७३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है! (मूढः) मूर्ख जन (नारीजघनरन्ध्रस्थविण्मूत्रमयचर्मणा) स्त्रियों की जंघाओं के छिद्र में स्थित मलमूत्र से भरे हुए चमड़े से (विड्भक्षी) विष्टा खानेवाले (वराह इव) सूकर की तरह (सुखायते) सुखी होते हैं।

किं कीदृशं कियत्व्वेति विचारे सति दुःसहम्।
अविचारितरम्यं हि रामासम्पर्कजं सुखम्॥७४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (रामासम्पर्कजं) स्त्री के संग से उत्पन्न (सुखं) सुख (किं) क्या है (कीदृशं) कैसा है (कियत्) कितना है (क्व)-कहाँ है (इति विचारे सति) ऐसा विचार करने पर (दुःसहं) दुस्सह हो जाता है; वह सुख (हि) निश्चय से (अविचारितरम्यं) बिना विचार के ही सुन्दर प्रतीत होता है।

निवारिताप्यकृत्ये स्यान्निष्फला दुष्फला च धीः।
कृत्ये तु नापि यत्नेन कोऽत्र हेतुर्निरूप्यताम्॥७५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (अकृत्ये) बुरे काम में (निवारिता) निवारण किए जाने पर (अपि) भी (धीः) बुद्धि (निष्फला) फलरहित (च) और (दुष्फला) बुरे फलवाली (स्यात्) होती है; (तु) किन्तु (कृत्ये) अच्छे काम में (यत्नेन अपि) प्रयत्न से भी (न प्रवर्तते) प्रवृत्त नहीं होती है। (अत्र कः हेतुः निरूप्यतां) कहो, इसमें क्या हेतु है?

निश्चित्याप्यघहेतुत्वं दुश्चित्तानां निवारणे।
येनात्मन्निपुणो नासि तद्धि दुष्कर्मवैभवम्॥७६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (आत्मन्) हे आत्मन्! (दुश्चित्तानां) बुरे मानसिक विचारों को (अघहेतुत्वं) पाप का कारण (निश्चित्य) निश्चित करके (अपि) भी (येन) जिस कारण से (त्वं) तू (निवारणे) निवारण करने में (निपुणः) समर्थ (न) नहीं (असि) होता है (हि) निश्चय से (तत् दुष्कर्मवैभवं) यह बुरे कर्मों का ही प्रभाव है।

हेये स्वयं सती बुद्धिर्यत्नेनाप्यसती शुभे।
तद्धेतुकर्म तद्वन्तमात्मानमपि साधयेत्॥७७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (बुद्धिः) बुद्धि (हेये) बुरे कार्य में (स्वयं सती) अपने आप ही लग जाती है; किन्तु (शुभे यत्नेन अपि असती) अच्छे कार्यों में प्रयत्न करने पर भी प्रवृत्त नहीं होती; (तद्

हेतुकर्म) इस प्रवृत्ति का कारण कर्म ही है जो (आत्मानं अपि) आत्मा को भी (तद्वन्तं साधयेत्) अपने समान ही कर देता है।

कोऽहं कीदृग्गुणः क्वत्यः किं प्राप्यः किं निमित्तकः।

इत्यूहः प्रत्यहं नो चेदस्थाने हि मतिर्भवेत्॥७८॥

अन्वयार्थ- (अहं कः) मैं कौन हूँ? (कीदृक् गुणः) मुझमें कौनसे एवं कैसे गुण हैं? (क्वत्यः) मैं कहाँ से आया हूँ? (किंप्राप्यः) मुझे क्या प्राप्त करने योग्य है? (किंनिमित्तकः) और उसमें क्या निमित्त है? (चेत्) यदि (इति ऊहः) इसप्रकार के विचार (प्रत्यहं न स्यात्) प्रतिदिन नहीं हों तो (हि) निश्चय से (मतिः) बुद्धि (अस्थाने भवेत्) अयोग्य स्थान में प्रवृत्त हो जाती है।

मुह्यन्ति देहिनो मोहान्मोहनीयेन कर्मणा।

निर्मितान्निर्मिताशेषकर्मणा धर्मवैरिणा॥७९॥

अन्वयार्थ- (निर्मिताशेषकर्मणा) सम्पूर्ण कर्मों का निर्माण करनेवाले (धर्मवैरिणा) धर्म के शत्रु (मोहनीयेन कर्मणा) मोहनीय कर्म से (निर्मितात्) उत्पन्न (मोहात्) मोह से (देहिनः) प्राणी (मुह्यन्ति) अविवेक को प्राप्त होते हैं।

किं नु कर्तुं त्वयारब्धं किं नु वा क्रियतेऽधुना।

आत्मन्नारब्धमुत्सृज्य हन्त बाह्येन मुह्यसि॥८०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (आत्मन्) हे आत्मन! (त्वया) तूने (किं नु कर्तुं आरब्धं) कार्य का प्रारम्भ किस पावन उद्देश्य से किया था और (अधुना किं नु क्रियते) अब तू ऐसे मोह के कार्य करके यह

क्या कर रहा है? (हन्त) बड़े खेद की बात है कि (आरब्धं उत्सृज्य) प्रारम्भ किए हुए आत्महित के कार्य को छोड़कर (बाह्येन) बाह्य पदार्थों से (मुह्यसि) मोह को प्राप्त हो रहा है।

इदमिष्टमनिष्टं वेत्यात्मन्सङ्कल्पयन्मुधा।

किं नु मोमुह्यसे बाह्ये स्वस्वान्तं स्ववशी कुरु॥८१॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन्! (इदं इष्टं वा अनिष्टं) यह इष्ट है अथवा अनिष्ट है (इति) इसप्रकार (मुधा) असत्य (सङ्कल्पयन्) संकल्प करता हुआ (त्वं) तू (बाह्ये) बाह्य पदार्थों में (किं नु) क्यों (मुह्यसे) मुग्ध हो रहा है? (स्वस्वान्तं स्ववशी कुरु) तू तो अपने मन को अपने वश में कर!

लोकद्वयाहितोत्पादि हन्त स्वान्तमशान्तिमत्।

न द्वेक्षि द्वेक्षि ते मौढ्यादन्यं सङ्कल्प्य विद्विषम्॥८२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः/] (हन्त) बड़े खेद की बात है! (त्वं) तू (लोकद्वयाहितोत्पादि) इस लोक और परलोक में अहित को उत्पन्न करनेवाले (अशान्तिमत्) अशान्तिमय (ते स्वान्तं) अपने मन से (न द्वेक्षि) द्वेष नहीं करता है; किन्तु (मौढ्यात्) मूर्खता से (अन्यं) दूसरों को (विद्विषं सङ्कल्प्य) शत्रु समझकर (द्वेक्षि) द्वेष करता है।

अन्यदीयमिवात्मीयमपि दोषं प्रपश्यता।

कः समः खलु मुक्तोऽयं युक्तः कायेन चेदपि॥८३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (अन्यदीयं दोषं इव) दूसरों के दोषों के सदृश (आत्मीयं) अपने (दोषं अपि प्रपश्यता) दोषों को भी देखनेवाला पुरुष (कः समः) किसके समान है? (अयं) अरे! यह तो (खलु) निश्चय से (कायेन युक्तः चेत्) शरीर से युक्त होता हुआ (अपि) भी (मुक्तः) मुक्त ही है।

इत्याद्यूहपरे लोके केकी तु वियता गतः।

पातयामास राज्ञीं तां तत्पुरप्रेतवेशमनि॥८४॥

अन्वयार्थ- (लोके) वहाँ के लोगों के उससमय (इत्याद्यूहपरे) इसप्रकार के विचारों में मग्न होने पर (वियता गतः) आकाश में गए हुए (केकी) मयूराकृतिवाले यन्त्र ने (तां राज्ञीं) उस विजया रानी को (तत्पुरप्रेतवेशमनि) उस नगर की श्मशान भूमि में (पातयामास) गिरा दिया/उतार दिया।

जीवानां पापवैचित्रीं श्रुतवन्तः श्रुतौ पुरा।

पश्येयुरधुनेतीव श्रीकल्पाभूदकिञ्चना॥८५॥

अन्वयार्थ- (पुरा) पूर्व से (श्रुतौ) शास्त्रों में (जीवानां पाप-वैचित्रीं) जीवों के पापों की विचित्रता को (श्रुतवन्तः) सुननेवाले पुरुष (अधुना) इस समय (पश्येयुः) प्रत्यक्ष देख लें कि (इतीव हेतोः) पापोदय के कारण (श्रीकल्पा) लक्ष्मी के समान विजया रानी (अकिञ्चना अभूत्) जन-धन से शून्य हो गई है।

क्षणनश्वरमैश्वर्यमित्यर्थं सर्वथा जनः।

निरणैषीदिमां दृष्ट्वा दृष्टान्ते हि स्फुटा मतिः॥८६॥

अन्वयार्थ- (जनः) लोगों ने (इमां दृष्ट्वा) रानी को देखकर (ऐश्वर्य क्षणनश्वरं) राज-सम्पत्ति क्षण में नष्ट हो जाती है (इत्यर्थ) इस अर्थ को (सर्वथा) सर्वप्रकार से (निरणैषीत्) निर्णय किया।

[अत्र नीतिः] (हि) क्योंकि (दृष्टान्ते) दृष्टान्त मिलने पर (मतिः) बुद्धि (स्फुटा भवेत्) निर्मल हो जाती है।

पूर्वाह्णे पूजिता राज्ञी राज्ञा सैवापराह्णके।

परेतभूशरण्याभूत्पापात् बिभ्यतु पण्डिताः॥८७॥

अन्वयार्थ- {या} (राज्ञी) जो रानी (पूर्वाह्णे) प्रातःकाल (राज्ञा) राजा से (पूजिता) सम्मानित थी, (सा एव) उसी रानी ने (अपराह्णके) मध्याह्न काल में (परेतभूशरण्याभूत्) श्मशानभूमि की शरण ली।

[अत्र नीतिः] इसी कारण (पापात्) पाप से (पण्डिताः बिभ्यतु) पण्डित लोग डरें।

सा तु मूर्छा पराधीना सूतिपीडामजानती।

मासि वैजनने सूनुं सुषुवे हन्त तद्दिने॥८८॥

अन्वयार्थ- (तु) तदनन्तर (हन्त) खेद है (तद् दिने) उसी दिन (वैजनने मासि) प्रसव मास में (मूर्छा पराधीना सा) मूर्छा के आधीन उस रानी ने (सूतिपीडां) प्रसूति की पीड़ा (अजानती) नहीं जानती हुई (सूनुं सुषुवे) पुत्र को जन्म दिया।

तावता देवता काचिद्धात्रीवेषेण संन्यधात्।

तत्रैव पुत्रपुण्येन पुण्ये किं वा दुरासदम्॥८९॥

अन्वयार्थ- (तावता) उसीसमय (तत्रैव) वहाँ पर (पुत्रपुण्येन) पुत्र के पुण्य से (काचिद् देवता) कोई देवी (धात्रीवेषेण) धाय का वेष धारण कर (संन्यधात्) आई।

[अत्र नीतिः] (पुण्ये किं) पुण्य के उदय में क्या (दुरासदं) दुर्लभ है? {न किमपि} कुछ भी दुष्प्राप्य या दुर्लभ नहीं होता है।

तां पश्यन्त्या अभूत्तस्या उद्वेलः शोकसागरः।

सन्निधौ हि स्वबन्धूनां दुःखमुन्मस्तकं भवेत्॥९०॥

अन्वयार्थ- (तां) उसको (पश्यन्त्याः) देखकर (तस्याः) रानी का (शोकसागरः) शोकरूपी सागर (उद्वेलः अभूत्) उमड़ पड़ा और बढ़ गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वबन्धूनां) अपने बन्धुओं के (सन्निधौ) निकट होने पर (दुःखं) दुःख (उन्मस्तकं भवेत्) पूर्व से अत्यन्त अधिक हो जाता है।

देवता तु समाश्वास्य जातमाहात्म्यवर्णनैः।

ऊर्णादिदर्शनोद्भूतैर्देवीं तामित्यवोचयत्॥९१॥

अन्वयार्थ- (तु) तदनन्तर (देवता) उस देवी ने (ऊर्णादिदर्शनोद्भूतैः) भौं के मध्य बालों के ऊपर भौंरी इत्यादिक अनेक चिह्न दिखाकर (जातमाहात्म्यवर्णनैः) बालक का माहात्म्य वर्णन करके (तां देवीं समाश्वास्य) उस रानी को विश्वास दिलाकर (इति अवोचयत्) इसप्रकार कहा।

पुत्राभिवर्धनोपाये देवि! चिन्ता निवर्त्यताम्।

क्षत्रपुत्रोचितं कश्चिदेनं संवर्धयिष्यति ॥९२॥

अन्वयार्थ- (देवि) हे देवी! तुम (पुत्राभिवर्धनोपाये) पुत्र की वृद्धि के उपाय में (चिन्ता निवर्त्यतां) चिन्ता मत करो (कश्चित्) कोई (क्षत्रपुत्रोचितं) क्षत्रियों के पुत्रों के योग्य (एनं) इसका (संवर्धयिष्यति) पालन-पोषण करेगा।

इत्युक्ते कोऽपि दृष्टोऽभूद्विसृष्टप्रेतसूनुकः।

सूनुं सूनृतयोगीन्द्रवाक्यात्तत्र गवेषयन् ॥९३॥

अन्वयार्थ- (इत्युक्ते) ऐसा कहते ही (विसृष्टप्रेतसूनुकः) रखा है मरे हुए पुत्र को जिसने ऐसा और (सूनृतयोगीन्द्रवाक्यात्) सत्यार्थ मुनिराज के वचन से (तत्र सूनुं गवेषयन्) वहाँ पर जीवित पुत्र को ढूँढ़ता हुआ (कः अपि दृष्टः अभूत्) कोई दिखाई दिया।

तद्दर्शनेन तद्वाक्यं प्रमाणं निर्णिनाय सा।

निश्चलादविसंवादाद्वस्तुनो हि विनिश्चयः ॥९४॥

अन्वयार्थ- (सा) उस विजया रानी ने (तद्दर्शनेन) उस सेठ को देखने से (तद्वाक्यं) देवी के वचनों को (प्रमाणं निर्णिनाय) प्रमाण/सत्य समझा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (निश्चलात्) निश्चल/स्थिर (अविसंवादात्) और विसंवाद रहित वचन से (वस्तुनः) वस्तु का (विनिश्चयः) निश्चय होता है।

ततो गत्यन्तराभावाद्देवताप्रेरणाच्च सा।

पित्रीयमुद्रयोपेतमाशास्यान्तर्धात्सुतम् ॥९५॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर (सा) वह रानी (गत्यन्तराभावात्) और कोई उपाय न देखकर (च) एवं (देवताप्रेरणात्) उस देवी की प्रेरणा से (पित्रीयमुद्रयोपेतं) पिता की मुद्रा से युक्त (सुतं) पुत्र को (आशास्य) आशीर्वाद देकर (अन्तर्धात्) छिप गई।

गन्धोत्कटोऽपि तं पश्यन्नातृपद्वैश्यनायकः।

एधोन्वेषिजनैर्दृष्टः किं वा न प्रीतये मणिः॥९६॥

अन्वयार्थ- (वैश्यनायकः) वैश्यों के मुखिया (गन्धोत्कटः अपि) गन्धोत्कट भी (तं) उस बालक को (पश्यन्) देखकर देखते ही रहे, (न अतृपत्) तृप्त नहीं हुए।

[अत्र नीतिः/] (एधोन्वेषिजनैः) ईन्धन ढूँढ़नेवाले मनुष्यों द्वारा (दृष्टः) देखी गई (मणिः) मणि (किं वा) क्या (प्रीतये न भवति) प्रीति के लिए नहीं होती है? किन्तु अवश्य ही प्रीति के लिए होती है।

हर्षकण्टकिताङ्गोऽयमादधानस्तमङ्गजम्।

जीवेत्याशिषमाकर्ण्य तन्नाम समकल्पयत्॥९७॥

अन्वयार्थ- (हर्षकण्टकिताङ्गः) हर्ष से रोमाञ्चित है अंग जिसका ऐसे (अयं) इसे गन्धोत्कट ने (तं अङ्गजं) उस पुत्र को (आदधानः) उठाकर (जीव) जीव (इति आशिषं) ऐसा आशीर्वाद (आकर्ण्य) सुनकर (तन्नाम समकल्पयत्) उसका नाम जीवक वा जीवन्धर रखा।

अमृतं सूनुमज्ञानात्संस्थितं कथमभ्यधाः।

इति क्रुध्यन्स्वभार्यायै सानन्दोऽयमदात्सुतम्॥९८॥

अन्वयार्थ- इसके पश्चात् घर जाकर (स्वभार्यायै) अपनी स्त्री/पत्नी पर (क्रुध्यन्) क्रोध करते हुए (सानन्दः अयं) आनन्द सहित गन्धोत्कट ने (सुतं अदात्) पुत्र को सौंप दिया और पत्नी से कहा-(अमृतं) नहीं मरे हुए (सुनूं) बालक को (अज्ञानात्) अज्ञान से तुमने (संस्थितं) मरा हुआ (कथं) कैसे (अभ्यधाः) कह दिया?

अभ्यनन्दीत्सुनन्दापि नन्दनस्यावलोकनात्।

प्राणवत्प्रीतये पुत्रा मृतोत्पन्नास्तु किं पुनः॥९९॥

अन्वयार्थ- (सुनन्दा अपि) सेठ की स्त्री सुनन्दा भी (नन्दनस्य) पुत्र को (अवलोकनात्) देखने से (अभ्यनन्दीत्) अत्यन्त आनन्दित हो गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पुत्राः) पुत्र (प्राणवत्) सहज ही प्राणों की तरह (प्रीतये भवन्ति) प्रीति के कारण होते हैं (तु) फिर जो (मृतोत्पन्नाः किं पुनः) पुत्र मरकर पुनः जीवित हो जाए तो उसका कहना ही क्या है?

देवता जननीमस्य बन्धुवेश्मपराङ्मुखीम्।

दण्डकारण्यमध्यस्थमनैषीत्तापसाश्रमम्॥१००॥

अन्वयार्थ- (देवता) वह देवी (बन्धुवेश्मपराङ्मुखीं) बन्धुओं के घर जाने से विमुख (अस्य जननीं) इन जीवन्धर की माता को (दण्डकारण्यमध्यस्थं) दण्डकवन के मध्य में स्थित (तापसाश्रमं) तपस्वियों के आश्रम में (अनैषीत्) ले जाती है।

कृत्वा च तां तपस्यन्तीं सतोषा सा मिषादगात्।
समीहितार्थसंसिद्धौ मनः कस्य न तुष्यति॥१०१॥

अन्वयार्थ- इसके पश्चात् (तां) उस रानी को (तपस्यन्तीं) तपश्चरण क्रिया में (कृत्वा) लगा करके (सतोषा सा) सन्तुष्ट वह देवी किसी (मिषात्) बहाने से (अगात्) चली गई।

[अत्र नीतिः] (समीहितार्थसंसिद्धौ) मनोभिलषित अर्थ के सिद्ध हो जाने पर (कस्य मनः) किसका मन (न तुष्यति) सन्तुष्ट नहीं होता है? अर्थात् सबका मन सन्तुष्ट होता ही है

अवात्सीद्राजपत्नी च वत्सं निजमनोगृहे।
जिनपादाम्बुजं चैव ध्यायन्ती हन्त तापसी॥१०२॥

अन्वयार्थ- (हन्त) खेद की बात है! (तापसी) तपस्विनी (राजपत्नी) राजा की स्त्री पटरानी विजया (निजमनोगृहे) अपने मनरूपी घर में (वत्सं) पुत्र जीवन्धरकुमार का (जिनपादाम्बुजं) जिनेन्द्र के चरण कमलों का (चैव) भी (ध्यायन्ती अवात्सीत्) ध्यान करती हुई निवास कराती है।

अनल्पतूलतल्पस्थ सवृन्तप्रसवादपि।
निर्भरं हन्त सीदन्त्यै दर्भशय्याप्यरोचत॥१०३॥

अन्वयार्थ- और (हन्त) बड़े खेद की बात है! (अनल्पतूलतल्पस्थ- सवृन्तप्रसवाद अपि) बहुत-सी रुई के बिछे हुए हैं गद्दे जिस पर-ऐसी शय्या के ऊपर पड़े हुए डण्ठल सहित पुष्पों से भी (निर्भरं सीदन्त्यै) अत्यन्त क्लेश माननेवाली रानी के

लिए (दर्भ- शय्या अपि) डाभ की चटाई भी (अरोचत) रुचिकर लगने लगी।

स्वहस्तलूननीवारोऽप्याहारोऽस्याः परेण किम्।
अवश्यं ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥१०४॥

अन्वयार्थ- (परेण किं) और तो क्या? (स्वहस्तलूननीवारः अपि) अपने हाथ से कटा हुआ नीवार धान्य भी (अस्याः) इसका (आहारः) {अजनि} आहार हुआ।

[अत्र नीतिः] (पूर्वकृतं) पूर्व में किया हुआ (शुभाशुभं कर्म) शुभ और अशुभ कर्म का फल (अवश्यं अनुभोक्तव्यं) अवश्य ही भोगना पड़ता है।

अथ गन्धोत्कटायार्थमर्भकार्थं महोत्सवम्।
आत्मार्थं गणयन्मूढः काष्ठाङ्गारोऽप्यदान्मुदा॥१०५॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर (मूढः) मूढ़ (काष्ठाङ्गारः) काष्ठांगार ने (अर्भकार्थं महोत्सव) बालक के जन्म के महोत्सव को (आत्मार्थं) अपनी राज्य-प्राप्ति के उपलक्ष्य में (गणयन्) समझकर उस (गन्धोत्कटाय) गन्धोत्कट सेठ को (मुदा) हर्ष से (अर्थ) धन (अदात्) प्रदान किया।

तत्क्षणे तत्पुरे जातान्जातानपि तदाज्ञया।
लब्ध्वा वैश्यपतिः पुत्रं मित्रैः सार्धमवर्धयत्॥१०६॥

अन्वयार्थ- (वैश्यपतिः) वैश्यों में प्रधान गन्धोत्कट (तत्क्षणे) उस दिन (तत्पुरे जातान्) उस नगर में उत्पन्न हुए (जातान्) बालकों

को (तदाज्ञया) काष्ठांगार की आज्ञा से (लब्ध्वा) प्राप्त करके (मित्रैः सार्धं) उन मित्रों के साथ (पुत्रं अवर्धयत्) पुत्र का पालन-पोषण करने लगे।

अथ जातः सुनन्दायाः नन्दाढ्यो नाम नन्दनः।

तेन जीवन्धरो रेजे सौभ्रात्रं हि दुरासदम्॥१०७॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर (सुनन्दायाः) गन्धोत्कट की स्त्री सुनन्दा के (नन्दाढ्यः नाम नन्दनः) नन्दाढ्य नाम का पुत्र (जातः) उत्पन्न हुआ। (तेन) उस पुत्र से (जीवन्धरः) जीवन्धरकुमार (रेजे) और शोभित होते हैं।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सौभ्रात्रं दुरासदं) अच्छे भाई का मिलना बड़ा कठिन है।

एवं सद्बन्धुमित्रोऽयमेधमानो दिने दिने।

अतिशेते स्म शीतांशुमकलङ्काङ्गभावतः॥१०८॥

अन्वयार्थ- (एवं) इसप्रकार (सद्बन्धुमित्रः अयं) श्रेष्ठ बन्धु और मित्र हैं जिसके ऐसे इन जीवन्धरकुमार ने (दिने दिने) दिन-प्रतिदिन (एधमानः) बढ़ते हुए (अकलङ्काङ्गभावतः) निर्दोष शरीर की कान्ति से (शीतांशुं) चन्द्रमा को (अतिशेते स्म) जीत लिया।

ततः शैशवसम्भूषणु-सर्वव्यसनदूरगः।

पञ्चमं च वयो भेजे भाग्ये जाग्रति का व्यथा॥१०९॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर (शैशवसम्भूष्णु-सर्वव्यसनदूरगः) बालक अवस्था में होने वाले सम्पूर्ण संकटों से रहित होते हुए जीवन्धरकुमार ने (पञ्चमं वयो भेजे) पाँचवें वर्ष की अवस्था प्राप्त की।

[अत्र नीतिः] (भाग्ये) भाग्य के (जाग्रति सति) जागृत रहने पर (का व्यथा) कौन-सी पीड़ा हो सकती है? कोई भी नहीं हो सकती।

अथानर्थकमव्यक्तमतिहृद्यं च वाङ्मयम्।

मुक्त्वातिव्यक्तगीरासीत्स्वयं वृण्वन्ति हि स्त्रियः॥११०॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर (अनर्थकं) अर्थशून्य (अव्यक्तं) अस्पष्ट शब्दवाली (च) और (अतिहृद्यं) बाल सुलभ मनोहर (वाङ्मयं) बालक अवस्था की तोतली भाषा को (मुक्त्वा) छोड़कर जीवन्धरकुमार (अतिव्यक्तगीः आसीत्) अत्यन्त स्पष्टभाषी हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्त्रियः स्वयं वृण्वन्ति) स्त्रियाँ अच्छे पति को स्वयं वर लेती हैं अर्थात् स्पष्ट सुसंस्कृत वाणी ने जीवन्धरकुमार का आश्रय लिया।

आचार्यकवपुः कश्चिदार्यनन्दीति कीर्तितः।

आसीदस्य गुरुः पुण्याद्गुरुरेव हि देवता॥१११॥

अन्वयार्थ- (अस्य पुण्यात्) इन जीवन्धरकुमार के पुण्य से उस समय (कश्चिद् आचार्यकवपुः) कोई आचार्य की पदवी को प्राप्त

और (आर्यनन्दीति कीर्तितः) आर्यनन्दी नाम से प्रसिद्ध (गुरुः आसीत्) गुरु प्राप्त हो गए।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (गुरुः एव देवता) गुरु ही देवता है।

निष्प्रत्यूहेष्टसिद्ध्यर्थं सिद्धपूजादिपूर्वकम्।

सिद्धमातृकया सिद्धामथ लेभे सरस्वतीम्॥११२॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर जीवन्धरकुमार ने (निष्प्रत्यूहेष्टसिद्ध्यर्थं) निर्विघ्न इष्ट सिद्धि के लिए (सिद्धपूजादिपूर्वकं) सिद्धपरमेष्ठी की पूजा करके (सिद्धमातृकया सिद्धां) अनादि स्वर, व्यंजन, मात्राओं से प्रसिद्ध (सरस्वतीं) सरस्वती को (लेभे) प्राप्त किया।

इति श्री वादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ
सरस्वतीलम्भो नाम प्रथमो लम्बः।

द्वितीयो लम्बः

अथ विद्यागृहं किञ्चिदासाद्य सखिमण्डितः।
पण्डिताद्विश्वविद्यायामध्यगीष्टातिपण्डितः॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर (सखिमण्डितः) मित्रगणों से घिरे हुए जीवन्धरकुमार ने (किञ्चित् विद्यागृहं) किसी विद्यालय को (आसाद्य) प्राप्त करके (विश्वविद्यायां पण्डितात्) सम्पूर्ण विद्याओं में कुशल विद्वान गुरु से (अध्यगीष्ट) विद्या प्राप्त की (पश्चात्) तदनन्तर (अतिपण्डितः) महान विद्वान {बभूव} हो गए।

तस्य प्रश्रयशुश्रूषाचातुर्याद् गुरुगोचरात्।
स्मृता इवाभवन्विद्या गुरुस्नेहो हि कामसूः॥२॥

अन्वयार्थ- (तस्य) उनको (गुरुगोचरात्) गुरु के विषय में (प्रश्रयशुश्रूषाचातुर्यात्) सेवा, शुश्रूषा और चतुराई से (विद्या स्मृता इव) विद्याएँ स्मरण की तरह (अभवन्) आ गईं। जिस तरह भूली हुई वस्तु याद आ जाती है; इसीतरह उन्हें विद्याएँ प्राप्त हो गईं।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (गुरुस्नेहः कामसूः) गुरु का प्रेम सम्पूर्ण इच्छाओं को पूरा करनेवाला होता है।

अनुजीवकमेवात्र जीवलोके विपश्चितः।
इति निश्चयतः सूरिः सुतरां प्रीतिमव्रजत्॥३॥

अन्वयार्थ- (अत्र जीवलोके) इस जगत में (विपश्चितः) जितने विद्वान हैं, वे सब (जीवकं अनु एव) जीवन्धरकुमार से कम

योग्यता के ही हैं (इति निश्चयतः) ऐसा निश्चय होने से (सूरिः) पढ़ानेवाले आचार्य को (सुतरां प्रीतिं) सहज ही जीवन्धरकुमार से विशेष प्रेम (अव्रजत्) हो गया।

आत्मकृत्यमकृत्यं च सफलं प्रीतये नृणाम्।

किं पुनः श्लाघ्यभूतं तत् किं विद्यास्थापनात्परम्॥४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (नृणां) मनुष्यों को (आत्मकृत्यं अकृत्यं) अपना किया हुआ बुरा कार्य भी (सफलं) सफल होने पर (प्रीतये) प्रीतिकर {भवति} होता है तो फिर (श्लाघ्यभूतं) अच्छा काम (सफल होने पर) (किं पुनः वक्तव्यं) क्यों अच्छा नहीं लगेगा? लगेगा ही, उसमें भी (विद्यास्थापनात्परं तत् किं) विद्यादान से बढ़कर और दूसरा कौन-सा काम अच्छा है?

अथ प्रसन्नधीः सूरिरन्तेवासिनमेकदा।

एकान्ते हि निजप्रान्तमावसन्तमचीकथत्॥५॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (एकदा) एक दिन (प्रसन्नधीः) प्रसन्नचित्त (सूरिः) गुरु ने (निजप्रान्तं आवसन्तं) अपने पास रहनेवाले (अन्तेवासिनं) शिष्य से (एकान्ते) एकान्त में (अचीकथत्) कहा।

श्रुतशालिन्महाभाग! श्रूयतामिह कस्यचित्।

चरितं चरितार्थेन यदत्यर्थं दयावहम्॥६॥

अन्वयार्थ- (श्रुतशालिन्महाभाग) हे शास्त्रज्ञान से शोभित उत्तम भाग्यवान! (इह) इस लोक में प्रसिद्ध (कस्यचित्) किसी के

(चरितं) चरित्र को (श्रूयतां) सुनो। (यत् चरितं) जो चरित्र (चरितार्थेन) सुनने से (अत्यर्थं) अत्यन्त (दयावहं) दया उत्पन्न करनेवाला है।

विद्याधरास्पदे लोके लोकपालाह्वयान्वितः।

लोकं वै पालयन्भूपः कोऽपि कालमजीगमत्॥७॥

अन्वयार्थ- (विद्याधरास्पदे लोके) विद्याधरों का है स्थान जिसमें ऐसे लोक में (लोकपालाह्वयान्वितः) लोकपाल है नाम जिसका ऐसा (कः अपि भूपः) कोई राजा (लोकं वै पालयन्) प्रजा का पालन करता हुआ (कालं अजीगमत्) काल बिताता था।

क्षणक्षीणत्वमैश्वर्यं क्षीवाणामिव बोधयत्।

क्षेपीयः पश्यतां नश्यदभ्रमैक्षिष्ट सोऽधिराट्॥८॥

अन्वयार्थ- एक दिन (सः अधिराट्) उस लोकपाल राजा ने (क्षीवाणां) धनोन्मत्त पुरुषों के (ऐश्वर्यं) ऐश्वर्य के विषय में (क्षणक्षीणत्वं) क्षणभंगुरता का (बोधयत् इव) बोध करानेवाले (पश्यतां) {अग्रे} आँखों के सामने देखते ही देखते (क्षेपीयः नश्यत्) शीघ्र ही नाश होनेवाले (अभ्रं) मेघ को (ऐक्षिष्ट) देखा।

तद्वीक्षणेन वैराग्यं विजजृम्भे महीभुजः।

पम्फुलीति हि निर्वेगो भव्यानां कालपाकतः॥९॥

अन्वयार्थ- (तद्वीक्षणेन) उस मेघ को देखने से (महीभुजः) राजा का (वैराग्यं) वैराग्य (विजजृम्भे) वृद्धिगत हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भव्यानां) भव्य पुरुषों की (कालपाकतः) काललब्धि के आ जाने पर (निर्वेगः) निर्वेग (सांसारिक विषयों में उदासीनता) भाव (पम्फुलीति) अतिशयता से प्रगट हो जाता है।

ततोऽयं पुत्रनिक्षिप्तराज्यभारः क्षितीश्वरः।

जैनीं दीक्षामुपादत्त यस्यां कायेऽपि हेयता॥१०॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके पश्चात् (पुत्रनिक्षिप्तराज्यभारः) पुत्र के ऊपर छोड़ा है राज्यभार को जिसने ऐसे (अयं क्षितीश्वरः) इस राजा ने (जैनीं दीक्षां) वह जैनी दीक्षा (उपादत्त) धारण की।

[अत्र नीतिः] (यस्यां) जिस दीक्षा में (काये) शरीर सम्बन्ध में (अपि) भी (हेयता) त्याग-बुद्धि होती है।

तपांसि तप्यमानस्य तस्य चासीदहो पुनः।

भस्मकाख्यो महारोगो भुक्तं यो भस्मयेत्क्षणात्॥११॥

अन्वयार्थ- (अहो) खेद है! (तपांसि तप्यमानस्य) तप को तपते हुए (तस्य) तपस्वी उन मुनिराज को (भस्मकाख्यः) भस्मक नाम का (महारोगः) ऐसा महारोग (आसीत्) उत्पन्न हुआ; (यः) जो रोग (भुक्तं) खाए हुए अत्यन्त पौष्टिक पदार्थों को भी (क्षणात्) क्षण मात्र में (भस्मयेत्) भस्म कर देता है।

न हि वारयितुं शक्यं दुष्कर्माल्पतपस्यया।

विस्फुलिङ्गेन किं शक्यं दग्धुमाद्रमपीन्धनम्॥१२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अल्पतपस्यया) थोड़ी-सी तपस्या के द्वारा (दुष्कर्म) खोटा कर्म (निवारयितुं) निवारण करने के लिए कोई भी (न शक्यं) समर्थ नहीं हो सकता। (किं) क्या (विस्फुलिङ्गेन) अग्नि की जरा सी चिंगारी से (आर्द्र ईन्धनं) गीला ईन्धन (दग्धुं शक्यं) जलने के लिए समर्थ है? {अपि तु दग्धुं न शक्यं} बिलकुल जलने के लिए समर्थ नहीं है।

अशक्त्यैव तपः सोऽयं राजा राज्यमिवात्यजत्।

श्रेयांसि बहुविघ्नानीत्येतन्नह्यधुनाभवत्॥१३॥

अन्वयार्थ- (सः अयं राजा) उसी राजा ने (अशक्त्या एव) शक्तिहीनपने से ही (राज्यं इव) राज्य की तरह (तपः अत्यजत्) तप करना भी छोड़ दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (श्रेयांसि बहु विघ्नानि) कल्याणकारी कार्य बहुत विघ्नवाले (भवन्ति) होते हैं (इति एतद् अधुना न अभवत्) यह किंवदन्ती अभी की नहीं है; अपितु पहले से चली आ रही है।

तपसाच्छादितस्तिष्ठन्स्वैराचारी हि पातकी।

गुल्मेनान्तर्हितो गृह्णन्विष्करानिव नाफलः॥१४॥

अवर्तिष्ठ यथेष्टं स पाखण्डितपसा पुनः।

चित्रं जैनी तपस्या हि स्वैराचारविरोधिनी॥१५॥

अन्वयार्थ- (पुनः) इसके पश्चात् (सः) वह (स्वैराचारी पातकी) स्वेच्छाचारी पापी पुरुष (गुल्मेनान्तर्हितः) झाड़ियों में छिपे हुए (विष्करान् गृह्णन्) चिड़ियों को पकड़नेवाले (नाफलः इव) व्याध

के सदृश (तपसाच्छादितः तिष्ठन्) झूठे तप से आच्छादित होते हुए अर्थात् तप के बहाने से (पाखण्डि-तपसा) पाखण्ड तप के द्वारा (यथेष्टं) इच्छानुसार इधर-उधर (अवर्तिष्ट) घूमने लगा।

[अत्र नीतिः] (चित्रं) आश्चर्य है! (हि) निश्चय से (जैनी तपस्या) जैनधर्म के अनुसार तपश्चरण (स्वैराचारविरोधिनी) स्वच्छन्द आचरण का विरोधी है। अतः मुनि के वेश में तो लोकपाल स्वेच्छाचार में प्रवृत्त हो नहीं सकता था।

अथ भिक्षुर्बुभुक्षुः सन् गन्धोत्कटगृहं गतः।

उपतापरुजोऽप्येष धार्मिकाणां भिषक्तमः॥१६॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर (भिक्षुः) भिक्षुक (बुभुक्षुः सन्) भूख से पीड़ित होते हुए (गन्धोत्कटगृहं गतः) गन्धोत्कट सेठ के घर गया। (एषः) यह तापसी (उपतापरुजः अपि) रोग से पीड़ित होते हुए भी (धार्मिकाणां) धर्मात्मा पुरुषों का (भिषक्तमः) उत्तम वैद्य था।

धार्मिकाणां शरण्यं हि धार्मिका एव नापरे।

अहेर्नकुलवत्तेषां प्रकृत्यान्ये हि विद्विषः॥१७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (धार्मिकाणां) धार्मिक पुरुषों के (शरण्यं) रक्षक (धार्मिकाः एव) धार्मिक पुरुष ही होते हैं (अपरे न) दूसरे नहीं। और (अन्ये) दुर्जन पुरुष (अहेः नकुलवत्) सर्प-नेवले के सदृश (प्रकृत्या) स्वभाव से (तेषां) सज्जन पुरुषों के (विद्विषः) शत्रु होते हैं।

तत्र मध्येगृहं भिक्षुरद्राक्षीत्पुत्रपुङ्गवम्।

अङ्ग त्वां त्वं च तं वीक्ष्य तद् बुभुक्षामलक्षयः॥१८॥

अन्वयार्थ- (तत्र) वहाँ पर (भिक्षुः) भिक्षुक ने (मध्ये गृहं) घर के मध्य में (अङ्ग) हे अङ्ग! (पुत्रपुङ्गवं) पुत्रों में श्रेष्ठ (त्वां) तुमको (अद्राक्षीत्) देखा (च) और (त्वं) तुमने (तं वीक्ष्य) उसे देखकर (तद्बुभुक्षां) उसकी भूख को (अलक्षयः) जान लिया।

भोक्तुमारभमाणस्त्वं पौरोगवमचीकथः।

भोज्यतामयमित्येष पुनरेनमबूभुजत्॥१९॥

अन्वयार्थ- (भोक्तुं आरभमाणः) भोजन करने के लिए प्रवृत्त (त्वं) तुमने (अयं भोज्यतां) इनको भोजन कराओ (इति पौरोगवं) ऐसा रसोइए से (अचीकथः) कहा। (पुनः) फिर (एषः) इस रसोइए ने (एनं) इसको (अबूभुजत्) भोजन कराया।

अन्नैस्तद्गृहसम्पन्नैर्नाभूत्तत्कुक्षिपूरणम्।

अहो पापस्य घोरत्वमाशाब्धिः केन पूर्यते॥२०॥

अन्वयार्थ- (तद्गृहसम्पन्नैः) उस घर में तैयार (अन्नैः) अन्न से-(तत्कुक्षिपूरणं) उस भिक्षुक की उदरपूर्ति (न अभूत्) नहीं हुई।

[अत्र नीतिः] (अहो पापस्य घोरत्वं) पाप का भयंकरपना भी कैसा विचित्र है? (आशाब्धिः) आशारूपी समुद्र (केन पूर्यते) किससे पूर्ण हो सकता है?

अभुञ्जानस्त्वमाश्चर्यादासीनोऽस्मै वितीर्णवान्।

कारुण्यादस्य पुण्याद्वा करस्थं कवलं मुदा॥२१॥

अन्वयार्थ- (अभुञ्जानः) भोजन नहीं करते हुए और (आश्चर्यात् आसीनः) आश्चर्य से बैठे हुए (त्वं) तुमने (कारुण्यात्) करुणा से (वा अस्य पुण्यात्) अथवा उसके पुण्य से (करस्थं) अपने हाथ में रखे हुए (कवलं) घास को (मुदा) हर्ष से (अस्मै) इसे (वितीर्णवान्) दे दिया।

वर्णिनो जठरं पूर्णं तदास्वादनतः क्षणात्।

आशाब्धिरिव नैराश्यादहो पुण्यस्य वैभवम्॥२२॥

अन्वयार्थ- जैसे (नैराश्यात्) निराशपने से (आशाब्धिः) आशा रूपी समुद्र पूर्ण हो जाता है (इव) उसी तरह (वर्णिनः जठरं) उस तपस्वी का उदर (तदास्वादनतः) उसके स्वादमात्र से (क्षणात् पूर्ण अभूत्) क्षण मात्र में पूर्ण भर गया।

[अत्र नीतिः] (अहो पुण्यस्य वैभवं) पुण्य की भी कैसी विचित्र सामर्थ्य है!

परिव्राडपि सम्प्राप्य सौहित्यं तत्क्षणे चिरात्।

महोपकारिणोऽस्याहं किं करोमीत्यचिन्तयत्॥२३॥

अन्वयार्थ- (परिव्राडपि) तपस्वी ने भी (तत्क्षणे) उसी समय (चिरात्) बहुत काल के पश्चात् (सौहित्यं सम्प्राप्य) रोगनिवृत्ति/स्वस्थता को प्राप्त करके (अस्य महोपकारिणः) इस महा उपकारी का (अहं) मैं (किं करोमि) क्या उपकार करूँ (इति अचिन्तयत्) ऐसा विचार किया।

अपश्चिमफलां विद्यां निश्चित्यात्र प्रतिक्रियाम्।

आयुष्मन्तमसौ पश्चाद्विपश्चितमकल्पयत्॥२४॥

अन्वयार्थ- (पश्चाद् असौ) फिर इसने (अपश्चिमफलां विद्यां) उत्कृष्ट फलवाली विद्या को (अस्य प्रतिक्रियां) इसका प्रत्युपकार (निश्चित्य) निश्चय करके (आयुष्मन्तं) चिरंजीवी जीवन्धरकुमार को (विपश्चितं अकल्पयत्) विद्वान बना दिया।

विद्या हि विद्यमानेयं वितीर्णापि प्रकृष्यते।

नाकृष्यते च चोराद्यैः पुष्यत्येव मनीषितम्॥२५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विद्यमाना) विद्यमान (इयं विद्या) यह विद्या (वितीर्णा अपि) दूसरे के लिए दी हुई भी (प्रकृष्यते) वृद्धि को प्राप्त होती है और यह (चोराद्यैः) चोर आदि से (न आकृष्यते) नहीं चुराई जा सकती; प्रत्युत (मनीषितं) इच्छित कार्य को (पुष्यति एव) पुष्ट ही करती है।

वैदुष्येण हि वंश्यत्वं वैभवं सदुपास्यता।

सदस्यतालमुक्तेन विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥२६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वैदुष्येण) पाण्डित्य अथवा विद्या से (वंश्यत्वं) कुलीनता (वैभवं) वैभव (सदुपास्यता) सज्जन पुरुषों से पूज्यपना और (सदस्यता) सज्जनता प्राप्त होती है (उक्तेन अलं) बहुत कहने से क्या? (विद्वान् सर्वत्र पूज्यते) बुद्धिमान पुरुष सर्वत्र पूजे जाते हैं।

वैपश्चित्यं हि जीवानामाजीवितमनिन्दितम्।

अपवर्गेऽपि मार्गोऽयमदः क्षीरमिवौषधम्॥२७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (जीवानां) मनुष्यों का (वैपश्चित्यं) पाण्डित्य (आजीवितं) जीवन पर्यन्त (अनिन्दितं) प्रशंसनीय है और (अयं) यह (अपवर्गे अपि मार्गः) मोक्ष का भी मार्ग है। (अदः क्षीरं औषधं इव) जैसे दूध शरीर को पुष्ट करने वाला होता हुआ औषधि भी है।

इत्युदन्तं गुरोः श्रुत्वा शिष्यो नोत्तरमूचिवान्।

स्ववाचा किन्तु वक्त्रेण शैष्योपाध्यायिका हि सा॥२८॥

अन्वयार्थ- (शिष्यः) शिष्य ने (इति गुरोः उदन्तं) इसप्रकार गुरु के वृत्तान्त को (श्रुत्वा) सुन करके (स्व वाचा नोत्तरं ऊचिवान्) अपनी वाणी से उत्तर नहीं दिया, किन्तु (वक्त्रेण एव) मुख की चेष्टा से ही (उत्तरं ऊचिवान्) उत्तर दिया। (हि) निश्चय से (सा एव शैष्योपाध्यायिका) यही शिष्य और गुरुपत्नी है अर्थात् शिष्ट शिष्य गुरु के समीप वाचाल नहीं होते हैं।

विज्ञातगुरुशुद्धिः स विशेषात्पिप्रियेतराम्।

माणिक्यस्य हि लब्धस्य शुद्धेर्मोदो विशेषतः॥२९॥

अन्वयार्थ- (विज्ञातगुरुशुद्धिः सः) जान ली है गुरु के हृदय की पवित्रता जिन्होंने ऐसे जीवन्धरकुमार (विशेषतः) और अधिक (पिप्रियेतरां) प्रसन्न हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लब्धस्य माणिक्यस्य) प्राप्त हुई मणि की (शुद्धेः) उत्तमता के निर्णय से (विशेषात्) विशेष (मोदः) {भवति} हर्ष होता है।

रत्नत्रयविशुद्धः सन्पात्रस्नेही परार्थकृत्।
परिपालितधर्मो हि भवाब्धेस्तारको गुरुः॥३०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (यः रत्नत्रयविशुद्धः सन्) जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र से विशुद्ध होते हुए, (पात्रस्नेही) पात्र शिष्यों से स्नेह करनेवाले, (परार्थकृत्) परोपकारी, (परिपालितधर्मः) धर्म का पालन करनेवाले और (भवाब्धेः तारकः) संसाररूपी समुद्र से तारनेवाले हों {सः} (गुरु) {अस्ति} वे ही सच्चे गुरु हैं।

गुरुभक्तो भवाद्भीतो विनीतो धार्मिकः सुधीः।
शान्तस्वान्तो ह्यतन्द्रालुः शिष्टः शिष्योऽयमिष्यते॥३१॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] {यः} (हि) निश्चय से (गुरुभक्तः) जो गुरुभक्त (भवात् भीतः) संसार से भयभीत (विनीतः) विनयी (धार्मिकः) धर्मात्मा (सुधीः) उत्तम बुद्धिवाला (शान्तस्वान्तः) हृदय का शान्त (अतन्द्रालुः) आलस्यरहित और (शिष्टः) उत्तम आचरणवाला हो {स} (अयं शिष्यः इष्यते) वही सच्चा शिष्य है।

गुरुभक्तिः सती मुक्त्यै क्षुद्रं किं वा न साधयेत्।
त्रिलोकीमूल्यरत्नेन दुर्लभः किं तुषोत्करः॥३२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] जब (सती गुरुभक्तिः) समीचीन गुरु की भक्ति (मुक्त्यै भवति) मुक्ति की प्राप्ति के लिए होती है तो फिर (किं क्षुद्रं वा न साधयेत्) किस क्षुद्र कार्य को नहीं साधेगी? जैसे (त्रिलोकी-मूल्यरत्नेन) तीन लोक है मूल्य जिसका ऐसे रत्न से (तुषोत्करः) भूसे का ढेर मिलना (किं दुर्लभः) क्या दुर्लभ है?

गुरुद्रुहां गुणः को वा कृतघ्नानां न नश्यति।

विद्यापि विद्युदाभा स्यादमूलस्य कुतः स्थितिः॥३३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (गुरुद्रुहां) गुरु से द्रोह करनेवाले (कृतघ्नानां) कृतघ्नी/उपकार को भूलनेवालों का (को वा गुणः) कौन-सा गुण (न नश्यति) नष्ट नहीं होता है? अर्थात् {सर्वे गुणाः नश्यन्ति} सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। (तेषां) उन लोगों की (विद्या अपि) विद्या भी (विद्युत् आभा स्यात्) बिजली के समान क्षणस्थायी होती है। ठीक ही है (अमूलस्य स्थितिः कुतः भवति) जड़रहित वृक्ष की स्थिति कैसे हो सकती है? नहीं हो सकती।

गुरुद्रोहो न हि क्वापि विश्वास्यः विश्वघातिनः।

अबिभ्यतां गुरुद्रोहादन्यद्रोहात्कुतो भयम्॥३४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (क्व अपि) कहीं पर भी (विश्वघातिनः) सम्पूर्ण जगत के नाश करनेवाले (गुरुद्रुहः) गुरुद्रोही का (न विश्वास्यः) विश्वास नहीं करना चाहिए; क्योंकि (गुरुद्रोहात् अबिभ्यतां) गुरुद्रोह से नहीं डरनेवाले पुरुषों को (अन्यद्रोहात्) दूसरों के साथ द्रोह करने से (कुतः भयं) कैसे भय हो सकता है?

अथ कृत्यविदाचार्यः कृतकृत्यं यथाविधि।

छात्र प्रबोधयामास सद्धर्मं गृहमेधिनाम्॥३५॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (कृत्यवित् आचार्यः) कर्तव्य को जाननेवाले आचार्य ने (कृतकृत्यं छात्र) समाप्त हो गए हैं पठनादि कार्य जिनके ऐसे छात्र (जीवन्धरकुमार) को (यथाविधि)

विधिपूर्वक (गृहमेधिनां सद्धर्मं) गृहस्थों के एकदेशविरतिरूप धर्म का (प्रबोधयामास) ज्ञान कराया।

पुनश्च राजपुत्रत्वमपि बोधयितुं गुरुः।

अनुगृह्याभ्यधात्तस्य तदुदन्तमिदंतया॥३६॥

अन्वयार्थ- (पुनः च गुरुः) फिर गुरु ने (अनुगृह्या) अनुग्रह करके (राजपुत्रत्वं बोधयितुं अपि) तुम राजा के पुत्र हो-ऐसा बोध कराने के लिए ही (तस्य) उस जीवन्धरकुमार का (तदुदन्तं) पूर्वोक्त सारा वृत्तान्त (इदंतया अभ्यधात्) इस रीति से कहा कि जीवन्धरकुमार से इतर कोई पुरुष न जान सके।

काष्ठाङ्गारमसौ ज्ञात्वा राजघं गुरुवाक्यतः।

सत्यन्धरात्मजः क्रोधात्सन्नाहं तद्वधे व्यधात्॥३७॥

अन्वयार्थ- (असौ सत्यन्धरात्मजः) इन सत्यन्धर राजा के पुत्र जीवन्धरकुमार ने (गुरुवाक्यतः) गुरु के वचनों से (काष्ठाङ्गारं) काष्ठांगार को (राजघं) राजा को मारनेवाला (ज्ञात्वा) जानकर (तद्वधे) उसको मारने के लिए (सन्नाहं) युद्ध की तैयारी (व्यधात्) की।

मुहुर्निवार्यमाणोऽपि सूरिणा न शशाम सः।

हन्तात्मानमपि घ्नन्तः क्रुद्धाः किं किं न कुर्वते॥३८॥

अन्वयार्थ- (सूरिणा) आचार्य के द्वारा (मुहुः निवार्यमाणः अपि) बारम्बार रोके जाने पर भी (सः न शशाम) वे कुमार शान्त नहीं हुए।

[अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है! (आत्मानं अपि) अपनी आत्मा का भी (घ्नन्तः) नाश करते हुए (क्रुद्धाः) क्रोधी पुरुष (किं किं न कुर्वते) क्या-क्या कर्म नहीं कर डालते हैं?

वत्सरं क्षम्यतामेकं वत्सेयं गुरुदक्षिणा।

गुरुणेति निषिद्धोऽभूत्कोऽनन्धो लङ्घयेद् गुरुम्॥३९॥

अन्वयार्थ- (हे वत्स) हे शिष्य! (एकं वत्सरं) एक वर्ष और (क्षम्यतां) क्षमा करो। (इयं गुरुदक्षिणा) यह ही मेरे पढ़ाने की गुरु-दक्षिणा समझो; (इति) इसप्रकार (गुरुणा) गुरु से (निषिद्धः अभूत्) निषेधित हुआ।

[अत्र नीतिः] (कः अनन्धः) कौन ज्ञानवान/ज्ञानचक्षु पुरुष (गुरु लङ्घयेत्) गुरु के आदेश का उल्लंघन करेगा?

पश्यन्कोपक्षणे तस्य पारवश्यमसौ गुरुः।

अशिक्षयत्पुनश्चैनमपथघ्नी हि वाग्गुरोः॥४०॥

अन्वयार्थ- (च असौ गुरुः) इस गुरु ने (कोपक्षणे) क्रोध के समय (तस्य पारवश्यं पश्यन्) उसकी पराधीनता को देख (एनं) इसे (पुनः) फिर से (अशिक्षयत्) शिक्षा दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (गुरोः वाक्) गुरु का वचन (अपथघ्नी) खोटे मार्ग का नाश करनेवाला होता है।

अवशः किमहो मोहादकुपः पुत्रपुङ्गव।

सति हेतौ विकारस्य तदभावो हि धीरता॥४१॥

अन्वयार्थ- (पुत्रपुङ्गव) हे श्रेष्ठ पुत्र! (त्वं) तुम (मोहात्) मोह से (अवशः) विवश होकर (किं) क्यों (अकुपः) क्रोध करते हो?

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विकारस्य हेतौ सति) विकार का कारण होने पर (तदभावः) विकारी न होना ही (धीरता) धीरता है।

अपकुर्वति कोपश्चेत्किं न कोपाय कुप्यसि।

त्रिवर्गस्यापवर्गस्य जीवितस्य च नाशिने॥४२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (अपकुर्वति कोपः) अपकार करनेवाले पर तुम्हारा क्रोध है, तो फिर (त्रिवर्गस्य) धर्म, अर्थ, काम, (अपवर्गस्य च) एवं मोक्ष का और (जीवितस्य) जीवन का (नाशिने) नाश करनेवाले (कोपाय) क्रोध पर (किं न कुप्यसि) क्रोध क्यों नहीं करते हो?

दहेत्स्वमेव रोषाग्निर्नापरं विषयं ततः।

क्रुध्यन्निक्षिपति स्वाङ्गे वह्निमन्यदिधिक्षया॥४३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (रोषाग्निः) क्रोधरूपी अग्नि (स्वं एव) अपने आपको ही (दहेत्) जलाती है अर्थात् क्रोध क्रोधी को ही पहले भस्म करता है (अपरं विषयं न) दूसरे पदार्थ को नहीं (ततः) इसलिए (क्रुध्यन्) क्रोधी पुरुष (अन्य दिधिक्षया) दूसरे को जलाने की इच्छा से (स्वाङ्गे) पहले अपने शरीर पर ही (वह्निं) अग्नि (निक्षिपति) डालता है।

हेयोपादेयविज्ञानं नो चेद् व्यर्थः श्रमः श्रुतौ।

किं व्रीहिखण्डनायासैस्तण्डुलानामसम्भवे॥४४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (हेयोपादेय विज्ञानं नो) हेय व उपादेय का ज्ञान नहीं है (तर्हि) तो (श्रुतौ) शास्त्र सम्बन्धी (श्रमः) परिश्रम करना (व्यर्थः) व्यर्थ है; क्योंकि (तण्डुलानां असम्भवे) चावलों के नहीं निकलने पर (व्रीहिखण्डनायासैः किं) धान्य के कूटने से क्या फायदा?

तत्त्वज्ञानं च मोघं स्यात्तद्विरुद्धप्रवर्तिनाम्।

पाणौ कृतेन दीपेन किं कूपे पततां फलम्॥४५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (तत् विरुद्धप्रवर्तिनां) शास्त्र और तत्त्वज्ञान के विरुद्ध प्रवृत्ति करनेवाले पुरुषों का (तत्त्वज्ञानं च) तत्त्वज्ञान भी (मोघं स्यात्) वृथा है। (कूपे पततां) कुएँ में गिरते हुए पुरुषों को (पाणौ कृतेन दीपेन) हाथ में रखे हुए दीपक से (किं फलं) क्या फल है?

तत्त्वज्ञानानुकूलं तदनुष्ठातुं त्वमर्हसि।

मुषितं धीधनं न स्याद्यथा मोहादिदस्युभिः॥४६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (त्वं) तुम (तत्त्वज्ञानानुकूलं) तत्त्वज्ञान के अनुकूल (अनुष्ठातुं) प्रवृत्ति करने के लिए (अर्हसि) योग्य हो, (तत्) इसलिए तुम ऐसा करो (यथा) जिससे (मोहादिदस्युभिः) मोहादिक लुटेरों से तुम्हारा (धीधनं) बुद्धिरूपी धन (मुषितं न स्यात्) चुराया नहीं जाए।

स्त्रीमुखेन कृतद्वारान्स्वपथोत्सुकमानसान्।

दुर्जनाहीज्जहीहि त्वं ते हि सर्वङ्कषाः खलाः॥४७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (त्वं) तुम (स्त्रीमुखेन कृतद्वारान्) स्त्रियों के द्वारा किया है प्रवेश जिन्होंने और (स्वपथोत्सुकमानसान्) खोटे मार्ग पर चलने के लिए उत्कण्ठित है मन जिनका ऐसे (दुर्जन अहीन्) भयंकर सर्पों को (जहीहि) दूर से ही छोड़ दो। (हि) निश्चय से (ते खलाः) वे दुर्जन पुरुष (सर्वकषाः) सब लोगों को दुःख देनेवाले होते हैं।

स्पृष्टानामहिभिर्नश्येत् गात्रं खलजनेन तु।
वंशवैभववैदुष्य क्षान्तिकीर्त्यादिकं क्षणात्॥४८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (अहिभिः स्पृष्टानां) सर्पों से डसे हुए पुरुषों का केवल (गात्रं नश्येत्) शरीर ही नष्ट होता है; (तु) किन्तु (खलजनेन स्पृष्टानां) दुर्जन पुरुषों का सम्बन्ध करनेवाले पुरुषों के (वंशवैभव-वैदुष्य क्षान्तिकीर्त्यादिकं) कुल, सम्पत्ति, पाण्डित्य, क्षमा और कीर्त्यादिक गुण (क्षणात्) उसी क्षण (नश्येत्) नष्ट हो जाते हैं।

खलः कुर्यात्खलं लोकमन्यमन्यो न कञ्चन।
न हि शक्यं पदार्थानां भावनं च विनाशवत्॥४९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (खलः) दुर्जन पुरुष (लोकं) लोक को (खलं) दुर्जन (कुर्यात्) बना देता है; किन्तु (अन्यः) सज्जन पुरुष (कञ्चन) किसी को भी (अन्यं न कुर्यात्) सज्जन नहीं कर सकता। (हि) निश्चय से (पदार्थानां विनाशवत्) पदार्थों के विनाश की तरह उनका (भावनं) उत्पन्न करना (न शक्यं) शक्य नहीं है।

सज्जनास्तु सतां पूर्वं समावर्ज्याः प्रयत्नतः।

किं लोके लोष्टवत्प्राप्यं श्लाघ्यं रत्नमयत्नतः॥५०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (तु) और (सतां) सज्जन पुरुषों को (प्रयत्नतः) प्रयत्न से (पूर्व) पहले (सज्जनाः समावर्ज्याः) सज्जनों का आदर करना चाहिए। (लोके) लोक में (किं) क्या (लोष्टवत्) मिट्टी के ढेले के समान (श्लाघ्यं रत्नं) प्रशंसनीय रत्न (अयत्नतः)

बिना प्रयत्न के (प्राप्यं) मिल सकता है?

जाग्रत्वं सौमनस्यं च कुर्यात्सद्भागलं परैः।

अजलाशयसम्भूतममृतं हि सतां वचः॥५१॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (सद्भाक्) सज्जन पुरुषों का वचन (जाग्रत्वं) जागृति (च) और (सौमनस्यं) उत्तम सहृदयता को (कुर्यात्) करता है। (परैः अलं) बहुत कहने से क्या? (हि) निश्चय से (सतां वचः) सज्जन पुरुषों का वचन (अजलाशयसम्भूतं) जलाशय के बिना ही उत्पन्न हुआ (अमृतं) अमृत है।

यौवनं सत्त्वमैश्वर्यमेकैकं च विकारकृत्।

समवायो न किं कुर्यादविकारोऽस्तु तैरपि॥५२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] जब (यौवनं) युवावस्था (सत्यं) बल/शरीरसामर्थ्य और (ऐश्वर्यं) ईश्वरता अर्थात् प्रभुता (एकैकं) पृथक्-पृथक् (विकारकृत्) विकार भावों को करनेवाले हैं तो (समवायः) उनका समूह (किं) किस अनर्थ कार्य को (न कुर्यात्) नहीं करेगा? करेगा ही (तु तैः अपि) इसलिए इन तीनों से भी

तुम्हारा चित्त (अविकारः अस्तु) विकाररहित हो ऐसा आशीर्वाद गुरु ने जीवन्धरकुमार को दिया।

न हि विक्रियते चेतः सतां तद्धेतुसन्निधौ।

किं गोष्पदजलक्षोभी क्षोभयेज्जलधेर्जलम्॥५३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सतां चेतः) सज्जन पुरुषों का चित्त (तद्धेतु सन्निधौ) विकार के कारण मिलने पर भी (न विक्रियते) विकार को प्राप्त नहीं होता है। (किं) क्या (गोष्पदजल क्षोभी) गाय के खुर प्रमाण जल को मलिन करनेवाला मेंढक जैसा छोटा जीव (जलधेः) समुद्र के (जलं) जल को (क्षोभयेत्) क्षोभित कर सकता है?

देशकालखलाः किं तैश्चला धीरेव बाधिका।

अवहितोऽत्र धर्मे स्यादवधानं हि मुक्तये॥५४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (देशकालखलाः) देश, काल और दुर्जन ये (किं) {कुर्युः} क्या करेंगे? (तैः चला) उनसे चलायमान (धीः एव बाधिका) बुद्धि ही मनुष्य के चरित्र को बिगाड़ देती है। इसलिए इस संसार में (धर्मे) आत्मा के स्वभाव में (अवहितः) स्थिर होना चाहिए। (हि) निश्चय से (अवधानं) अपनी आत्मा के स्वभाव में स्थिर रहना (मुक्तये स्यात्) मोक्ष की प्राप्ति के लिए होता है।

शिक्षावचः सहस्रैर्वा क्षीणपुण्ये न धर्मधीः।

पात्रे तु स्फायते तस्मादात्मैव गुरुरात्मनः॥५५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (क्षीणपुण्ये) पुण्यहीन पुरुष में (शिक्षावचः सहस्रैः) हजारों शिक्षावचनों से (धर्मधीः) धर्मबुद्धि (न स्यात्) नहीं होती है (तु) और (पात्रे) उत्तम पात्र में (स्फायते) बिना उपदेश के ही धर्मबुद्धि उत्पन्न हो जाती है। (तस्मात्) इसलिए (आत्मा एव) आत्मा ही (आत्मनः) आत्मा का (गुरुः अस्ति) गुरु है।

न शृण्वन्ति न बुध्यन्ति न प्रयान्ति च सत्पथम्।
प्रयान्तोऽपि न कार्यान्तं धनान्धा इति चिन्त्यताम्॥५६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (धनान्धाः) धन से अन्धे पुरुष (सत्पथं) आत्मा की उन्नति के सच्चे मार्ग को (न शृण्वन्ति) न तो सुनते हैं, (न बुध्यन्ति) न जानते हैं और (न प्रयान्ति) न उस पर चलते ही हैं। (प्रयान्तः अपि) कदाचित् सत्पथ पर चलें तो भी (न कार्यान्तं) कार्य के अन्त तक नहीं पहुँचते हैं; (इति) ऐसा धनिक पुरुषों के विषय में तुम (चिन्त्यतां) विचार करो।

इत्याशास्य तमाश्वास्य कृच्छ्रं स तपसे गतः।
प्राणप्रयाणवेलायां न हि लोके प्रतिक्रिया॥५७॥

अन्वयार्थ- (इति) इसप्रकार (तं) उन जीवन्धरकुमार को (आशास्य) उपदेशरूप आशीर्वाद देकर (च) और (आश्वास्य) विश्वास दिलाकर (सः) वे जीवन्धरकुमार के गुरु आर्यनन्दी (कृच्छ्रं तपसे) पूर्व की भाँति कठोर तप करने के लिए (गतः) चले गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अत्र लोके) इस संसार में (प्राण-प्रयाणवेलायां) प्राणों के निकलते समय (प्रतिक्रिया न) मृत्यु को रोकने का कोई उपाय नहीं है।

प्रव्रज्याथ तपः शक्त्या नित्यमानन्दमव्रजत्।
निष्प्रत्यूहा हि सामग्री नियतं कार्यकारिणी॥५८॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर (प्रव्रज्य) फिर दीक्षा लेकर उन गुरु (तपः शक्त्या) तपश्चरण की सामर्थ्य से (नित्यं आनन्दं) शाश्वत आनन्दरूपी मोक्ष को (अव्रजत्) प्राप्त किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (निष्प्रत्यूहा) निर्विघ्न (सामग्री) सामग्री (नियतं) नियम से (कार्यकारिणी) कार्य सिद्ध करनेवाली होती है।

तपोवनं गुरौ प्राप्ते शुचं प्रापत्स कौरवः।
गर्भाधानक्रियामात्रन्यूनौ हि पितरौ गुरुः॥५९॥

अन्वयार्थ- (गुरौ तपोवनं प्राप्ते) गुरु के तपोवन में चले जाने पर (कौरवः) कुरुवंशी जीवन्धरकुमार ने (शुचं प्रापत्) अत्यन्त शोक किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (गर्भाधानक्रियान्यूनौ) गर्भ धारण की क्रिया से रहित होने पर भी (गुरुः) गुरु (पितरौ) माता-पिता के समान हैं।

तत्त्वज्ञानजलेनाथ शोकाग्निं निरवापयत्।
शैत्ये जाग्रति किं नु स्यादातपार्तिः कदाचन॥६०॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर जीवन्धरकुमार ने (तत्त्वज्ञानजलेन) तत्त्वज्ञानरूपी जल से (शोकान्निं) गुरु वियोगजन्य शोकरूपी अग्नि को (निरवापयत्) दूर किया।

[अत्र नीतिः] (शैत्ये जाग्रति) शीत के जागृत होने पर (किं) क्या (आतपार्तिः) गर्मी के आतप का दुःख (कदाचन स्यात्) कभी हो सकता है?

अथास्मिन्विद्यया कान्त्या विदुषां योषितां हृदि।

रथे च योग्यया भाति तत्र प्रस्तुतमुच्यते॥६१॥

अन्वयार्थ- (अथ) गुरु के वियोग के अनन्तर (विद्यया) पाण्डित्य से (विदुषां) विद्वानों के (हृदि) हृदय में (कान्त्या) शरीर के सौन्दर्य से (योषितां हृदि) स्त्रियों के हृदय में और (योग्यया) शस्त्र संचालन की योग्यता से (रथे च) रथ में अर्थात् युद्धरथ में (अस्मिन् भाति) जीवन्धरकुमार के शोभायमान होने पर (तत्र प्रस्तुतं उच्यते) वहाँ जो वृत्तान्त हुआ, उसे कहते हैं।

अथैकदा समभ्येत्य राजाङ्गणभुवि स्थिताः।

गावोऽवस्कन्दिता व्याधैरिति गोपा हि चुक्रुशुः॥६२॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (एकदा) एक समय "हमारी (गावः) गायें (व्याधैः अवस्कन्दिताः) व्याधों ने वन में रोक ली हैं" (इति) ऐसा (गोपाः) ग्वाले (राजाङ्गणभुवि स्थिताः) राजद्वार के आँगन में स्थित होकर (चुक्रुशुः) रोने-चिल्लाने लगे।

काष्ठाङ्गारोऽपि रुष्टोऽभूत्तदाक्रोशवचः श्रुतेः।

असमानकृतावज्ञा पूज्यानां हि सुदुःसहा॥६३॥

अन्वयार्थ- (काष्ठाङ्गारः अपि) काष्ठांगार भी (तदाक्रोशवचः श्रुतेः) उन ग्वालों के शोर को सुनकर (रुष्टः अभूत्) व्याधों पर रुष्ट हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (असमानकृतावज्ञा) छोटे पुरुषों से हुआ तिरस्कार (पूज्यानां) बड़े पुरुषों को (सुदुःसहा) सहन नहीं होता।

पराजेष्ट पुनस्तेन गवार्थं प्रहितं बलम्।

स्वदेशे हि शशप्रायो बलिष्ठः कुञ्जरादपि॥६४॥

अन्वयार्थ- (तेन) उस व्याध सेना ने (गवार्थं प्रहितं बलं) गायों को छुड़ाने के लिए भेजी हुए काष्ठांगार की सेना को (पराजेष्ट) जीत लिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वदेशे) अपने स्थान पर (शशप्रायः जन्तुः) खरगोश के समान तुच्छ प्राणी (कुञ्जरात् अपि) हाथी से भी (बलिष्ठः) बलवान होता है।

व्यजेष्ट व्याधसेनेति श्रुत्वा घोषोऽपि चुक्षुभे।

न विभेति कुतो लोक आजीवनपरिक्षये॥६५॥

अन्वयार्थ- (व्याधसेना व्यजेष्ट) व्याधों की सेना जीत गई (इति श्रुत्वा) यह सुनकर (घोषः अपि) ग्वालों का समूह भी (चुक्षुभे) क्षोभित हुआ और स्वयं लड़ने के लिए उत्तेजित हो गया।

[अत्र नीतिः] सच है (लोकः) संसारी जीव (आजीवनपरिक्षये) आजीविका के नष्ट हो जाने पर (कुतः न विभेति) किसी से नहीं डरते।

नन्दगोपाह्वयः कोऽपि तज्जयार्थं व्यचीचरत्।

किं स्यात्किंकृत इत्येवं चिन्तयन्ति हि पीडिताः॥६६॥

अन्वयार्थ- (कः अपि नन्दगोपाह्वयः) उनमें से किसी नन्दगोप नाम के ग्वाले ने (तज्जयार्थं) उस व्याध सेना को जीतने के लिए (व्यचीचरत्) विचार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पीडिताः) दुखों से पीड़ित पुरुष क्या होगा? (किं कृतः किं स्यात्) क्या करने से क्या होगा? (इति एवं चिन्तयन्ति) इसप्रकार विचार किया करते हैं।

धनार्जनादपि क्षेमे क्षेमादपि च तत्क्षये।

उत्तरोत्तरवृद्धा हि पीडा नृणामनन्तशः॥६७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (धनार्जनात् अपि क्षेमे) धन के कमाने से भी अधिक उसकी रक्षा करने में (क्षेमात् अपि तत्क्षये) और रक्षा करने से भी अधिक उसके नाश में (नृणां) मनुष्यों को (अनन्तशः) अनन्तगुणी (पीडा) पीड़ा (उत्तरोत्तरवृद्धाः) उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है।

यथाशक्ति प्रतीकारः करणीयस्तथापि चेत्।

व्यर्थः किमत्र शोकेन यदशोकः प्रतिक्रिया॥६८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः/] (तथापि) तो भी (यथाशक्ति) शक्ति के अनुसार (प्रतीकारः) उपाय तो (करणीयः) करना ही चाहिए। (व्यर्थः चेत्) यदि उपाय व्यर्थ हो जाए तो फिर (अत्र शोकेन किं) इसमें शोक करने से क्या? (यत् अशोकः प्रतिक्रिया) क्योंकि दुःख का प्रतिकार अशोक ही माना गया है।

इत्यूहेन स वीराय विजये हि वनौकसाम्।
सप्तकल्याणपुत्रीभिर्देया पुत्रीत्यघोषयत्॥६९॥

अन्वयार्थ- (इति ऊहेन सः) ऐसा विचार कर उस ग्वाले ने (हि) निश्चय से (वनौकसां) व्याधों को (विजये) जीत लेने पर (वीराय) जीतनेवाले वीर को (सप्तकल्याणपुत्रीभिः) सात सुवर्ण पुतलियों के साथ (पुत्री देया) पुत्री दूँगा। (इति अघोषयत्) ऐसी घोषणा कराई।

सात्यन्धरिस्तु तच्छ्रुत्वा तद्घोषणामवारयत्।
उदात्तानां हि लोकोऽयमखिलो हि कुटुम्बकम्॥७०॥

अन्वयार्थ- (तु) इसके अनन्तर (सात्यन्धरिः) सत्यन्धर राजा के पुत्र ने (तत् घोषणां श्रुत्वा) उस घोषणा को सुनकर (तत् अवारयत्) उसको रुकवा दिया।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (उदात्तानां) उदार चरित्रवाले पुरुषों को (अयं) यह (अखिलः लोकः) सम्पूर्ण संसार (कुटुम्बकं) कुटुम्ब के समान है।

जित्वाथ जीवकस्वामी किरातानाहरत्यशून्।

तमो ह्यभेद्यं खद्योतैर्भानुना तु विभिद्यते ॥७१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (जीवकस्वामी) जीवन्धरकुमार (किरातान् जित्वा) व्याधों को जीतकर (पशून् आहरत्) पशुओं को ले आए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (खद्यौतैः) जुगनुओं से (अभेद्यं तमः) नहीं नाश होनेवाला अन्धकार (भानुना तु विभिद्यते) सूर्य से तो नष्ट हो ही जाता है।

ननन्द नन्दगोपोऽपि गोधनस्योपलम्भतः।

असुमतामसुभ्योऽपि गरीयो हि भृशं धनम् ॥७२॥

अन्वयार्थ- (नन्दगोपः अपि) नन्दगोप भी (गोधनस्य उपलम्भतः) गोरूपी धन के मिल जाने से (ननन्द) अत्यन्त हर्षित हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (असुमतां) प्राणियों को (धनं) धन (असुभ्यः अपि) प्राणों से भी (भृशं) अधिक (गरीयः) प्यारा होता है।

अथानीय सुतां दातुं स्वामिने वार्यपातयत्।

कृत्याकृत्यविमूढा हि गाढस्नेहान्धजन्तवः ॥७३॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर वह नन्दगोप (सुतां आनीय) पुत्री को लाकर (स्वामिने दातुं) जीवन्धरकुमार को देने के लिए (वारि) जलधारा को (अपातयत्) गिराता है।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (गाढस्नेहान्धजन्तवः) अत्यन्त स्नेह से अन्धे पुरुष (कृत्याकृत्यविमूढाः) कृत्याकृत्य के विचार में मूढ {सन्ति} होते हैं।

जीवन्धरस्तु जग्राह वार्धारां तेन पातिताम्।

पद्मास्यो योग्य इत्युक्त्वा न ह्ययोग्ये स्पृहा सताम्॥७४॥

अन्वयार्थ- (तु) फिर (जीवन्धरः) जीवन्धरकुमार ने (तेन पातितां) उसके द्वारा डाली हुई (वार्धारां) जल की धारा को (पद्मास्यः योग्यः) 'पद्मास्य इस कन्या के लिए योग्य है' (इति उक्त्वा) यह कहकर (जग्राह) ग्रहण की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सतां स्पृहा) सज्जन पुरुषों की इच्छा (अयोग्ये) अयोग्य पदार्थ में {न भवति} नहीं होती है।

माम मामेव पद्मास्यं पश्येति पुनरब्रवीत्।

गात्रमात्रेण भिन्नं हि मित्रत्वं मित्रता भवेत्॥७५॥

अन्वयार्थ- (माम) हे मामा! (मां एव) मुझको ही (पद्मास्यं पश्य) पद्मास्य जानो (इति पुनः अब्रवीत्) ऐसा उसने फिर कहा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (गात्रमात्रेण भिन्नं) शरीर मात्र से भिन्न (मित्रत्वं) मित्रपना (मित्रता भवेत्) मित्रता कहलाती है।

गोदावरीसुतां दत्तां नन्दगोपेन तुष्यता।

परिणिन्येऽथ गोविन्दां पद्मास्यो वह्निसाक्षिकम्॥७६॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर (पद्मास्यः) पद्मास्य ने (तुष्यता नन्दगोपेन) सन्तुष्ट नन्दगोप से (दत्तां) दी हुई (गोदावरीसुतां)

गोदावरी की पुत्री (गोविन्दां) गोविन्दा का (वह्नि साक्षिकं) अग्नि की साक्षीपूर्वक (परिणिन्ये) पाणिग्रहण किया।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ
गोविन्दालम्भो नाम द्वितीयो लम्बः

तृतीयो लम्बः

अथोपयम्य गोविन्दां पद्मास्ये रमयत्यलम्।
वीरश्रियं कुमारे च तत्र प्रस्तुतमुच्यते॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (गोविन्दां) गोविन्दा से (उपयम्य) विवाह कर (पद्मास्ये) पद्मास्य (अलं रमयति सति) आनन्दपूर्वक रमण करते हुए (च) और (वीरश्रियं) वीरलक्ष्मी को {प्राप्य} प्राप्त करके (कुमारे) जीवन्धरकुमार के (रमयति) सानन्द रहते हुए (तत्र) वहाँ {यत्} जो (प्रस्तुतं) वृत्तान्त हुआ {तत्} (उच्यते) उसको कहते हैं।

आसीत्तत्पुरवास्तव्यो वैश्यः श्रीदत्तनामकः।
वित्तायास्पृहयत्सोऽयं धनाशा कस्य नो भवेत्॥२॥

अन्वयार्थ- (तत्पुरवास्तव्यः) उस पुर में रहनेवाले (श्रीदत्तनामकः) श्रीदत्त नाम के (वैश्यः) एक वैश्य (आसीत्) थे। (सः अयं) उन श्रीदत्त सेठ ने (वित्ताय) धन कमाने की (अस्पृहयत्) वांछा की। सो ठीक है।

[अत्र नीतिः] (धनाशा) धन की आशा (कस्य) किसके (नो भवेत्) नहीं होती है?

अर्थार्जननिदानं च तत्फलं चायमौहत।
निरङ्कुशं हि जीवानामैहिकोपायचिन्तनम्॥३॥

अन्वयार्थ- फिर (अयं) उन्होंने (अर्थार्जननिदानं) धन कमाने का कारण (च) और (तत्फलं) उसका फल (औहत) विचारा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (जीवानां) मनुष्यों के (ऐहिकोपाय-चिन्तनं) इस लोक सम्बन्धी आजीविका के उपाय का चिन्तन करना (निरङ्कुशं) बिना बाधा के ही हो जाता है।

अस्तु पैतृकमस्तोकं वस्तु किं तेन वस्तुना।
रोचते न हि शौण्डाय परपिण्डादिदीनता॥४॥

अन्वयार्थ- (पैतृकं) भले ही पूर्वजों का उपार्जन किया हुआ (अस्तोकं वस्तु अस्तु) बहुत धन रहे, (तेन वस्तुना किं) किन्तु उस धन से क्या?

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (शौण्डाय) उद्योगी पुरुषों के लिए (परपिण्डादिदीनता) दूसरों के कमाए हुए अन्नादि पर निर्वाह करना (न रोचते) रुचिकर नहीं होता।

स्वापतेयमनायं चेत्सव्ययं व्येति भूर्यपि।
सर्वदा भुज्यमानो हि पर्वतोऽपि परिक्षयी॥५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (स्वापतेयं) स्वसंचित धन (चेत्) यदि (अनायं) आमदनी से रहित और (सव्ययं) व्यय से सहित है तो (भूरि अपि) बहुत भी (व्येति) समाप्त हो जाता है।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सर्वदा भुज्यमानः) हमेशा उपयोग में आने पर (पर्वतः अपि) पर्वत भी एक दिन (परिक्षयी) समाप्त हो जाता है।

दारिद्र्यादपरं नास्ति जन्तूनामप्यरुन्तुदम्।
अत्यक्तं मरणं प्राणैः प्राणिनां हि दरिद्रता॥६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (जन्तूनां) मनुष्यों को (दारिद्र्यात् अपरं) दरिद्रता से बढ़कर दूसरा कोई (अरुन्तुदं) दुःख देनेवाला (न अस्ति) नहीं है। (हि) निश्चय से (प्राणिनां दरिद्रता) जीवों के दरिद्रता (प्राणैः अत्यक्तं) प्राणों के निकले बिना (मरणं) मरण के समान है।

रिक्तस्य हि न जागर्ति कीर्तनीयोऽखिलो गुणः।

हन्त किं तेन विद्यापि विद्यमाना न शोभते॥७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (रिक्तस्य) निर्धन पुरुष के (कीर्तनीयः अखिलः गुणः) जगत्प्रशंसनीय सम्पूर्ण गुण (न जागर्ति) प्रकाशित नहीं होते। (हन्त) खेद की बात है कि (तेन किं) और तो क्या? (विद्यमाना विद्या अपि) उसकी विद्यमान विद्या भी (न शोभते) शोभित नहीं होती है।

स्यादकिञ्चित्करः सोऽयमाकिञ्चन्येन वञ्चितः।

अलमन्यैः स साकूतं धन्यवक्त्रं च पश्यति॥८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (स अयं) वह दरिद्र पुरुष (आकिञ्चन्येन वञ्चितः) दरिद्रता से ठगाया हुआ (अकिञ्चित्करः स्यात्) कुछ नहीं कर सकता। (अन्यैः अलं) बहुत कहने से क्या? (सः) वह दरिद्री पुरुष (साकूतं) अभिप्रायसहित (धन्यवक्त्रं) धनिक पुरुषों के मुख की ओर (च पश्यति) देखता है।

सम्पल्लाभफलं पुंसां सज्जनानां हि पोषणम्।

काकार्थफलनिम्बोऽपि श्लाघ्यते न हि चूतवत्॥९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पुंसां) मनुष्यों के (सम्पल्लाभफलं) धन की प्राप्ति का फल (सज्जनानां पोषणं) सज्जन पुरुषों का पोषण करना ही है। (हि) निश्चय से (काकार्थ-फलनिम्बः अपि) कौए के लिए ही है प्रिय फल जिसका ऐसा नीम का वृक्ष (चूतवत् न श्लाघ्यते) आम के वृक्ष की तरह प्रशंसनीय नहीं होता।

लोकद्वयहितं चापि सुकरं वस्तु नासताम्।
लवणाब्धिगतं हि स्यान्नादेयं विफलं जलम्॥१०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (च) और (लोकद्वयहितं अपि) इस लोक और परलोक में हित को करनेवाली (असतां) दुर्जन पुरुषों की (वस्तु) वस्तु (सुकरं न) सुख को देनेवाली नहीं है। (हि) निश्चय से (नादेयं जलं) जैसे नदी का मीठा जल (लवणाब्धिगतं) लवणसमुद्र में जाने पर (विफलं स्यात्) निरर्थक हो जाता है।

इत्यूहान्नावमारुह्य प्रतस्थे स वणिक्पतिः।
वार्धिमेव धनार्थी किं गाहते पार्थिवानपि॥११॥

अन्वयार्थ- (इति ऊहात्) ऐसा विचारकर (सः वणिक्पतिः) वैश्यों में प्रधान उस श्रीदत्त सेठ ने (नावं आरुह्य) नौका में बैठकर (प्रतस्थे) प्रस्थान किया।

[अत्र नीतिः] (धनार्थी किं) क्या धन के इच्छुक (वार्धि एव) मात्र समुद्र को ही (गाहते) अवगाहन करते हैं? नहीं (किन्तु पार्थिवान् अपि) किन्तु द्वीपान्तर को भी जाते हैं।

द्वीपान्तरान्यवर्तिष्ठ पुष्टः सांयात्रिको धनैः।

अतर्क्यं खलु जीवानामर्थसञ्चयकारणम्॥१२॥

अन्वयार्थ- कुछ काल के पश्चात् (धनैः पुष्टः सांयात्रिकः) धन से पुष्ट नौका के स्वामी श्रीदत्त सेठ (द्वीपान्तरात् न्यवर्तिष्ठ) दूसरे द्वीप

से धन कमाकर लौटे।

[अत्र नीतिः] (खलु) निश्चय से (जीवानां अर्थसञ्चयकारणं) मनुष्यों के धन कमाने का कारण (अतर्क्यं) तर्क रहित है।

अवारान्तमथ प्रापत्पारावारस्य नाविकः।

चुक्षुभे नौरिहासान्न हि वेद्यो विपत्क्षणः॥१३॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (नाविकः) जब वे नौका के स्वामी श्रीदत्त सेठ (पारावारस्य) समुद्र के (अवारान्तं) तट के समीप (प्रापत्) पहुँचे (इह) तब यहाँ आने पर (आसारात्) जल की बड़ी भारी लहर से (नौः चुक्षुभे) नौका जल के प्रवाह में डूबने लगी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विपत्क्षणः) विपत्ति का समय (न वेद्यः) जाना नहीं जा सकता है।

पूर्वमेव तु नौनाशाच्छोकाब्धिं पोतगा गताः।

काष्ठागतस्य दुःखस्य दृष्टान्तं तद्धि नौक्षये॥१४॥

अन्वयार्थ- (तु) फिर (पोतगा) नौका में बैठे मनुष्य (नौनाशात्) नौका के नाश से (पूर्व एव) पहले ही (शोकाब्धिं) शोकरूपी समुद्र को (गताः) प्राप्त हुए।

(हि) निश्चय से (नौक्षये) नौका के नाश के समय (काष्ठागतस्य दुःखस्य) मानो मर्यादारहित दुःख का (तत् दृष्टान्तं) वह दृष्टान्त था।

सांयात्रिकस्तु तत्त्वज्ञो विकारं नैव जग्मिवान्।

अज्ञात्प्राज्ञस्य को भेदो हेतोश्चेद्विकृतिर्द्वयोः॥१५॥

अन्वयार्थ- (तु) परन्तु (तत्त्वज्ञः) पदार्थ के स्वरूप को जाननेवाले (सांयात्रिकः) नौका के स्वामी श्रीदत्त सेठ (विकारं) विकारभाव को (न एव जग्मिवान्) प्राप्त नहीं हुए अर्थात् नहीं घबराए।

[अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (हेतोः द्वयोः विकृतिः स्यात्) विकार के हेतु से अज्ञानी और ज्ञानी इन दोनों के अन्दर शोक हो तो (अज्ञात् प्राज्ञस्य कः भेदः) अज्ञानी और ज्ञानी में क्या अन्तर रहे?

भाविन्या विपदो यूयं विपन्नाः किं बुधाः शुचा।

सर्पशङ्काविभीताः किं सर्पास्ये करदायिनः॥१६॥

अन्वयार्थ- नौका में स्थित पुरुषों को श्रीदत्त सेठ ने उपदेश दिया कि- (बुधाः) हे पण्डितो! (भाविन्यः विपदः) आनेवाली विपत्ति के (शुचा) शोक से (यूयं किं विपन्नाः) तुम लोग क्यों दुःखी हो रहे हो?

[अत्र नीतिः] (किं) क्या (सर्पशङ्काविभीताः) सर्प के भय से डरे हुए मनुष्य (सर्पास्ये) सर्प के मुख में (करदायिनः सन्ति) हाथ देते हैं?

विपदस्तु प्रतीकारो निर्भयत्वं न शोकिता।

तच्च तत्त्वविदामेव तत्त्वज्ञाः स्यात् तद्बुधाः॥१७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (तु) इसलिए (विपदः प्रतीकारः) विपत्ति का प्रतीकार (निर्भयत्वं) निर्भयपना ही है (न शोकिता) शोक करना विपत्ति का प्रतीकार नहीं है (तत् च) और निर्भयपना (तत्त्वविदां एव) तत्त्वज्ञानी पुरुषों के ही (स्यात्) होता है। (तत्) इसलिए (बुधाः) हे पण्डितो! (यूयं तत्त्वज्ञा) {भवत} तुम लोग तत्त्वज्ञानी बनो।

इत्यप्यबोधयत्सोऽयं वणिक्पोताश्रितान्सुधीः।

तत्त्वज्ञानं हि जीवानां लोकद्वयसुखावहम्॥१८॥

अन्वयार्थ- (सः अयं सुधीः वणिक्) इस बुद्धिमान वैश्य ने (पोताश्रितान् अपि) नौका में बैठे हुए पुरुषों को भी (इति) पूर्वोक्त प्रकार से (अबोधयत्) समझाया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (जीवानां) मनुष्यों को (तत्त्वज्ञानं) तत्त्वज्ञान ही (लोकद्वयसुखावहं) इस लोक और परलोक में सुख देनेवाला है।

तावता नावि नष्टायां दृष्टोऽभूत्कूपखण्डकः।

सत्यायुषि हि जायेत प्राणिनां प्राणरक्षणम्॥१९॥

अन्वयार्थ- (तावता) उसीसमय (नावि नष्टायां) नौका के नाश होने पर कोई (कूपखण्डकः) लकड़ी विशेष (दृष्टः अभूत्) दिखाई दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (आयुषि सति) आयु के रहने पर (प्राणिनां) प्राणियों के (प्राणरक्षणं) प्राणों की रक्षा (जायेत) हो ही जाती है।

श्रीदत्तस्तु तमारुह्य प्रासदत् द्वीपसंश्रितः।

राज्यभ्रष्टोऽपि तुष्टः स्याल्लब्धप्राणो हि जन्तुकः॥२०॥

अन्वयार्थ- (तु) इसके अनन्तर (श्रीदत्तः) श्रीदत्त सेठ (तं आरुह्य) उस लकड़ी के टुकड़े पर चढ़कर (द्वीपसंश्रितः प्रासदत्) दूसरे द्वीप को प्राप्त होकर प्रसन्न हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (राज्यभ्रष्टः अपि) राज्यभ्रष्ट होने पर भी (लब्धप्राणः जन्तुकः) प्राणों से बचा हुआ मनुष्य (तुष्टः स्यात्) सन्तुष्ट होता है।

नष्टशेवधिरप्येष मृष्टमेवमतर्कयत्।

दुःखार्थोऽपि सुखार्थो हि तत्त्वज्ञानधने सति॥२१॥

अन्वयार्थ- (नष्टशेवधिः अपि एषः) नाश हो गया है उपार्जित धन जिसका ऐसे इन श्रीदत्त सेठ ने भी (एवं मृष्टं अतर्कयत्) इसप्रकार निराकुल होकर विचार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (तत्त्वज्ञानधने सति) तत्त्वज्ञानरूपी धन के रहने पर (दुःखार्थः अपि) दुःखकर पदार्थ भी (सुखार्थः भवति) सुखकर हो जाता है।

तृष्णाग्निदह्यमानस्त्वं मूढात्मन्किं नु मुह्यसि।
लोकद्वयहितध्वंसोर्न हि तृष्णारुषोर्भिदा॥२२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (मूढात्मन्) अरे मूढ़ आत्मन्! (तृष्णाग्निदह्य-मानः त्वं) तृष्णारूपी अग्नि से जलता हुआ तू (किं नु मुह्यसि) क्यों मोह को प्राप्त होता है? (हि) निश्चय से (लोकद्वयहितध्वंसोः) इसलोक और परलोक सम्बन्धी हित के नाश करनेवाले (तृष्णारुषोः) तृष्णा और क्रोध में (न भिदा) कुछ भेद नहीं है।

लोकद्वयहितायात्मन्नैराश्यनिरतो भव।
धर्मसौख्यच्छिदाशा ते तरुच्छेदः फलार्थिनाम्॥२३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (आत्मन्) हे आत्मन्! तू (लोकद्वय-हिताय) दोनों लोकों के हित के लिए (नैराश्यनिरतः भव) निराशपने को प्राप्त हो अर्थात् विषयों की आशा छोड़ दे; क्योंकि (तरुच्छेदः फलार्थिनां) फलार्थी पुरुषों के वृक्ष के नाश समान अर्थात् जो फल तो चाहते हैं और वृक्ष को काट रहे हैं उन पुरुषों के समान (ते आशा) तेरी विषयों के सम्बन्ध की आशा (धर्मसौख्यच्छिद) धर्म और सुख का नाश करनेवाली है।

संसारासारभावोऽयमहो साक्षात्कृतोऽधुना।
यस्मादन्यदुपक्रान्तमन्यदापतितं पुनः॥२४॥

अन्वयार्थ- (अहो) आश्चर्य है कि (अधुना) इससमय (मया) मैंने (अयं संसारासारभावः) इस संसार के असारपने को (साक्षात्कृतः) प्रत्यक्ष कर लिया।

[अत्र नीतिः] (यस्मात्) क्योंकि (अन्यत् उपक्रान्तं) प्रारम्भ कुछ और ही किया था (पुनः अन्यत् आपतितं) और हो कुछ और ही गया।

अतएव हि योगीन्द्रा अपीन्द्रत्वार्हसम्पदम्।

त्यक्त्वा तपांसि तप्यन्ते मुक्त्यै तेभ्यो नमो नमः॥२५॥

अन्वयार्थ- (अतएव हि) इसीलिए निश्चय से (योगीन्द्राः) योगीश्वर पुरुष (इन्द्रत्वार्हसम्पदं) इन्द्र पद के योग्य सम्पत्ति को (अपि) भी (त्यक्त्वा) छोड़कर (मुक्त्यै तपांसि तप्यन्ते) मुक्ति प्राप्त करने के लिए तप करते हैं। (तेभ्यः नमः नमः) ऐसे योगीश्वरों को मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

इत्यूहोऽपि स दृष्टस्य कस्यचित्स्वार्तिमूचिवान्।

मध्ये मध्ये हि चापल्यमामोहादपि योगिनाम्॥२६॥

अन्वयार्थ- (इति ऊहः अपि सः) इसप्रकार विचार करने पर भी उस वणिक ने (दृष्टस्य कस्यचित्) देखे हुए किसी पुरुष के सम्मुख (स्वार्तिं) अपनी पीड़ा (ऊचिवान्) कही।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (योगिनां अपि) योगियों के भी (आमोहात्) मोहनीय कर्म के सद्भाव पर्यन्त (मध्ये मध्ये चापल्यं) बीच-बीच में चपलता होती है।

यादृच्छिक इवायातस्तत्कृच्छ्रं सोऽपि शुश्रुवान्।
संसृतौ व्यवहारस्तु न हि मायाविवर्जितः॥२७॥

अन्वयार्थ- (सः अपि) उस पुरुष ने भी (यादृच्छिकः आयातः इव) बिना मतलब से आए हुए के सदृश (तत्कृच्छ्रं शुश्रुवान्) उनका कष्ट सुना।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (संसृतौ व्यवहारः) संसार में व्यवहार (मायाविवर्जितः न स्यात्) माया से रहित नहीं होता है।

श्रुत्वा मिषेण केनापि नीत्वा राजतभूधरम्।
स्वागतेः कारणं सर्वमभाणीत्स वणिक्पतेः॥२८॥

अन्वयार्थ- (सः) उसने (श्रुत्वा) सेठ के दुःख को सुनकर (केन अपि मिषेण) किसी बहाने से (राजतभूधरं नीत्वा) विजयार्ध पर्वत पर ले जाकर (वणिक्पतेः) सेठ से (सर्वं स्वागतेः कारणं) अपने आने का कारण (अभाणीत्) कहा।

विजयार्धगिरावस्ति दक्षिणश्रेणिमण्डने।
गान्धारविषये ख्याता नित्यालोकाह्वया पुरी॥२९॥

अन्वयार्थ- (विजयार्धगिरौ) विजयार्ध पर्वत पर (दक्षिण-श्रेणी मण्डने) दक्षिणश्रेणी के भूषणस्वरूप (गान्धारविषये) गान्धार देश में (ख्याता) प्रसिद्ध (नित्यालोकाह्वया पुरी अस्ति) नित्यालोक नाम की नगरी है।

गरुडवेगनामास्यां राजा राज्ञी तु धारिणी।
पुत्री गन्धर्वदत्ताभूदभूत्सापि यवीयसी॥३०॥

अन्वयार्थ- (अस्यां) इस नगरी में (गरुडवेगनामा राजा) गरुडवेग नाम का राजा (राज्ञी तु धारिणी) और इसकी धारिणी नाम की रानी है और (गन्धर्वदत्ता पुत्री) इन दोनों के गन्धर्वदत्ता नाम की पुत्री है (सा अपि यवीयसी अभूत्) और वह पुत्री अब जवान भी हो गई है।

वीणाविजयिनो भार्या राजपुर्यामियं भवेत्।

भूमाविति मुहूर्तज्ञा जन्मलग्ने व्यजीगणन्॥३१॥

अन्वयार्थ- (मुहूर्तज्ञाः) ज्योतिषियों ने (जन्मलग्ने) गन्धर्वदत्ता के जन्म-समय में (इति व्यजीगणन्) इसप्रकार कहा कि (इयं) यह कन्या (राजपुर्यां) राजपुरी में (भूमौ वीणाविजयिनः) भूमिगोचारियों की वीणा बजाने में विजयी पुरुष की (भार्या भवेत्) पत्नी होगी।

तदर्थं पार्थिवः सार्धमेकान्ते कान्तया तया।

मन्त्रयित्वा तदन्ते माममन्दप्रीतिरादिशत्॥३२॥

कुलक्रमागता मैत्री श्रीदत्तेनास्ति नस्ततः।

गत्वा सत्वरमत्रैव सोऽयमानीयतामिति॥३३॥

अन्वयार्थ- (अमन्दप्रीतिः पार्थिवः) अत्यन्त प्रीति रखनेवाले उस राजा ने (एकान्ते) एकान्त में (तया कान्तया सार्धं) अपनी स्त्री के साथ (तदर्थं) इस कार्य के लिए (मन्त्रयित्वा) सलाह करके (तदन्ते) पश्चात् (मां आदिशत्) मुझको आज्ञा दी।

(कुलक्रमागता नः मैत्री) कुल परम्परा से आई हुई हमारी मित्रता (श्रीदत्तेन अस्ति) श्रीदत्त सेठ के साथ है (ततः) इसलिए (सत्वरं

गत्वा) शीघ्र जाकर (सः अयं अत्र एव आनीयतां) उन्हें यहीं ले आओ (इति आदिशत्)-ऐसी आज्ञा दी।

भवन्तं परतन्त्रोऽहं नौभ्रंशभ्रान्तिमावहन्।

नाम्ना धरः कृतेभूम्ना पुनरानीतवानिति॥३४॥

अन्वयार्थ- (धरः नाम्ना) धर नाम का (परतन्त्रः अहं) पराधीन सेवक मैं (कृतेः भूम्ना) कार्य की गुरुता से/अत्यन्त आवश्यक कार्य होने से (भवन्तं) आपको (नौभ्रंशभ्रान्तिं आवहन्) नौका के नाश होने के भ्रम को उत्पन्न करके (पुनः) पश्चात् (आनीतवान्) यहाँ लाया हूँ। {इति स श्रीदत्तं अकथयत्} इसप्रकार उसने श्रीदत्त सेठ से कहा।

श्रीदत्तोऽपि तदाकर्ण्य तुतोष सुतरामसौ।

दुःखस्यानन्तरं सौख्यमतिमात्रं हि देहिनाम्॥३५॥

अन्वयार्थ- (असौ श्रीदत्तः अपि) श्रीदत्त सेठ भी (तदाकर्ण्य) यह बात सुनकर (सुतरां तुतोष) अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (देहिनां) जीवों के (दुःखस्य अनन्तरं) दुःख के बाद सुख का मिलना (अतिमात्रं सौख्यं भवति) अत्यन्त सुखकर होता है।

असुखायत वैश्योऽपि खेचरेन्द्रावलोकनात्।

मित्रं धात्रीपतिं लोके कोऽपरः पश्यतः सुखी॥३६॥

अन्वयार्थ- (वैश्यः अपि) श्रीदत्त सेठ भी (खेचरेन्द्रावलोकनात्) विद्याधरों के स्वामी के दर्शन से (असुखायत) अत्यन्त सुखी हुए।

[अत्र नीतिः] (लोके) इस संसार में (मित्रं धात्रीपतिं पश्यतः) मित्र राजा को देखनेवाले से (अपरः कः सुखी) दूसरा कौन सुखी है!

नभश्चराधिपः पश्चात्तदायत्तां सुतां व्यधात्।
प्राणेष्वपि प्रमाणं यत्तद्धि मित्रमितीष्यते॥३७॥

अन्वयार्थ- (पश्चात्) तत्पश्चात् (नभश्चराधिपः) विद्याधरों के स्वामी गरुड़वेग ने (सुतां) अपनी पुत्री (तदायत्तां) उन श्रीदत्त सेठ के आधीन (व्यधात्) कर दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (यत्) जो (प्राणेषु अपि) प्राणों से भी अधिक (प्रमाणं) प्रमाण हो अर्थात् विश्वासपात्र हो तथा मित्र के लिए जो अपने प्राणों को भी तुच्छ समझता हो (तत् मित्रं इति इष्यते) वही सच्चा मित्र माना गया है।

श्रीदत्तं सत्वरं तस्मात्खेचरेशो न्यवर्तयत्।
अङ्गजायां हि सूत्यायामयोग्यं कालयापनम्॥३८॥

अन्वयार्थ- (खेचरेशः) विद्याधरों के स्वामी गरुड़वेग ने (श्रीदत्तं) श्रीदत्त सेठ को (तस्मात्) अपने यहाँ से (सत्वरं) शीघ्र ही (न्यवर्तयत्) लौटा दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अङ्गजायां सूत्यायां) पुत्री के जवान हो जाने पर (कालयापनं) बिना विवाह के काल बिताना (अयोग्यं) सर्वथा अयोग्य है।

गृहस्थानां हि तद् दौस्थ्यमतिमात्रमरुन्तुदम्।
कन्यानामप्रमादेन रक्षणादिसमुद्भवम्॥३९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (गृहस्थानां) गृहस्थों को (तत् दौस्थ्यं) वह दुःख (अतिमात्रं अरुन्तुदं) अत्यन्त पीड़ा देनेवाला है; (यत्) जो (कन्यानां) कन्याओं के (अप्रमादेन रक्षणादि समुद्भवं) सावधानीपूर्वक रक्षणादिक से उत्पन्न होता है।

तयामा स्वपुरं प्राप्य श्रीदत्तोऽप्यथतत्कथाम्।

पत्न्याः प्रकटयामास स्त्रीणामेव हि दुर्मतिः॥४०॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (श्रीदत्तः अपि) श्रीदत्त सेठ ने भी (तया अमा) उस मित्र-पुत्री गन्धर्वदत्ता के साथ (स्वपुरं प्राप्य) अपने नगर आकर (तत्कथां) उसकी सारी कथा (पत्न्याः प्रकटयामास) अपनी पत्नी से कह दी।

[अत्र नीतिः] (हि) क्योंकि (स्त्रीणां एव दुर्मतिः) स्त्रियों की बुद्धि शंकाशील होती है।

वीणाविजयिनो योग्या भोग्या पुत्री ममेति सः।

कटके घोषयामास राजानुमतिपूर्वकम्॥४१॥

अन्वयार्थ- (सः) उस श्रीदत्त सेठ ने (राजानुमतिपूर्वकं) राजा की आज्ञापूर्वक (कटके) राज्य भर में (इति घोषयामास)-इसप्रकार घोषणा कराई कि (योग्या) सर्वगुणसम्पन्न (मम पुत्री) मेरी पुत्री (वीणा विजयिनः भोग्या) वीणा बजाने में जीतनेवाले द्वारा भोग्या {अस्ति} है अर्थात् जो वीणा बजाने में इसे जीत लेगा, वही इसका पति होगा।

अकुतोभीतिता भूमेर्भूपानामाज्ञयान्यथा।

आस्तामन्यत्सुवृत्तानां वृत्तं च न हि सुस्थितम्॥४२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] क्योंकि (भूपानां आज्ञया) राजाओं की आज्ञा से (भूमेः) प्रजा को (अकुतोभीतिता) किसी से भय नहीं होता। (अन्यथा) इसके विपरीत अर्थात् राजा की आज्ञा के बिना (अन्यत् दूरे आस्तां) और तो दूर ही रहे (सुवृत्तानां) सच्चरित्र पुरुषों का (वृत्तं च) सदाचार भी (हि न सुस्थितं) निश्चय से स्थिर नहीं रह सकता।

वीणामण्डपमासेदुस्तावता धरणीभुजः।

स्त्रीरागेणात्र के नाम जगत्यां न प्रतारिताः॥४३॥

अन्वयार्थ- (तावता) उससमय घोषणा को सुनते ही (धरणीभुजः) राजा लोग (वीणामण्डपं आसेदुः) वीणा-मण्डप में आ पहुँचे।

[अत्र नीतिः] (अत्र जगत्यां) इस संसार में (के नाम) कौन पुरुष (स्त्रीरागेण न प्रतारिताः) स्त्री के प्रेम से नहीं ठगाए गए हैं अर्थात् स्त्री का प्रेम सबको अपने आधीन कर लेता है।

कन्यायाः परिवादिन्यां पराजेषत पार्थिवाः।

अपुष्कला हि विद्या स्यादवज्ञैकफला क्वचित्॥४४॥

अन्वयार्थ- (पार्थिवाः) राजा (कन्यायाः परिवादिन्यां) कन्या की परिवादिनी नाम की वीणा बजाने पर (पराजेषत) हार गए अर्थात् उससे बढ़कर कोई वीणा न बजा सका।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अपुष्कला विद्या) अपूर्ण विद्या (क्वचित्) कहीं पर (अवज्ञा एक फला स्यात्) तिरस्कार करानेवाली ही होती है अर्थात् तिरस्कार के सिवाय उसका दूसरा फल नहीं होता।

जीवन्धरकुमारस्तु घोषवत्यां जिगाय ताम्।

अनवद्या हि विद्या स्याल्लोकद्वयफलावहा॥४५॥

अन्वयार्थ- (तु जीवन्धरकुमारः) किन्तु जीवन्धरकुमार ने (तां) उस कन्या को (घोषवत्यां) अपनी घोषवती नाम की वीणा बजाने पर (जिगाय) जीत लिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अनवद्या विद्या) निर्दोष विद्या (लोकद्वयफलावहा) इस लोक और परलोक में उत्तम फल देनेवाली (स्यात्) होती है।

पराजयं जयाच्छलाघ्यं मत्वा सापि तमासदत्।

अन्तिकं कृतपुण्यानां श्रीरन्विष्य हि गच्छति॥४६॥

अन्वयार्थ- (सा अपि) वह कन्या भी (पराजयं) हार को (जयात्) जीत से (श्लाघ्यं मत्वा) उत्तम समझकर (तं आसदत्) उनके पास आ गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (श्रीः) लक्ष्मी (कृतपुण्यानां अन्तिकं) पूर्वजन्म में किया है पुण्य जिन्होंने ऐसे पुरुषों को ढूंढकर उनके समीप (अन्विष्य गच्छति) स्वयं चली जाती है।

आमुमोचाथ मोचोरुः स्रजं जीवकवक्षसि।

कुर्वन्तु तप इत्येवं सर्वेभ्यो ब्रुवतीव सा॥४७॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (सा मोचोरुः) केले के समान जंघावाली उस गन्धर्वदत्ता ने (एवं तपः कुर्वन्तु) तुम लोग ऐसा तप करो कि मुझे पा सको (इति सर्वेभ्यः ब्रुवतीव) इसप्रकार सबके लिए कहती हुई ही (जीवकवक्षसि) जीवन्धरकुमार के वक्षस्थल में (स्रजं) वरमाला (आमुमोच) डाल दी।

काष्ठाङ्गारस्तु तद्वीक्ष्य क्षितिपान्समधुक्षयत्।

अन्याभ्युदयखिन्नत्वं तद्धि दौर्जन्यलक्षणम्॥४८॥

अन्वयार्थ- (तत् वीक्ष्य) यह देखकर (तु काष्ठाङ्गारः) काष्ठांगार ने (क्षितिपान् समधुक्षयत्) राजाओं को लड़ने के लिए भड़काया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अन्याभ्युदयखिन्नत्वं) दूसरे की उन्नति में जलना ही (दौर्जन्यलक्षणं) दुर्जन पुरुषों का लक्षण है।

क्रयविक्रययोर्योग्यः कुप्यानां वैश्यसूनुकः।

कथं लभेत स्त्रीरत्नं शस्तं वस्तु हि भूभुजाम्॥४९॥

अन्वयार्थ- (कुप्यानां) बर्तन जैसे तुच्छ पदार्थों को (क्रयविक्रययोः योग्यः) खरीदने-बेचनेवाला (वैश्यसूनुकः) वैश्य पुत्र (स्त्रीरत्नं कथं लभेत) स्त्रीरूपी रत्न को कैसे प्राप्त कर सकता है?

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (शस्तं वस्तु) उत्तम पदार्थ (भूभुजां) राजाओं के लिए {भवति} होता है। तुम राजाओं के उपस्थित रहते हुए यह स्त्री-रत्न इसको नहीं मिलना चाहिए।

इति सिंधुक्षिताश्चक्रुः स्वामिना तेऽपि संयुगम्।
प्रकृत्या स्यादकृत्ये धीर्दुः शिक्षायां तु किं पुनः॥५०॥

अन्वयार्थ- (इति सिंधुक्षिताः) इसप्रकार भड़काए हुए (ते अपि) उन राजाओं ने भी (स्वामिना) जीवन्धरकुमार के साथ (संयुगं चक्रुः) युद्ध किया।

[अत्र नीतिः] (प्रकृत्या धीः अकृत्ये स्यात्) स्वभाव से बुद्धि खोटे कार्य में प्रवृत्त हो जाती है। (दुःशिक्षायां तु किं पुनः) खोटी शिक्षा मिलने पर तो फिर कहना ही क्या?

पराजेषत भूपास्ते धन्विनां चक्रवर्तिनः।
अलं काकसहस्रेभ्यः एकैव हि दृषद्भवेत्॥५१॥

अन्वयार्थ- (ते भूपाः) वे राजा (धन्विनां चक्रवर्तिनः) धनुर्धारियों के चक्रवर्ती जीवन्धरकुमार से (पराजेषत) हार गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (काकसहस्रेभ्यः) हजार कौओं के उड़ाने के लिए (एका एव) एक ही (दृषद्) पत्थर (अलं भवेत्) काफी होता है।

स्थाने कन्यामनः सक्तमित्यूचुः सज्जनाः मुदा।
सुधासूतेः सुधोत्पत्तिरपि लोके किमद्भुतम्॥५२॥

अन्वयार्थ- (सज्जनाः) सज्जन पुरुषों ने (मुदा) हर्ष से (कन्यामनः स्थाने सक्तं इति ऊचुः) कन्या का मन योग्य पुरुष में आसक्त हुआ-ऐसा कहा।

[अत्र नीतिः] (लोके) लोक में (सुधोत्पत्तिः अपि) अमृत की उत्पत्ति (सुधासूतेः) चन्द्रमा से ही (भवति) होती है। (इति किं अद्भुतं) इसमें क्या आश्चर्य है!

अथ गन्धर्वदत्तां तां श्रीदत्तेनाग्निसाक्षिकम्।

दत्तां स जीवकस्वामी पर्यणैष्ट यथाविधि॥५३॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके बाद (सः जीवकस्वामी) उन जीवन्धरस्वामी ने (अग्निसाक्षिकं) अग्नि की साक्षीपूर्वक (श्रीदत्तेन दत्तां) श्रीदत्त सेठ द्वारा दी हुई (तां गन्धर्वदत्तां) उस गन्धर्वदत्ता को (यथाविधि) विधिपूर्वक (पर्यणैष्ट) ब्याहा।

इति श्रीमवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ

गन्धर्वदत्तालम्भो नाम तृतीयो लम्बः।

चतुर्थो लम्बः

अथ जीवन्धरस्वामी रेमे रामासमन्वितः।

संसारेऽपि यथायोग्याद्भोग्यान्ननु सुखी जनः॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (रामासमन्वितः) अपनी गन्धर्वदत्ता नाम की स्त्री के साथ (जीवन्धरस्वामी) जीवन्धरकुमार ने (रेमे) रमण किया।

[अत्र नीतिः/] (ननु) निश्चय से (संसारे अपि) संसार में भी (जनः) मनुष्य (यथायोग्यात् भोग्यात्) अपनी योग्यता के अनुकूल भोग-सामग्री मिलने से (सुखी भवति) सुखी होता है।

माधवोऽथ जलक्रीडां पौराणामुदपादयत्।

रागान्धानां वसन्तो हि बन्धुरग्नेरिवानिलः॥२॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (माधवः) वसन्त ऋतु ने (पौराणां) नगरवासियों में (जलक्रीडां) जलक्रीड़ा अर्थात् फाग खेलने की भावना (उदपादयत्) उत्पन्न की।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (रागान्धानां) अनुराग से अन्धे पुरुषों के लिए (वसन्त) वसन्त (अग्नेः अनिलः इव) अग्नि को प्रज्वलित करने में पवन की तरह (बन्धुः) मित्र अर्थात् सहायक होता है।

जीवन्धरकुमारोऽपि मित्रैर्द्रष्टुमयादमूम्।

नवापगाजलक्रीडां लोको ह्यभिनवप्रियः॥३॥

अन्वयार्थ- (जीवन्धरकुमारः अपि) जीवन्धरकुमार भी (अमूं नवापगाजलक्रीडां) इस नदी की नवीन जलक्रीड़ा को (द्रष्टुं) देखने के लिए (मित्रैः सह अयात्) अपने मित्रों के साथ गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लोकः) संसारी लोग (अभिनवप्रियः भवति) हमेशा नवीन वस्तु से प्रेम करनेवाले होते हैं।

अवधिषुर्द्विजास्तत्र हविर्दूषितभाषणम्।

क्रूराः किं किं न कुर्वन्ति कर्म धर्मपराङ्मुखाः॥४॥

अन्वयार्थ- (तत्र) वहाँ पर (द्विजाः) याज्ञिकों ने (हविर्दूषितभाषणं) यज्ञ-सामग्री को दूषित करनेवाले कुत्ते को (अवधिषुः) अधमरा कर दिया।

[अत्र नीतिः] (धर्मपराङ्मुखाः क्रूराः) धर्म से विमुख कठोर हृदयवाले मनुष्य (किं किं कर्म न कुर्वन्ति) क्या-क्या खोटे कर्म नहीं करते हैं? अर्थात् वे सब प्रकार के बुरे कर्म करते हैं।

निर्निमित्तमपि घ्नन्ति हन्त जन्तूनधार्मिकाः।

किं पुनः कारणाभासे नो चेदत्र निवारकः॥५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है! (अधार्मिकाः) अधार्मिक/पापी पुरुष (निर्निमित्तं अपि) बिना कारण के भी (जन्तून्) जीवों को (घ्नन्ति) मार डालते हैं (कारणाभासे) झूठा कारण मिल जाने पर (चेत् अत्र) यदि वहाँ (निवारकः) कोई निवारण करनेवाला भी (न स्यात्) नहीं हो (किं पुनः वक्तव्यं) तब तो फिर कहना ही क्या है?

तद्व्यथां वीक्षमाणोऽयं कुमारो विषसाद सः।
तद्धि कारुण्यमन्येषां स्वस्येव व्यसने व्यथा॥६॥

अन्वयार्थ- (तद् व्यथां वीक्षमाणः) उस कुत्ते की पीड़ा को देखकर (अयं कुमारः) ये जीवन्धरकुमार (विषसाद) अत्यन्त खेद को प्राप्त हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अन्येषां व्यसने) दूसरे की पीड़ा में (स्वस्य इव व्यथा) अपने दुःख के समान ही पीड़ा का अनुभवन करना (तत् कारुण्यं) वह करुणा है।

प्रत्युज्जीवयितुं श्वानं यत्नेनाप्यथ नाशकत्।
न ह्यकालकृतो यत्नो भूयानपि फलप्रदः॥७॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर {अयं} ये जीवन्धरकुमार (प्रत्युज्जीवयितुं) जीवित रखने के लिए (न अशकत्) समर्थ नहीं हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अकालकृता भूयान् अपि यत्नः) समय निकल जाने पर किया हुआ बड़ा प्रयत्न भी (फलप्रदः न) फल देनेवाला नहीं होता।

परलोकार्थमस्यायं पञ्चमन्त्रमुपादिशत्।
निर्वाणपथपान्थानां पाथेयं तद्धि किं परैः॥८॥

अन्वयार्थ- (अयं) जीवन्धरकुमार ने (अस्य) कुत्ते का (परलोकार्थं) परलोक सुधारने के लिए (पञ्चमन्त्रं) पंच णमोकार मन्त्र का (उपादिशत्) उपदेश दिया।

[अत्र नीतिः/] (हि) कारण कि (परैः किं) बहुत कहने से क्या (तत् निर्वाणपथपान्थानां) यह णमोकार महामन्त्र मोक्षमार्ग पर चलनेवाले पथिकों के लिए (पाथेयं) कलेवा है।

यक्षेन्द्रोऽजनि यक्षोऽयमहो मन्त्रस्य शक्तितः।

कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः॥९॥

अन्वयार्थ- (अहो) आश्चर्य है! (अयं यक्षः) यह कुत्ते का जीव (मन्त्रस्य) मन्त्र के (शक्तितः) प्रभाव से (यक्षेन्द्रः अजनि) यक्ष जाति के देवों का स्वामी हुआ।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (कालायसं) अत्यन्त काला लोहा भी (रसयोगतः) रस के सम्बन्ध से (कल्याणं कल्पते) सुवर्णरूप हो जाता है।

मरणक्षणलब्धेन येन श्वा देवताजनि।

पञ्चमन्त्रपदं जप्यमिदं केन न धीमता॥१०॥

अन्वयार्थ- (मरणक्षणलब्धेन येन) मरण के समय प्राप्त जिस मन्त्र से (श्वा) कुत्ता (देवता अजनि) देवता हो गया तब (केन धीमता) किस बुद्धिमान से (इदं पञ्चमन्त्रं) यह पंच णमोकार मन्त्र (न जप्यं) जपने योग्य नहीं है अर्थात् सभी के द्वारा जपने योग्य है।

स कृतज्ञचरो देवः कृतज्ञत्वात्तदागमत्।

अन्तर्मुहूर्ततः पूर्तिर्दिव्यायाः हि तनोर्भवेत्॥११॥

अन्वयार्थ- (स कृतज्ञचरः देवः) वह कुत्ते का जीव देव (कृतज्ञत्वात्) कृतज्ञता के कारण (तदा) उसी समय जीवन्धरकुमार के पास (आगमत्) आया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (दिव्यायाः तनोः) देवों के शरीर की (पूर्तिः) पूर्णता (अन्तर्मुहूर्ततः भवेत्) अन्तर्मुहूर्त में हो जाती है।

कुमारममरो दृष्ट्वा हृष्टस्तुष्टाव मृष्टवाक्।

उपकारस्मृतिः कस्य न स्यान्नो चेदचेतनः॥१२॥

अन्वयार्थ- (मृष्टवाक्) शुद्धवाणी बोलनेवाला और (हृष्टः) आनन्द से परिपूर्ण (अमरः) वह यक्षेन्द्र (कुमारं दृष्ट्वा) जीवन्धरकुमार को देखकर (तुष्टाव) उनका स्तवन करने लगा।

[अत्र नीतिः] (उपकारस्मृतिः) उपकार का स्मरण (कस्य) किसे (न स्यात्) नहीं होता (चेत्) यदि (सः अचेतनः न स्यात्) वह अचेतन नहीं हो तो।

व्यस्मेष्ट तेन न स्वामी मनुमाहात्म्यनिर्णयात्।

मुक्तिप्रदेन मन्त्रेण देवत्वं न हि दुर्लभम्॥१३॥

अन्वयार्थ- (स्वामी) जीवन्धरकुमार (मनुमाहात्म्यनिर्णयात्) मन्त्र के माहात्म्य के निर्णय से (तेन न व्यस्मेष्ट) उस देव को देखकर आश्चर्ययुक्त नहीं हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मुक्तिप्रदेन मन्त्रेण) मुक्ति को देने वाले मन्त्र से (देवत्वं) देव पर्याय मिलना (न दुर्लभं) दुर्लभ नहीं है।

स्मर्तव्योऽस्मि महाभागेत्युक्त्वा देवस्तिरोऽभवत्।

प्रतिकर्तुं कथं नेच्छेदुपकर्तुः सचेतनः॥१४॥

अन्वयार्थ- (महाभाग) हे महाभाग! समय आने पर (अहं) मैं (स्मर्तव्यः अस्मि) स्मरण करने योग्य हूँ (इति उक्त्वा) ऐसा कहकर (देवः तिरः अभवत्) देव अन्तर्धान हो गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सचेतनः) सचेतन प्राणी (उपकर्तुः) अपने उपकार करनेवाले का (प्रतिकर्तुं) प्रत्युपकार करने के लिए (कथं) कैसे (न इच्छेत्) इच्छा नहीं करे? वह तो इच्छा करता ही है।

सारमेयचरे देवे तमाश्लिष्य मुहुर्मुहुः।

आपृच्छ्य च गते तस्मिन्नत्र प्रस्तुतमुच्यते॥१५॥

अन्वयार्थ- (तं) जीवन्धरकुमार को (आश्लिष्य) आलिंगन करके (च) और (मुहुः मुहुः आपृच्छ्य) बार-बार पूछकर (तस्मिन् सारमेयचरे देवे गते) उस कुत्ते के जीव देव के चले जाने पर (अत्र प्रस्तुतं उच्यते) यहाँ जो वृत्तान्त हुआ, उसे कहते हैं।

चूर्णार्थं सुरमज्जर्याः स्पर्धाभूद्गुणमालया।

एकार्थस्पृहया स्पर्धा न वर्धेतात्र कस्य वा॥१६॥

अन्वयार्थ- (चूर्णार्थं) चूर्ण के लिए (सुरमज्जर्याः) सुरमज्जरी की (स्पर्धा) ईर्ष्या (गुणमालया अभूत्) गुणमाला के साथ हुई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अत्र) इस संसार में (एकार्थस्पृहया) एक ही पदार्थ की इच्छा करने से (कस्य) किसके (स्पर्धा न वर्धेत्) ईर्ष्या नहीं बढ़ती है? अर्थात् सबके यही इच्छा

होती है कि मैं ही इस पदार्थ को ले लूँ अथवा मेरी वस्तु ही दूसरे की वस्तु से उत्तम है।

मा भूत्पराजिता स्नाता नादेये वारिणीति वै।

सङ्गिराते स्म ते सख्यौ मात्सर्यात्किं न नश्यति॥१७॥

अन्वयार्थ- (ते सख्यौ) उन दोनों सखियों ने (पराजिता) हारी हुई (नादेये वारिणि स्नाता मा भूत्) नदी के जल में स्नान नहीं करे (इति वै सङ्गिराते स्म) ऐसी प्रतिज्ञा की।

[अत्र नीतिः] (मात्सर्यात् किं न नश्यति) मात्सर्य/ईर्ष्या भाव से क्या नाश नहीं होता है? अर्थात् सभी कार्य नष्ट हो जाते हैं।

कन्ये प्राहिणुतां पश्चाच्चेट्यौ स्वे निकटे सताम्।

कुत्सितं कर्म किं किं वा मत्सरिभ्यो न रोचते॥१८॥

अन्वयार्थ- (पश्चात् कन्ये) फिर दोनों कन्याओं ने (स्वेच्चेट्यौ) अपनी-अपनी दासियों को (सतां निकटे) चूर्ण की परीक्षा करनेवाले सज्जन पुरुषों के समीप (प्राहिणुतां) भेजा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मत्सरिभ्यः) मत्सर करनेवाले जीव को (किं किं कुत्सितं कर्म) कौन-कौन से खोटे कार्य (न रोचते) नहीं रुचते हैं? अर्थात् सभी खोटे कार्य रुचते हैं।

अस्थिषातामथागत्य चेट्यौ जीवककोविदे।

अनवद्या सती विद्या लोके किं न प्रकाशते॥१९॥

अन्वयार्थ- (अथ) तदनन्तर (चेट्यौ) वे दोनों दासियाँ (जीवककोविदे) बुद्धिमान जीवन्धरकुमार के समीप (आगत्य) आकर (अस्थिषातां) ठहर गईं।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लोके) संसार में (सती अनवद्या विद्या) समीचीन/निर्दोष विद्या (किं न प्रकाशते) किस बात को प्रकाशित नहीं करती है? अर्थात् उत्तम विद्या से सभी बातों का सही निर्णय हो जाता है।

गुणवद्गुणमालायाश्चूर्णं निर्वर्ण्य सोऽभ्यधात्।
पाण्डित्यं हि पदार्थानां गुणदोषविनिश्चयः॥२०॥

अन्वयार्थ- (सः) उन जीवन्धरकुमार ने (गुणमालायाः चूर्णं) गुणमाला के चूर्ण की (निर्वर्ण्य) परीक्षा कर (गुणवत्) उसे गुणवान (अभ्यधात्) बताया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पदार्थानां गुणदोषविनिश्चयः) पदार्थों के गुण और दोष का निश्चय करना ही (पाण्डित्यं) पाण्डित्य है।

चेटी तु सुरमज्जर्यास्तत् श्रुत्वा रोषणाऽब्रवीत्।
अन्यैरप्युक्तमुक्तं तैः किमध्यैष्ट भवानिति॥२१॥

अन्वयार्थ- (तु) किन्तु (सुरमज्जर्याः चेटी) सुरमज्जरी की दासी ने (तत् श्रुत्वा) वह बात सुनकर (रोषणा सती) क्रोधित होते हुए (अन्यैः उक्तं अपि) दूसरों से कहा हुआ ही आपने (उक्तं) कहा

(किं) क्या (तैः सार्धं) उनके साथ (भवान् अध्यैष्ट) आपने पढ़ा है? (इति) इसप्रकार (अब्रवीत्) बोली।

चूर्णयोरलिभिः स्वामी गुणदोषावसाधयत्।
निर्विवादविधिर्नो चेन्नैपुण्यं नाम किं भवेत्॥२२॥

अन्वयार्थ- फिर (स्वामी) जीवन्धरकुमार ने (चूर्णयोः गुणदोषौ) गुणमाला और सुरमञ्जरी के चूर्णों के गुण और दोषों का निर्णय (अलिभिः) भ्रमरों के द्वारा (असाधयत्) सिद्ध किया।

[अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (निर्विवादविधिः न स्यात्) विवादरहित युक्ति न हो (तर्हि) तो फिर (नैपुण्यं नाम किं भवेत्) चतुराई ही क्या कहलायी?

आकालिकतया दुष्टं चूर्णमन्यदवर्णयत्।
न ह्यकालकृतं कर्म कार्यनिष्पादनक्षमम्॥२३॥

अन्वयार्थ- जीवन्धरकुमार ने (अन्यत् चूर्णं) सुरमञ्जरी के चूर्ण को (आकालिकतया) असमय में बनाए जाने से (दुष्टं) दूषित (अवर्णयत्) बताया अर्थात् सुरमञ्जरी का चूर्ण वसन्त ऋतु के लिए प्रतिकूल था; इसलिए उसमें सुगन्ध न होने से उस पर कोई भौंरा नहीं आया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अकालकृतं कर्म) असमय में किया हुआ उद्यम (कार्यनिष्पादनक्षमं न भवति) कार्य का निष्पादन करने में समर्थ नहीं होता।

कुमारादथ कुट्टन्यौ नुत्वा नत्वा च निर्गते।

निर्विवादं वितन्वानाः न स्तुत्याः केन भूतले॥२४॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (कुट्टन्यौ) वे दोनों दासियाँ जीवन्धरकुमार की (नुत्वा नत्वा च) प्रशंसा और नमस्कार करके (कुमारात्) जीवन्धरकुमार के पास से (निर्गते) चली गईं।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भूतले) पृथ्वीतल पर (निर्विवादं वितन्वानाः) विवादरहित कार्य का निर्णय करनेवाले पुरुष (केन न स्तुत्याः) किस पुरुष से स्तुति करने योग्य नहीं हैं? अर्थात् सब के द्वारा स्तुत्य होते हैं।

तच्चासीत्सुरमञ्जर्याः विरागस्यैव कारणम्।

न ह्यत्र रोचते न्यायमीर्ष्यादूषितचेतसे॥२५॥

अन्वयार्थ- (तत् च) और यह निर्णय (सुरमञ्जर्याः) सुरमञ्जरी के (विरागस्य एव) वैराग्य का ही (कारणं आसीत्) कारण हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अत्र) संसार में (ईर्ष्यादूषितचेतसे) ईर्ष्या से दूषित चित्तवाले मनुष्य के लिए (न्यायं) न्याय की बात (न रोचते) रुचिकर नहीं होती है।

प्रार्थिताप्यकृतस्नाना सत्वरं सुरमञ्जरी।

न्यवर्तिष्ट महारोषादीर्ष्या हि स्त्रीसमुद्भवा॥२६॥

अन्वयार्थ- (प्रार्थिता अपि सुरमञ्जरी) स्नान के लिए प्रार्थित होने पर भी सुरमञ्जरी (अकृतस्नाना) स्नान किए बिना ही (महारोषात्) अत्यन्त क्रोध से (सत्वरं) शीघ्र ही (न्यवर्तिष्ट) लौट गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (ईर्ष्या) ईर्ष्या (स्त्रीसमुद्भवा) स्त्रियों से ही उत्पन्न हुई होगी; क्योंकि सबसे अधिक ईर्ष्याभाव स्त्रियों में ही रहता है।

जीवकादपरान्नेक्षे पुरुषानिति संविदा।

कन्या-गृहमथ प्रापन्न हि भेद्यं मनः स्त्रियाः॥२७॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (अहं जीवकात् अपरान् पुरुषान्) जीवन्धरकुमार के सिवाय दूसरे पुरुष को मैं (न ईक्षे) नहीं देखूँगी (इति सम्विदा) ऐसी प्रतिज्ञा करके (कन्या) वह सुरमञ्जरी (गृहं प्रापत्) अपने घर को वापिस चली गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्त्रियाः मनः) स्त्री का मन (न भेद्यं) किसी से भेदा नहीं जा सकता अर्थात् स्त्री का हठ प्रसिद्ध है। उसका हठ किसी से टाला नहीं जा सकता।

सख्यां तथैव यातायां गुणमाला शुशोच ताम्।

न ह्यनिष्टेष्टसंयोगवियोगाभमरुन्तुदम्॥२८॥

अन्वयार्थ- (सख्यां तथैव यातायां) सखी के वैसे ही चले जाने पर (गुणमाला) गुणमाला ने (तां शुशोच) उसके लिए बहुत शोक किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अनिष्ट इष्टसंयोगवियोगाभं) अनिष्ट- दुःखदायी वस्तु के संयोग और इष्ट वस्तु के वियोग के समान (अरुन्तुदं न) कोई पीड़ा देनेवाला नहीं है।

गन्धसिन्धुरतो भीतिरासीदथ पुरौकसाम्।

विपदोऽपि हि तद्भीतिर्मूढानां हन्त बाधिका ॥२९॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (पुरौकसां) राजपुरी नगरी में रहनेवाले मनुष्यों को (गन्धसिन्धुरतः) गन्धहस्ती से (भीतिः आसीत्) भय हुआ अर्थात् काष्ठांगार का एक हाथी अपने स्थान से छूटकर मदोन्मत्तता से मनुष्यों को मारता हुआ उसी वसन्तक्रीड़ा के स्थान पर आया।

[अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है! (हि) निश्चय से (विपदः अपि) विपत्ति से भी (तद् भीतिः) विपत्ति का भय (मूढानां बाधिका) मूर्ख पुरुषों को अत्यन्त बाधा करनेवाला होता है।

परिजनस्तु तं पश्यन्गुणमालामथात्यजत्।

न हि सन्तीह जन्तूनामपाये सति बान्धवाः ॥३०॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (तं पश्यन्) हाथी को देखते हुए (परिजनः) गुणमाला के सम्बन्धी पुरुषों ने (गुणमालां अत्यजत्) उस गुणमाला को अकेला छोड़ दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (इह) इस संसार में (अपाये सति) विपत्ति आ पड़ने पर (जन्तूनां) मनुष्यों के (बान्धवाः न सन्ति) बन्धु नहीं रहते हैं अर्थात् विपत्तिकाल में सब छोड़कर भाग जाते हैं।

कृत्वा तां पृष्ठतो धात्री काचिदस्थाद्यावहम्।
हतायां मय्यतः पूर्वं कन्येयं हन्यतामिति ॥३१॥

अन्वयार्थ- (काचित् धात्री) कोई धाय (अतः पूर्वं मयि हतायां) {सत्यां} इससे पहले मेरे हत हो जाने पर (इयं कन्या हन्यतां) पश्चात् इस कन्या को मारना (इति उक्त्वा) यह कहकर और (तां पृष्ठतः कृत्वा) गुणमाला को पीछे कर (दयावहं अस्थात्) दयाभाव से खड़ी हो गई।

समदुःखसुखा एव बन्धवो ह्यत्र बान्धवाः।

दूता एव कृतान्तस्य द्वन्द्वकाले पराङ्मुखाः॥३२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (अत्र) इस संसार में (समदुःखसुखाः बन्धवः एव) समान हैं दुःख और सुख जिनके ऐसे बन्धु ही (बान्धवाः) मित्र (सन्ति) कहलाते हैं और जो (द्वन्द्वकाले पराङ्मुखाः) विपत्तिकाल में साथ छोड़कर दूर भाग जाते हैं वे (कृतान्तस्य) यम के (दूताः एव) दूत ही हैं।

स्वामी परिणतं वीक्ष्य करिणं तं न्यवारयत्।

स्वापदं न हि पश्यन्ति सन्तः पारार्थ्यतत्पराः॥३३॥

अन्वयार्थ- (स्वामी) जीवन्धरकुमार ने (परिणतं) दाँतों से प्रहार करते हुए (तं करिणं) उस हाथी को (वीक्ष्य) देखकर (न्यवारयत्) हटा दिया।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (पारार्थ्यतत्पराः) दूसरे मनुष्यों के उपकार करने में तत्पर (सन्तः) सज्जन पुरुष (स्वापदं न पश्यन्ति) अपनी आपत्ति को नहीं देखते हैं।

यत्र क्वापि हि सन्त्येव सन्तः सार्वगुणोदयाः। क्वचित्किमपि
सौजन्यं नो चेल्लोकः कुतो भवेत्॥३४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सार्वगुणोदयाः) सबके हित के लिए ही है गुणों की उत्पत्ति जिनमें ऐसे (सन्तः) सज्जन पुरुष (यत्र क्व अपि) कहीं कहीं पर (सन्ति एव) विद्यमान ही हैं। (चेत्) यदि (क्वचित्) कहीं पर (किं अपि) कुछ भी (सौजन्यं) सज्जनता (न स्यात्) न हो (तर्हि) तो फिर (लोकः कुतः भवेत्) संसार ही कैसे चले!

परिवारोऽप्यथायासीदहंपूर्विकया स्वयम्।
स्वास्थ्ये ह्यदृष्टपूर्वाश्च कल्पयन्त्येव बन्धुताम्॥३५॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (परिवारः अपि) परिवार के मनुष्य भी (स्वयं) अपने आप ही (अहंपूर्विकया) मैं पहले आया, मैं पहले आया (इति) ऐसा कहते हुए (अयासीत्) आए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वास्थ्ये) सुख में (अदृष्टपूर्वाः च) पूर्व में नहीं देखे हुए पुरुष भी (बन्धुतां कल्पयन्ति) बन्धु बन जाते हैं।

अन्योऽन्यदर्शनादासीत्कामः कन्याकुमारयोः।
दुःखस्यानन्तरं सौख्यं ततो दुःखं हि देहिनाम्॥३६॥

अन्वयार्थ- (अन्योऽन्यदर्शनात्) एक दूसरे को परस्पर देखने से (कन्याकुमारयोः) कन्या गुणमाला और जीवन्धरकुमार में (कामः आसीत्) प्रीति उत्पन्न हुई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (देहिनां) मनुष्यों के (दुःखस्यानन्तरं सौख्यं) दुःख के पश्चात् सुख और (ततः दुःखं) सुख के पश्चात् दुःख {भवति} होता है।

अशान्तस्वान्तसन्तापा निशान्तं प्राप सा पुनः।
नो चेद्विवेकनीरौघो रागाग्निः केन शाम्यति॥३७॥

अन्वयार्थ- (पुनः) फिर (अशान्तस्वान्तसन्तापा) नहीं शान्त हुआ है हृदय का सन्ताप जिसका अर्थात् काम पीड़ा से सन्तप्त (सा) वह कन्या (निशान्तं प्राप) घर को चली गई।

[अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (विवेकनीरौघः न स्यात्) विवेकरूपी जल का प्रवाह नहीं हो तो फिर (रागाग्निः) रागरूपी अग्नि (केन शाम्यति) किससे शान्त हो सकती है?

क्रीडाशुकं च प्राहैषीत्सविधे स्वामिनः पुनः।
योग्यायोग्यविचारोऽयं रागान्धानां कुतो भवेत्॥३८॥

अन्वयार्थ- {पुनश्च सा} और फिर उसने (स्वामिनः सविधे) जीवन्धर कुमार के समीप (क्रीडाशुकं प्राहैषीत्) पाले हुए तोते को भेजा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (रागान्धानां) राग से अन्धे मनुष्यों को (अयं योग्यायोग्यविचारः) योग्य-अयोग्य का विचार (कुतो भवेत्) कहाँ से हो सकता है?

चाटुं प्रायुङ्क्त कीरोऽपि तं पश्यन्स्वेष्टसिद्धये।
एतादृशेन लिङ्गेन परलोको हि साध्यते॥३९॥

अन्वयार्थ- (कीरः अपि) तोता भी (तं पश्यन्) जीवन्धरकुमार को देखकर (स्वेष्टसिद्धये) अपने कार्य की सिद्धि के लिए (चाटुं) खुशामद (प्रायुङ्क्त) करने लगा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (एतादृशेन लिङ्गेन) ऐसी प्रशंसात्मक बातों से ही (परलोकः साध्यते) दूसरे मनुष्य वश में किए जाते हैं।

विषयेषु समस्तेषु कामं सफलयन्सदा।

गुणमालां जगन्मान्यां जीवयज्जीवताच्चिरम्॥४०॥

अन्वयार्थ- तोते ने कहा (समस्तेषु विषयेषु) सम्पूर्ण विषयों में (सदा कामं सफलयन्) हमेशा अपनी इच्छाएँ सफल करते हुए और (जगन्मान्यां) जगत में माननीया (गुणमालां) गुणमाला को अथवा अपने जगत्मान्य गुण समूह की (जीवयन्) रक्षा करते हुए (चिरं जीवतात्) चिरकाल तक जीवित रहो।

इत्याशिषा कुमारोऽपि तत्सन्देशाच्च पिप्रिये।

इष्टस्थाने सती वृष्टिस्तुष्टये हि विशेषतः॥४१॥

अन्वयार्थ- (कुमारः अपि) जीवन्धरकुमार भी (इति आशिषा) इसप्रकार के आशीर्वाद से और (तत् सन्देशात् च) उस तोते के सन्देश से (पिप्रिये) अत्यन्त प्रसन्न हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (इष्टस्थाने सती वृष्टिः) इच्छित स्थान में हुई उत्तम वर्षा (विशेषतः) अधिकता से (तुष्टये भवति) प्रसन्नता के लिए होती है।

प्रतिसन्देशमप्येषः कीराय प्रत्यपादयत्।

प्रेक्षावन्तो वितन्वन्ति न ह्युपेक्षामपेक्षिते ॥४२॥

अन्वयार्थ- (एषः) जीवन्धरकुमार ने (कीराय) उस तोते के लिए (प्रतिसन्देशं अपि) सन्देश का प्रत्युत्तर भी (प्रत्यपादयत्) दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्रेक्षावन्तः) बुद्धिमान पुरुष (अपेक्षिते वस्तुनि) अपेक्षित वस्तु में (उपेक्षां न वितन्वन्ति) उपेक्षा नहीं करते हैं अर्थात् जो अपने को चाहते हैं, उनका तिरस्कार नहीं करते हैं।

मुमुदे गुणमालापि दृष्ट्वा पत्रेण पत्रिणम्।

स्वस्यैव सफलो यत्नः प्रीतये हि विशेषतः ॥४३॥

अन्वयार्थ- (गुणमाला अपि) गुणमाला भी (पत्रिणं) तोते को (पत्रेण सह दृष्ट्वा) पत्रसहित देखकर (मुमुदे) अत्यन्त प्रसन्न हुई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वस्य एव यत्नः) स्वयं का किया हुआ यत्न ही (सफलं) सफल होने पर (विशेषतः) अधिक (प्रीतये भवति) प्रीतिकर होता है।

पितरावेतदाकर्ण्य मुमुदाते भृशं पुनः।

दुर्लभो हि वरो लोके योग्यो भाग्यसमन्वितः ॥४४॥

अन्वयार्थ- (पुनः) फिर (पितरौ) गुणमाला के माता-पिता (एतत् आकर्ण्य) यह बात सुनकर (भृशं मुमुदाते) अत्यन्त प्रसन्न हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लोके) इस संसार में (भाग्यसमन्वितः) भाग्यवान (योग्यः वरः) उत्तम वर का मिलना (दुर्लभः) अत्यन्त दुर्लभ है।

अथामुष्यायणौ कौचिन्नीतौ गन्धोत्कटान्तिकम्।
न हि नीचमनोवृत्तिरेकरूपास्थिता भवेत्॥४५॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (अमुष्यायणौ कौचित्) प्रसिद्ध कोई दो पुरुष (गन्धोत्कटान्तिकं नीती) गन्धोत्कट के समीप गए अर्थात् उन्होंने जीवन्धरकुमार एवं गुणमाला की प्रीति को अनुचित बताकर चुगली की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (नीचमनोवृत्तिः) नीच मनुष्य के मन की वृत्ति (एकरूपा) हमेशा एक सी (न स्थिता) स्थित नहीं (भवेत्) रहती है।

अनुमेने तयोर्वाक्यं श्रुत्वा गन्धोत्कटोऽपि सः।
अदोषोपहतोऽप्यर्थः परोक्त्या नैव दूष्यते॥४६॥

अन्वयार्थ- (सः गन्धोत्कटः अपि) उन गन्धोत्कट ने भी (तयोः वाक्यं श्रुत्वा) उन दोनों पुरुषों के वचन सुनकर (अनुमेने) अनुमति दी अर्थात् जीवन्धरकुमार और गुणमाला की प्रीति की प्रशंसा की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अदोषोपहतः अपि) दोषरहित (अर्थ) पदार्थ (परोक्त्या) दूसरे के कहने से (न एवं दूष्यते) दूषित नहीं होता है।

सुतां विनयमालायाः गुणमालां यथाविधि।
दत्तां कुबेरमित्रेण परिणिन्येऽथ जीवकः॥४७॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (जीवकः) जीवन्धरकुमार ने (कुबेरमित्रेण) कुबेरमित्र द्वारा (दत्तां) दी हुई (विनयमालायाः)

विनयमाला की (सुतां) पुत्री (गुणमालां) गुणमाला का
(यथाविधि) विधिपूर्वक (परिणिन्ये) वरण किया।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ
गुणमालालम्भो नाम चतुर्थो लम्बः।

पञ्चमो लम्बः

अथ व्यूढामिमां मेने स कुमारोऽतिदुर्लभाम्।

प्रयत्नेन हि लब्धं स्यात्प्रायः स्नेहस्य कारणम्॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (सः कुमारः) इन जीवन्धरकुमार ने (व्यूढां इमां) ब्याही हुई स्त्री को (अतिदुर्लभां) अत्यन्त दुर्लभ (मेने) जाना।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्रयत्नेन लब्धं) प्रयत्न से प्राप्त की हुई वस्तु (प्रायः) प्रायः (स्नेहस्य कारणं) स्नेह का कारण (स्यात्) होती है।

नादत्त कवलं दन्ती स्वामिकुण्डलताडितः।

न हि सोढव्यतां याति तिरश्चां वा तिरस्क्रिया॥२॥

अन्वयार्थ- (स्वामिकुण्डलताडितः) जीवन्धरकुमार के कुण्डल से ताड़ित (दन्ती) हाथी ने (कवलं) ग्रास (न आदत्त) ग्रहण नहीं किया।-

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (तिरश्चां वा तिरस्क्रिया) तिर्यज्यों को भी तिरस्कार (सोढव्यतां न याति) सहन नहीं होता है।

काष्ठाङ्गारस्तदाकर्ण्य चुकोप स्वामिने भृशम्।

सर्पिष्पातेन सप्तार्चिरुदर्चिः सुतरां भवेत्॥३॥

अन्वयार्थ- (काष्ठाङ्गारः) काष्ठांगार (तत् आकर्ण्य) इस बात को सुनकर (स्वामिने) जीवन्धरकुमार पर (भृशं) अत्यन्त (चुकोप) क्रोधित हुआ।

[अत्र नीतिः] निश्चय से (सप्तार्चिः) अग्नि (सर्पिष्पातेन) घी के डालने से (सुतरां) अत्यन्त (उदर्चिः भवेत्) ऊँची ज्वालावाली होती है।

सङ्गादनङ्गमालायाः विजयाच्च वनौकसाम्।
वीणाविजयतश्चास्य कोपाग्निः स्थापितो हृदि॥४॥

अन्वयार्थ- (अस्य हृदि) इस काष्ठांगार के हृदय में (अनङ्गमालायाः सङ्गात्) अनङ्गमाला के समागम से (वनौकसां विजयात्) गायों के पकड़नेवाले व्याधों को जीतने से और (वीणाविजयतः) वीणा में विजयी होने से (इन तीन कारणों से) (कोपाग्निः) क्रोधरूपी अग्नि (स्थापितः) स्थापित अर्थात् उत्पन्न हुई थी।

गुणाधिक्यं च जीवानामाधेरेव हि कारणम्।
नीचत्वं नाम किं नु स्यादस्ति चेद् गुणरागिता॥५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (गुणाधिक्यं च) दूसरों में गुणों की अधिकता (जीवानां) नीच मनुष्यों की (आधेः एव) मानसिक पीड़ा का ही (कारणं) कारण (भवेत्) होती है। (चेत्) यदि (गुणरागिता अस्ति) दूसरों के गुणों में प्रीति होवे तो फिर (नीचत्वं नाम) नीचता नाम ही (किं नु स्यात्) क्यों हो?

उपकारोऽपि नीचानामपकाराय कल्पते।

पन्नगेन पयः पीतं विषस्यैव हि वर्धनम्॥६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (नीचानां) नीच पुरुषों के साथ (उपकारः अपि) उपकार करना भी (अपकाराय) अपकार के लिए (कल्पते) होता है। (हि) निश्चय से (पन्नगेन पीतं) सर्प के द्वारा पिया हुआ (पयः) दूध (विषस्य एव) विष की ही (वर्धनं) वृद्धि {करोति} करता है।

हस्तग्राहं ग्रहीतुं स कुमारं प्राहिणोद्वलम्।

मूढानां हन्त कोपाग्निरस्थानेऽपि हि वर्धते॥७॥

अन्वयार्थ- (सः) उस काष्ठांगार ने (कुमारं) जीवन्धरकुमार को (हस्तग्राहं ग्रहीतुं) हाथ बाँधकर पकड़ लाने के लिए (बलं) सेना (प्राहिणोत्) भेजी।

[अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है! (मूढानां) मूर्ख पुरुषों की (कोपाग्निः) क्रोधरूपी अग्नि (अस्थाने अपि) अयोग्य स्थान में भी (वर्धते) बढ़ती है।

कुमारावसथं पश्चात्तत्सैन्यं पर्यवारयत्।

मृगाः किं नाम कुर्वन्ति मृगेन्द्रं परितः स्थिताः॥८॥

अन्वयार्थ- (पश्चात्) इसके अनन्तर (तत्सैन्यं) काष्ठांगार की सेना ने (कुमारावसथं) कुमार के रहने के स्थान को (पर्यवारयत्) चारों तरफ से घेर लिया।

[अत्र नीतिः] (मृगेन्द्रं परितः स्थिताः) सिंह के चारों ओर घेरकर खड़े हुए (मृगाः) हिरण (किं नाम कुर्वन्ति) सिंह का क्या कर सकते हैं?

प्रारेभे स कुमारोऽपि प्रहर्तुं रोषतश्चमूम्।
तत्त्वज्ञानजलं नो चेत् क्रोधाग्निः केन शाम्यति॥९॥

अन्वयार्थ- (सः कुमारः अपि) उन जीवन्धरकुमार ने भी (रोषतः) क्रोध से (चमूं) सेना को (प्रहर्तुं) मारना (प्रारेभे) प्रारम्भ किया।

[अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (तत्त्वज्ञानजलं) तत्त्वज्ञानरूपी जल (नो स्यात्) नहीं हो तो फिर (क्रोधाग्निः) क्रोधरूपी अग्नि (केन शाम्यति) किसके द्वारा बुझाई जा सकती है?

न्यरौसीत्तस्य सन्नाहमथ गन्धोत्कटः शनैः।
अलङ्घयं हि पितुर्वाक्यमपत्यैः पथ्यकाङ्क्षिभिः॥१०॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (गन्धोत्कटः) सेठ गन्धोत्कट ने (तस्य सन्नाहं) उनके लड़ने की तैयारियों को (शनैः) धीरे-धीरे (न्यरौसीत्) रोका।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पथ्यकाङ्क्षिभिः अपत्यैः) हित की इच्छा करनेवाले पुत्र (पितुः वाक्यं) पिता के वचनों का (अलङ्घयं) उल्लंघन नहीं करते हैं।

पश्चाद्वद्धममुं पश्चादसौ गन्धोत्कटो व्यधात्।
न हि वारयितुं शक्यं पौरुषेण पुराकृतम्॥११॥

अन्वयार्थ- (पश्चात्) इसके अनन्तर (असौ गन्धोत्कटः) इन गन्धोत्कट ने (अमुं) जीवन्धरकुमार को (पश्चात् बद्धं) पीछे की ओर से बँधा हुआ (व्यधात्) कर दिया अर्थात् उसके हाथ पीछे बाँधकर सेना को सौंप दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पुराकृतं) पूर्व में किए हुए दुष्कर्म का (पौरुषेण) पुरुषार्थ से (वारयितुं) निवारण करना (न शक्यं) शक्य नहीं है।

दृष्ट्वापि तं तथाभूतं हन्तुमाह सः दुर्मतिः।

सतां हि प्रह्वता शान्त्यै खलानां दर्पकारणम्॥१२॥

अन्वयार्थ- (सः दुर्मतिः) उस दुष्टबुद्धि काष्ठांगार ने (तथाभूतं तं) बँधे हुए उन जीवन्धरकुमार को (दृष्ट्वा) देखकर (हन्तुं) मारने के लिए सेना को (आह) आज्ञा दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सतां) सज्जन पुरुषों के सम्मुख (प्रह्वता) नम्रता (शान्त्यै) शान्त करनेवाली (भवति) होती है; किन्तु (खलानां) दुर्जन पुरुषों के आगे नम्रता (दर्पकारणं स्यात्) अहंकार को बढ़ानेवाली होती है।

काष्ठाङ्गारं कुमारोऽयं गुरुवाक्येन नावधीत्।

न हि प्राणवियोगेऽपि प्राज्ञैर्लङ्घ्यं गुरोर्वचः॥१३॥

अन्वयार्थ- (अयं कुमारः) जीवन्धरकुमार ने (गुरुवाक्येन) अपने गुरु के वचन से (काष्ठाङ्गारं) काष्ठांगार को (न अवधीत्) नहीं मारा।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (प्राज्ञैः) बुद्धिमान पुरुष (प्राणवियोगे अपि) प्राणों का विनाश उपस्थित होने पर भी (गुरोः वचः) गुरु के वचनों का (न लङ्घ्यं) उल्लंघन नहीं करते।

यक्षेण तत्क्षणे स्वामी स्मृतेनादायि कृत्यवित्।
सचेतनः कथं नु स्यादकुर्वन्प्रत्युपक्रियाम्॥१४॥

अन्वयार्थ- (तत्क्षणे) उसी समय (स्मृतेन यक्षेण) स्मरण किया हुआ यक्षेन्द्र (कृत्यवित् स्वामी) कार्य को जाननेवाले जीवन्धरकुमार को (आदायि) उठा ले गया।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (प्रत्युपक्रियां अकुर्वन्) उपकारी का प्रत्युपकार नहीं करनेवाला (कथं नु सचेतनः स्यात्) सचेतन पुरुष कैसे कहला सकता है? सचेतन आत्मा तो अपने उपकारी का प्रत्युपकार करते ही हैं।

अतिमात्रशुचा लोकः पुनरेवमचिन्तयत्।
गुणज्ञो लोक इत्येषा किम्बदन्ती हि सूनृतम्॥१५॥

अन्वयार्थ- (पुनः) फिर (लोकः) प्रजा ने (अतिमात्रशुचा) अत्यन्त शोक से (एवं अचिन्तयत्) इसप्रकार विचार किया।

[अत्र नीतिः/] (लोकः गुणज्ञः इति) लोग गुणों के जाननेवाले होते हैं। (एषा किम्बदन्ती) यह किम्बदन्ती (सूनृतं) बिलकुल सत्य है।

अतिलोकमिदं शाठ्यं काष्ठाङ्गारस्य दुर्मतेः।
एतावदेव किं शाठ्यं स्वामिद्रोहादबिभ्यतः॥१६॥

अन्वयार्थ- (दुर्मतेः) दुष्टबुद्धि (काष्ठाङ्गारस्य) काष्ठाङ्गार की (इदं शाठ्यं) यह दुष्टता (अतिलोकं) लोक को भी उल्लंघन कर गई अथवा (स्वामिद्रोहात् अबिभ्यतः) अपने स्वामी के द्रोह से नहीं डरनेवाले काष्ठाङ्गार की (एतावत् एव शाठ्यं किं) इतनी दुष्टता क्या अधिक है?

समवर्त्यपि दुर्वृत्तिरासीदणकभूपवत्।

न ह्यसारतया हन्त सोऽपि गृह्णाति दुर्जनान्॥१७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है! (समवर्ती अपि) सबके साथ एक-सा बर्ताव करनेवाला यमराज भी (अणकभूपवत्) दुष्ट राजा के सदृश (दुर्वृत्तिः आसीत्) दुराचारी हो गया। (हि) निश्चय से (सः अपि) वह यमराज भी (असारतया) सार रहित होने से (दुर्जनान् न गृह्णाति) दुर्जनों को ग्रहण नहीं करता।

वारि हंस इव क्षीरं सारं गृह्णाति सज्जनः।

यथाश्रुतं यथारुच्यं शोच्यानां हि कृतिर्मता॥१८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (सज्जनः) सज्जन पुरुष (वारि क्षीरं हंसः इव) जल में से दूध ग्रहण करनेवाले हंस के सदृश (सारं) वस्तु का सार (गृह्णाति) ग्रहण कर लेते हैं। (हि) निश्चय से (शोच्यानां कृतिः) शोचनीय दुष्ट पुरुषों के कार्य (यथारुच्यं यथाश्रुतं मता) या तो मनमाने या दूसरे से सुनकर किए हुए हुआ करते हैं।

हेत्वन्तरकृतोपेक्षे गुणदोषप्रवर्तिते।

स्वातामादानहाने चेत्तद्धि सौजन्यलक्षणम्॥१९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (हेत्वन्तरकृतोपेक्षे) दूसरे कारणों की अपेक्षा से रहित (गुणदोषप्रवर्तिते) केवल गुण और दोष से प्रवर्तित (आदानहाने स्यातां) किसी वस्तु का ग्रहण और त्याग हो तो (हि) निश्चय से (तत् सौजन्यलक्षणं) वह ही सज्जनता का लक्षण है।

युक्तायुक्तवितर्केऽपि तर्करूढविधावति।

पराङ्मुखात्फलं किम्वा वैदुष्याद्वैभवादपि॥२०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (युक्तायुक्तवितर्के अपि) योग्य और अयोग्य की विचारणा होने पर भी (तर्करूढविधौ अपि) तर्कसिद्ध उचित कार्य निश्चित हो जाने पर भी (पराङ्मुखात् वैदुष्यात्) उससे विमुख कार्य हो तो ऐसी विद्वत्ता और (वैभवात् अपि) ऐश्वर्य से (किं वा फलं) क्या लाभ है?

इत्यूहादाधिमापन्ने लोके तेऽपि युयुत्सवः।

सखायः सानुजाः सर्वे पश्चात्तापमुपागमन्॥२१॥

अन्वयार्थ- (इति ऊहात्) इसप्रकार के विचार से (लोके) प्रजा के सारे लोगों को (आधिं आपन्ने) {सति} मानसिक पीड़ा होने पर (युयुत्सवः) युद्ध की इच्छा करनेवाले (सानुजाः) छोटे भाई नन्दाढ्य सहित (ते सर्वे सखायः) वे सब मित्र (अपि) भी जीवन्धरकुमार के मृत्युदण्ड के समाचार से (पश्चात्तापं) पश्चात्ताप (उपागमन्) करने लगे।

स्मरन्तौ मुनिवाक्यस्य सप्राणौ पितरौ स्थितौ।

वितथे मुनिवाक्येऽपि प्रामाण्यं वचने कुतः॥२२॥

अन्वयार्थ- (मुनिवाक्यस्य) मुनि के वाक्यों का (स्मरन्तौ) स्मरण करते हुए (पितरौ) जीवन्धरकुमार के माता-पिता (सुनन्दा और गन्धोत्कट) (सप्राणौ स्थितौ) जीवित रहे।

[अत्र नीतिः] निश्चय से (मुनिवाक्ये अपि) मुनि के वचन भी यदि (वितथे) झूठे हो तो फिर (वचने) वचन में (प्रामाण्यं) प्रमाणपना (कुतः) कैसे हो सकता है?

स्वामिनो न विषादो वा प्रसादो वा तदाऽभवत्।

किं तु पूर्वकृतं कर्म भोक्तव्यमिति मानसम्॥२३॥

अन्वयार्थ- (तदा) उस समय (स्वामिनः) जीवन्धरकुमार को (विषादः वा प्रसादः) खेद अथवा हर्ष (न अभवत्) कुछ भी नहीं हुआ (किन्तु) परन्तु (इति मानसं) उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि [अत्र नीतिः] (पूर्वकृतं कर्म) पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म (भोक्तव्यं) अवश्य भोगना ही पड़ता है।

अथ चन्द्रोदयाह्वान-पर्वतस्थं स्वमन्दिरम्।

यक्षेन्द्रः स्वामिनं नीत्वा कृतवानभिषेचनम्॥२४॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (यक्षेन्द्रः) उस यक्षेन्द्र ने (चन्द्रोदयाह्वान-पर्वतस्थं) चन्द्रोदय नाम के पर्वत पर स्थित (स्वमन्दिरं) अपने आवास स्थान पर (स्वामिनं नीत्वा) जीवन्धरकुमार को ले जाकर (अभिषेचनं कृतवान्) उनका अभिषेक किया।

विपच्च सम्पदे पुण्यात्किमन्यत्तत्र गण्यते।

भानुर्लोकं तपन्कुर्याद्विकासश्रियमम्बुजे॥२५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (पुण्यात्) पुण्योदय से (विपत् च) विपत्ति भी (सम्पदे) सम्पत्ति का कारण (स्यात्) हो जाती है (तत्र) वहाँ पर (अन्यत् किं गण्यते) और की तो गणना ही क्या है? निश्चय से (लोकं तपन् भानुः) संसार को तप्तायमान करता हुआ सूर्य (अम्बुजे) कमलदलों में (विकासश्रियं) विकासरूपी लक्ष्मी को (कुर्यात्) कर देता है।

पयोवार्धिपयः पूरैरभिषिच्यायमब्रवीत्।

पवित्रोऽसि पवित्रं मां श्वानं यत्कृतवानिति॥२६॥

अन्वयार्थ- (अयं) इस यक्षेन्द्र ने (पयोवार्धिपयः पूरैः) क्षीरसागर के जल की धारा से (अभिषिच्य) जीवन्धरकुमार का अभिषेक करके (इति अब्रवीत्) इसप्रकार कहा कि आपने (श्वानं मां) मुझ कुत्ते के जीव को (पवित्रं) पवित्र (कृतवान्) किया (यत्) इसलिए (त्वं पवित्रः असि) आप पवित्र हो।

कामरूपविधौ गाने विषहाने च शक्तिमत्।

यक्षेन्द्रः स्वामिने पश्चान्मन्त्रत्रयमुपादिशत्॥२७॥

अन्वयार्थ- (पश्चात्) इसके अनन्तर (यक्षेन्द्रः) उस यक्षेन्द्र ने (स्वामिने) जीवन्धरकुमार को (कामरूपविधौ) इच्छा के अनुसार रूप बनाने में (गाने) गानविद्या में (च) और (विषहाने) सर्प का विष दूर करने में (शक्तिमत्) समर्थ ऐसे (मन्त्रत्रयं) तीन मन्त्रों का (उपादिशत्) उपदेश दिया अर्थात् तीन मन्त्र सिखाये।

एकहायनमात्रेण धुरि राज्ञां प्रवेक्ष्यसि।

मोक्षस्यैव पवित्र त्वं पश्चादिति च सोऽब्रवीत्॥२८॥

अन्वयार्थ- (पवित्र) हे पवित्र आत्मन! (त्वं) तुम (एकहायन-मात्रेण) एक वर्ष में (राज्ञां धुरि) राजाओं के प्रधान पद पर (प्रवेक्ष्यसि) प्रवेश करोगे (पश्चात्) फिर कुछ समय के अनन्तर (मोक्षस्य एव) मोक्ष के ही अधिकारी होगे (इति) इसप्रकार (सः) उस यक्षेन्द्र ने (अब्रवीत्) कहा।

तथा सम्भाव्यमानस्य स्वामिनस्तेन सन्ततम्।

देशान्तरदिदृक्षाभूद् भाव्यधीनं हि मानसम्॥२९॥

अन्वयार्थ- (तथा) सर्वप्रकार से (तेन) उस यक्षेन्द्र से (सन्ततं) निरन्तर (सम्भाव्यमानस्य) सम्माननीय (स्वामिनः) जीवन्धरकुमार को (देशान्तरदिदृक्षा) अन्य देशों को देखने की इच्छा (अभूत्) हुई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भाव्यधीनं) होनहार के अनुसार ही (मानसं भवति) विचार होते हैं।

मनीषितं हितान्वेषी ज्ञात्वा तस्य मनीषिणः।

अनुमेने स देवोऽपि त्रिकालज्ञा हि निर्जराः॥३०॥

अन्वयार्थ- (हितान्वेषी) हित के चाहनेवाले (सः देवः अपि) उस देव ने भी (मनीषिणः तस्य) बुद्धिमान उन जीवन्धरकुमार की (मनीषितं) इच्छा को (ज्ञात्वा) जानकर (अनुमेने) अनुमति दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (निर्जराः) देव (त्रिकालज्ञाः भवन्ति) द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादासहित तीनों काल के पदार्थों को जाननेवाले होते हैं।

इदंतया पथोदन्तमुपादिश्याथ सम्मतः।

सुदर्शनेन सोऽयासीद्धितकृत्त्वं हि मित्रता॥३१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (इदंतया) इसप्रकार (पथोदन्तं उपादिश्य) जाने के मार्ग के वृत्तान्त को प्राप्त कर (सुदर्शनेन) सुदर्शन यक्ष की (सम्मतः) अनुमति सहित (सः) वे जीवन्धरकुमार वहाँ से (अयासीत्) चले गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (हितकृत्त्वं) हित करना ही (मित्रता भवेत्) मित्रता कहलाती है।

एकाकी व्यहरत्स्वामी निर्भयोऽयमितस्ततः।

न हि स्ववीर्यगुप्तानां भीतिः केसरिणामिव॥३२॥

अन्वयार्थ- (अयं स्वामी) इन जीवन्धरकुमार ने (निर्भयः) भयरहित (इतस्ततः) इधर-उधर (एकाकी) अकेले (व्यहरत्) विहार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्ववीर्यगुप्तानां) अपने पराक्रम से सहित पुरुषों को (केसरिणां इव) सिंहों की तरह (भीतिः न भवेत्) भय नहीं होता है।

एकाकिनोऽपि नोद्वेगो वशिनस्तस्य जातुचित्।

विक्रिया हि विमूढानां सम्पदापल्लवादपि॥३३॥

अन्वयार्थ- (एकाकिनः) अकेले (वशिनः) जितेन्द्रिय (तस्य) उन जीवन्धरकुमार को (जातुचित्) कभी भी (उद्वेगः) उद्वेग (न अभूत्) नहीं हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विमूढानां) अज्ञानी मूर्ख पुरुषों के ही (सम्पदापल्लवात् अपि) सम्पत्ति-विपत्ति के लेश मात्र से (विक्रिया उत्पद्यते) चित्त में विकार उत्पन्न हो जाता है।

अरण्ये क्वचिदालोक्य वनदावेन वारितान्।

दह्यमानानसौ मह्यस्त्रातुमैच्छदेनकपान्॥३४॥

अन्वयार्थ- (क्वचित् अरण्ये) किसी वन में (असौ मह्यः) इन पूज्य जीवन्धरकुमार ने (वनदावेन वारितान्) वन की अग्नि से घिरे हुए और (दह्यमानान्) जलते हुए (अनेकपान्) हाथियों को (आलोक्य) देखकर (त्रातुं ऐच्छत्) उन्हें बचाने की इच्छा की।

धर्मो नाम कृपामूलः सा तु जीवानुकम्पनम्।

अशरण्यशरण्यत्वमतो धार्मिकलक्षणम्॥३५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (कृपामूलः धर्मः नाम) दया है मूल जिसका वह धर्म है। (सा तु जीवानुकम्पनं) और जीवों की रक्षा करना ही दया कहलाती है (अतः) इसलिए (अशरण्यशरण्यत्वं) जिसका कोई रक्षक नहीं है, उसकी रक्षा करना ही (धार्मिकलक्षणं) धर्मात्मा पुरुषों का लक्षण है।

ववृषुर्वारिदास्तत्र तावतैव सगर्जिताः।

सुकृतीनामहो वाञ्छा सफलैव हि जायते॥३६॥

अन्वयार्थ- (तत्र) वहाँ पर (तावता एव) उसी समय (वारिदाः) मेघ (सगर्जिताः) गर्जना करते हुए (ववृषुः) बरसे।

[अत्र नीतिः] (अहो) हर्ष है (हि) निश्चय से (सुकृतीनां) पुण्यवान की (वाञ्छा) इच्छा (सफला एव जायते) सफल ही होती है।

अनेकपानसौ वीक्ष्य रक्षितानतृपत्तराम्।

स्वयं त्वासीत्समः स्वामी स्वस्य बन्धविमोक्षयोः॥३७॥

अन्वयार्थ- (असौ) जीवन्धरकुमार (रक्षितान्) प्राणों से बचे हुए (अनेकपान्) हाथियों को (वीक्ष्य) देखकर (अतृपत्तरां) अत्यन्त सन्तुष्ट हुए, किन्तु (स्वयं) स्वयं (स्वामी) जीवन्धरकुमार (स्वस्य बन्धविमोक्षयोः) अपने बन्धन में पड़ने और उससे बच जाने में (समः) विषाद व हर्षरहित अर्थात् समभावी (आसीत्) थे।

सम्पदापद्मये स्वेष्वां समभावा हि सज्जनाः।

परेष्वां तु प्रसन्नाश्च विपन्नाश्च निसर्गतः॥३८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सज्जनाः) सज्जन पुरुष (स्वेष्वां सम्पदापद्मये) अपनी सम्पत्ति और विपत्ति में (समभावाः) मध्यस्थ भाववाले (भवन्ति) होते हैं (तु) किन्तु (परेष्वां) दूसरों की सम्पत्ति और विपत्ति काल में (निसर्गतः) स्वभाव से ही (प्रसन्नाः च विपन्नाः च भवन्ति) वे सुखी और दुःखी होते हैं।

ततस्तस्माद्विनिर्गत्य तीर्थस्थानान्यपूजयत्।

सदसत्त्वं हि वस्तूनां संसर्गादेव दृश्यते॥३९॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर (तस्मात्) उस वन से (विनिर्गत्य) निकलकर (तीर्थस्थानानि अपूजयत्) उन जीवन्धरकुमार ने तीर्थस्थानों की वन्दना की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वस्तूनां) पदार्थों का (सदसत्त्वं) अच्छा या बुरापन (संसर्गात् एव) उनके साथ सम्बन्ध होने से ही (दृश्यते) देखा जाता है।

अथ सम्भावयामास यक्षी सा धर्मरक्षिणी।

धर्ममूर्तिममुं तत्र सम्यक्कशिपुदानतः॥४०॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (तत्र) वहाँ पर (धर्मरक्षिणी सा यक्षी) धर्म की रक्षा करनेवाली प्रसिद्ध यक्षिणी ने (अमुं धर्ममूर्तिं) इन धर्ममूर्ति जीवन्धरकुमार का (कशिपुदानतः) अन्न वस्त्रादिक के दान से (सम्यक्) भले प्रकार (सम्भावयामास) आदर-सत्कार किया।

दैवतेनापि पूज्यन्ते धार्मिकाः किं पुनः परैः।

अतो धर्मरताः सन्तु शर्मणे स्पृहयालवः॥४१॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (दैवतेन अपि) देवता से भी (धार्मिकाः) धार्मिक पुरुष (पूज्यन्ते) पूजे जाते हैं (परैः पुनः किं) औरों का तो फिर कहना ही क्या है? (अतः) इसलिए (शर्मणे स्पृहयालवः) सुख की वाञ्छा करनेवाले पुरुष (धर्मरताः सन्तु) धर्म में प्रीति करने वाले हों।

ततः पल्लवदेशस्थां चन्द्राभाख्यां क्रमात्पुरीम्।

भेजे शुभनिमित्तेन सनिमित्ता हि भाविनः॥४२॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर (क्रमात्) क्रम से (पल्लवदेशस्थां) पल्लव देश में स्थित (चन्द्राभाख्यां पुरी) चन्द्राभा नाम की नगरी को इन जीवन्धरकुमार ने (शुभनिमित्तेन) शुभ निमित्त से (भेजे) प्राप्त किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भाविनः) भविष्य में होनेवाली बातें (सनिमित्ताः) अवश्य कुछ न कुछ निमित्तवाली {भवति} होती हैं।

राज्ञो धनपतेः पुत्रीमहिदष्टामजीवयत्।

निर्हेतुकान्यरक्षा हि सतां नैसर्गिको गुणः॥४३॥

अन्वयार्थ- वहाँ चन्द्राभा नगरी में उन जीवन्धरकुमार ने (अहिदष्टां) साँप से डसी हुई (राज्ञः धनपतेः) राजा धनपति की (पुत्रीं) पुत्री को (अजीवयत्) जीवनदान दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (निर्हेतुका) बिना प्रयोजन के (अन्यरक्षा) दूसरों की रक्षा करना ही (सतां) सज्जन पुरुषों का (नैसर्गिकः गुणः) स्वाभाविक गुण {अस्ति} है।

लोकपालस्तदालोक्य तज्ज्येष्ठस्तमपूजयत्।

प्राणप्रदायिनामन्या न ह्यस्ति प्रत्युपक्रिया॥४४॥

अन्वयार्थ- (तज्ज्येष्ठः लोकपालः) उस पुत्री के बड़े भाई लोकपाल ने (तत् आलोक्य) यह देखकर (तं अपूजयत्) जीवन्धरकुमार की पूजा की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्राणप्रदायिनां) प्राणों को बचाने वाले पुरुषों का (अन्या प्रत्युपक्रिया न अस्ति) पूजा को छोड़कर दूसरा प्रत्युपकार नहीं है।

पूज्या अपि स्वयं सन्तः सज्जनानां हि पूजकाः।
पूज्यत्वं नाम किं नु स्यात्पूज्यपूजाव्यतिक्रमे॥४५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वयं पूज्याः अपि) स्वयं पूजे जाते हुए भी (सन्तः) सज्जन पुरुष (सज्जनानां) सज्जन पुरुषों के (पूजकाः) पूजक (भवन्ति) होते हैं; क्योंकि (पूज्यपूजाव्यतिक्रमे) पूज्य पुरुषों की पूजा का उल्लंघन करने पर (पूज्यत्वं नाम किं नु स्यात्) उनमें पूज्यपना कैसे रह सकता है? नहीं रह सकता है।

प्राज्ञेषु प्रहृतावश्यमात्मवश्योचिता मता।
प्रहृताऽपि धनुष्काणां कार्मुकस्येव कामदा॥४६॥

अन्वयार्थ- (आत्मवश्या) स्वाधीन (प्रहृता) नम्रता (प्राज्ञेषु) बुद्धिमान पुरुषों में (अवश्यं) अवश्य ही (उचिता) उत्तम (मता) मानी गई है।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्रहृता अपि) नम्रता भी (धनुष्काणां) धनुर्धारियों के (कार्मुकस्य इव) धनुष की नम्रता के सदृश (कामदा) इच्छित कार्यों को सिद्ध करनेवाली होती {भवति} है।

वपुर्वीक्षणमात्रेण निरणाय्यस्य वैभवम्।

वपुर्वक्ति हि माहात्म्यं दौरात्म्यमपि तद्विदाम्॥४७॥

अन्वयार्थ- उस लोकपाल ने (वपुः वीक्षणमात्रेण) शरीर के देखने मात्र से ही (अस्य वैभवं) इन जीवन्धरकुमार के वैभव का (निरणायि) निर्णय किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वपुः) शरीर (तद्विदां) शरीर के लक्षणों को जाननेवाले पुरुषों के सामने (माहात्म्यं दौरात्म्यं वक्ति) सज्जनता और दुर्जनता कह देता है।

अर्धराज्यं च कन्यां च पार्थिवः स्वामिने ददौ।

पात्रतां नीतमात्मानं स्वयं यान्ति हि सम्पदः॥४८॥

अन्वयार्थ- (पार्थिवः) राजा धनपति ने (स्वामिने) जीवन्धरकुमार के लिए (अर्धराज्यं) आधा राज्य (च) और (कन्यां) कन्या (ददौ) दे दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सम्पदः) सम्पत्तियाँ (पात्रतां नीतं) पात्रता को प्राप्त (आत्मानं) आत्मा को (स्वयं यान्ति) स्वयं प्राप्त हो जाती हैं।

तिलोत्तमासुतां पश्चाल्लोकपालसमर्पिताम्।

पर्यणैषीत्पवित्रोऽयं पद्माख्यां तां यवीयसीम्॥४९॥

अन्वयार्थ- (पश्चात्) पश्चात् (अयं पवित्रः) इन पवित्र जीवन्धरकुमार ने (लोकपालसमर्पितां) लोकपाल द्वारा दी हुई (तिलोत्तमासुतां) तिलोत्तमा की पुत्री (यवीयसीं) युवती (तां पद्माख्यां) उस पद्मा नाम की कन्या को (पर्यणैषीत्) ब्याहा।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ
पद्मालम्भो नाम पञ्चमो लम्बः।

षष्ठी लम्बः

अथोपयम्य पद्मां तां रमयन्नप्ययात्ततः।

असक्तो हि सुखं भुङ्क्ते कृतार्थोऽपि जनः कृती॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके पश्चात् (तां पद्मां) उस पद्मा नाम की कन्या से (उपयम्य) विवाह करके (रमयन् अपि) उसके साथ सुख भोगते हुए भी जीवन्धरकुमार (ततः अयात्) वहाँ से चले गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कृतार्थः अपि) भोग सामग्री से कृतार्थ होने पर भी (कृती जनः) धर्मात्मा पुरुष (असक्तः सन्) अनासक्त रहते हुए (सुखं भुङ्क्ते) सुख का भोग करते हैं।

पद्मा तु तद्वियोगेन दुःखसागरसादभूत्।

तत्त्वज्ञानविहीनानां दुःखमेव हि शाश्वतम्॥२॥

अन्वयार्थ- (तु पुनः) फिर (पद्मा) पद्मा (तद्वियोगेन) जीवन्धर कुमार के वियोग से (दुःखसागरसात् अभूत्) दुःख के सागर में डूब गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (तत्त्वज्ञानविहीनानां) तत्त्वज्ञान रहित जीवों को (शाश्वतं) निरन्तर (दुःखं एव स्यात्) दुःख ही रहता है।

लोकपालजनैर्नायं रोद्धुं शेके गवेषिभिः।

प्रतिहन्तुं न हि प्राज्ञैः प्रारब्धं पार्यते परैः॥३॥

अन्वयार्थ- (गवेषिभिः) ढूँढनेवाले (लोकपालजनैः) लोकपाल के नौकर-चाकर (अयं) इन जीवन्धरकुमार को (रोद्धुं) रोकने में (न शेके) समर्थ नहीं हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्राज्ञैः प्रारब्धं) बुद्धिमानों के द्वारा आरम्भ किए कार्य में (परैः प्रतिहन्तु न पार्यते) दूसरे विघ्न डालने में समर्थ नहीं होते।

सत्वरं गत्वरः स्वामी तीर्थस्थानान्यपूजयत्।

पावनानि हि जायन्ते स्थानान्यपि सदाश्रयात्॥४॥

अन्वयार्थ- (सत्वरं) शीघ्र (गत्वरः) चलनेवाले (स्वामी) जीवन्धर कुमार ने (तीर्थस्थानानि) तीर्थस्थानों की (अपूजयत्) पूजा की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्थानानि अपि) स्थान भी (सदाश्रयात्) महात्मा पुरुषों के आश्रय से (पावनानि जायन्ते) पवित्र हो जाते हैं।

सद्भिरध्युषिता धात्री सम्पूज्येति किमद्भुतम्।

कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः॥५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (सद्भिः अध्युषिता) यदि महापुरुषों के निवास से (धात्री) पृथ्वी (सम्पूज्या) पूजनीय हो जाती है तो (इति किं अद्भुतं) इसमें क्या आश्चर्य है? (हि) निश्चय से (कालायसं) काला लोहा भी (रसयोगतः) रस प्रक्रिया से (कल्याणं) स्वर्णरूप (कल्पते) हो जाता है।

सदसत्सङ्गमादेव सदसत्त्वे नृणामपि।

तस्मात्सत्सङ्गताः सन्तु सन्तो दुर्जनदूरगाः॥६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (सत् असत्सङ्गमात् एव) सज्जनों और दुर्जनों के समागम से ही (नृणां) मनुष्यों के (सदसत्त्वे) सज्जनता और दुर्जनता (जायेते) उत्पन्न होती है। (तस्मात्) इसलिए (सन्तः) सज्जन पुरुष (दुर्जनदूरगाः सन्तः) दुर्जनों से दूर रहते हुए (सत्सङ्गताः सन्तु) सज्जनों से ही समागम करनेवाले होवें।

याजंयाजमटन्नेव तीर्थस्थानानि जीवकः।

क्रमेणारण्यमध्यस्थं तापसाश्रममाश्रयत्॥७॥

अन्वयार्थ- (जीवकः) जीवन्धरकुमार (अटन् एव) घूमते-फिरते ही (तीर्थस्थानानि) तीर्थस्थानों की (याजंयाजं) अधिक रीति से पुनः पुनः पूजा कर (क्रमेण) क्रम से (अरण्यमध्यस्थं) वन के मध्य में स्थित (तापसाश्रमं) तपस्वियों के आश्रम में (आश्रयत्) पहुँचे।

असत्तपो विलोक्यासीदनुकम्पी तपस्विनाम्।

निर्व्याजं सानुकम्पा हि सार्वः सर्वेषु जन्तुषु॥८॥

अन्वयार्थ- जीवन्धरकुमार वहाँ पर (तपस्विनां) तपस्वियों के (असत्तपः विलोक्य) झूठे/मिथ्यातप को देखकर (अनुकम्पी आसीत्) दयायुक्त हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सार्वः पुरुषाः) सबका हित करनेवाले पुरुष (सर्वेषु जन्तुषु) सम्पूर्ण प्राणियों पर (निर्व्याजं) निष्कपट (सानुकम्पा भवन्ति) दया करनेवाले होते हैं।

अतत्त्वज्ञेऽपि तत्त्वज्ञैर्भवितव्यं दयालुभिः।

कूपे पिपतिषुर्बालो न हि केनाऽप्युपेक्षते ॥९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (अतत्त्वज्ञे अपि) तत्त्वज्ञानरहित पुरुषों पर भी (तत्त्वज्ञैः) तत्त्वज्ञानियों को (दयालुभिः) दयावान (भवितव्यं) होना चाहिए। (हि) निश्चय से (कूपे पिपतिषुः) कुएँ में गिरनेवाले (बालः) बालक की (केन अपि) कोई भी (न उपेक्षते) उपेक्षा नहीं करता है; हर कोई उसको गिरने से बचाता है।

तानप्यबूबुधतत्त्वं तत्त्वज्ञः सोऽयमादरात्।

भव्यो वा स्यान्न वा श्रोता पारार्थ्यं हि सतां मनः ॥१०॥

अन्वयार्थ- (तत्त्वज्ञः) तत्त्वों के स्वरूप को जाननेवाले (सः अयं) इन जीवन्धरकुमार ने (आदरात्) आदरपूर्वक (तान् अपि) उन तपस्वियों को भी (तत्त्वं अबूबुधत्) सत्यार्थ तत्त्व का बोध कराया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (श्रोता भव्यः वा स्यात् न वा) सुननेवाला भव्य हो या अभव्य, (सतां मनः) सज्जन पुरुषों का मन तो (पारार्थ्यं एव प्रवर्तते) दूसरों के उपकार करने में ही प्रवर्तित होता है।

न हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यस्मिन्प्रवचने सति।

तप्यध्वं किं बुधा यूयं हिंसामात्रफलं तपः ॥११॥

अन्वयार्थ- (बुधाः) हे पण्डितो! (न हिंस्यात् सर्वभूतानि) किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो (इति प्रवचने सति) ऐसे वेद वाक्य के रहने पर (यूयं) तुम लोग (हिंसामात्रफलं) हिंसा ही है फल जिसका ऐसे (तपः) तप को (किं तप्यध्वं) क्यों तपते हो?

जलावगाहने लग्नाञ्जटायां काष्ठगानपि।

नश्यतः पश्यतां जन्तून्पश्यताग्नौ पुनश्च्युतान्॥१२॥

अन्वयार्थ- (जलावगाहने) जल में स्नान करते समय (जटायां लग्नान्) जटाओं में लगे हुए (काष्ठगान् अपि) और लकड़ियों में प्रविष्ट (पुनः) फिर पंचाग्नि तप करते हुए (अग्नौ च्युतान्) अग्नि में गिरे हुए (पश्यतां पुरतः) प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहे (नश्यतः) प्राण- रहित होते हुए (जन्तून्) प्राणियों को (यूयं पश्यत) तुम लोग देखो।

पञ्चाग्निमध्यमस्थानं ततो नैवोचितं तपः।

जन्तुमारणहेतुत्वादाजवञ्जव-कारणम्॥१३॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसलिए (पञ्चाग्निमध्यमस्थानं) पंचाग्नि के मध्य में है स्थिति जिसकी (एतादृशं तपः) ऐसा तप (उचितं न एव) करना उचित नहीं है; क्योंकि यह तप (जन्तुमारणहेतुत्वात्) प्राणियों के मरण का हेतु होने से (आजवञ्जवकारणं) उलटा संसार का ही कारण है, मोक्ष का हेतु नहीं है।

तत्तपो यत्र जन्तूनां सन्तापो नैव जातुचित्।

तच्चारम्भनिर्वृत्तौ स्यान्न ह्यारम्भो विहिंसनः॥१४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः/] (यत्र) जिसमें (जन्तूनां) जीवों को (जातुचित्) कभी भी (सन्तापः) सन्ताप (न एव जायते) उत्पन्न होता ही नहीं (तत् तपः) वह ही सच्चा तप है। (तत् च) और वह तप (आरम्भनिर्वृत्तौ स्यात्) आरम्भ की सर्वथा निर्वृत्ति होने पर

होता है। (हि) निश्चय से (आरम्भः) आरम्भ (विहिंसनः न स्यात्) हिंसारहित नहीं होता।

आरम्भविनिर्वृत्तिश्च निर्ग्रन्थेष्वेव जायते।

न हि कार्यपराचीनैर्मृग्यते भुवि कारणम्॥१५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (आरम्भविनिर्वृत्तिः च) और आरम्भ का त्याग (निर्ग्रन्थेषु एव जायते) निर्ग्रन्थ पदधारी मुनियों में ही होता है। (हि) निश्चय से (भुवि) संसार में (कार्यपराचीनैः) कार्य से विमुख पुरुष (कारणं न मृग्यते) कारण की खोज नहीं करते।

नैर्ग्रन्थं हि तपोऽन्यत्तु संसारस्यैव साधनम्।

मुमुक्षूणां हि कायोऽपि हेयः किमपरं पुनः॥१६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (नैर्ग्रन्थं तपः) बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित मुनिपना ही वास्तविक तप है (अन्यत्) इसके अतिरिक्त तप (तु) तो (संसारस्य एव साधनं) जन्म-मरण-रूप संसार का ही साधन है। (हि) निश्चय से (मुमुक्षूणां) मोक्ष के चाहनेवाले पुरुषों को (कायः अपि) शरीर भी (हेयः) छोड़ने योग्य है (अपरं पुनः किं वक्तव्यं) अन्य का तो फिर कहना ही क्या है?

ग्रन्थानुबन्धी संसारस्तेनैव न परिक्षयी।

रक्तेन दूषितं वस्त्रं नहि रक्तेन शुध्यति॥१७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (ग्रन्थानुबन्धी संसारः) जिस राग-द्वेषादि परिग्रह के कारण संसार है (तेन एव न परिक्षयी भवति) उसी परिग्रह से उसका नाश नहीं हो सकता अर्थात् परिग्रह

से तो संसार की वृद्धि ही होती है, मोक्ष की प्राप्ति कदापि नहीं होती। (हि) निश्चय से (रक्तेन) रुधिर से (दूषितं वस्त्रं) मैला वस्त्र (रक्तेन न शुध्यति) रुधिर से ही शुद्ध नहीं हो सकता।

तत्त्वज्ञानविहीनानां नैर्ग्रन्थमपि निष्फलम्।

न हि स्थाल्यादिभिः साध्यमन्नमन्यैरतण्डुलैः॥१८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (तत्त्वज्ञानविहीनानां) यथार्थ तत्त्वज्ञान से रहित जीवों के (नैर्ग्रन्थं अपि) मुनिधर्म भी (निष्फलं) निष्फल है। (हि) निश्चय से (अतण्डुलैः) चावलादि के बिना (अन्यैः स्थाल्यादिभिः) अन्य बटलोई, जल, अग्नि आदि साधनों द्वारा (अन्नं साध्यं न भवति) अन्नपाकरूप साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

तत्त्वज्ञानं च जीवादितत्त्वयाथात्म्यनिश्चयः।

अन्यथाधीस्तु लोकेऽस्मिन् मिथ्याज्ञानं तु कथ्यते॥१९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (जीवादितत्त्वयाथात्म्यनिश्चयः) जीवादिक सात तत्त्वों के असाधारण स्वरूप का संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित निश्चय करना ही (तत्त्वज्ञानं च भवति) सम्यग्ज्ञान/तत्त्वज्ञान कहलाता है। (तु पुनः) और (अस्मिन् लोके) इस लोक में (अन्यथा धीः) उपर्युक्त तत्त्वों का विपरीत ज्ञान ही (मिथ्याज्ञानं कथ्यते) मिथ्याज्ञान कहलाता है।

आप्तागम पदार्थाख्यतत्त्ववेदनतद्बुची।

वृत्तं च तद्बुच्यस्यात्मन्यस्खलद्वृत्तिधारणम्॥२०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (आप्तागमपदार्थाख्यतत्त्ववेदनतत् रुची) आप्त, आगम और पदार्थ - इन तीनों के यथार्थ ज्ञान को ही सम्यग्ज्ञान कहते हैं और इनमें रुचि अर्थात् श्रद्धा होने को ही सम्यग्दर्शन कहते हैं। (च) और (तद्यस्य आत्मनि) इन दोनों के आत्मा में (अस्खलदृत्तिधारणं) स्थिरवृत्ति धारण करने को (वृत्तं कथ्यते) सम्यक्चारित्र कहते हैं।

इति त्रयी तु मार्गः स्यादपवर्गस्य नापरम्।

बाह्यमन्यत्तपः सर्वं तत्त्रयस्यैव साधनम्॥२१॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (तु) और (इति त्रयी) यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का समुदाय ही (अपवर्गस्य) मोक्ष का (मार्गः) उपाय (स्यात्) है, (अपरं न) इससे भिन्न और दूसरा कोई उपाय नहीं है। (अन्यत् सर्वं) इससे भिन्न और सब (बाह्यं तपः) बाह्य तप (तत् त्रयस्य एव साधनं) इन्हीं तीनों के साधन हैं।

न च बाह्यतपोहीनमाभ्यन्तरतपो भवेत्।

तण्डुलस्यैव विक्लित्तिर्न हि वह्न्यादिकं विना॥२२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (बाह्यतपोहीनं) बाह्य तप के बिना (आभ्यन्तरतपः) अभ्यन्तर तप (न च भवेत्) नहीं हो सकता। (हि) निश्चय से (यथा वह्न्यादिकं विना) जैसे अग्नि के बिना (तण्डुलस्य विक्लित्तिः न) चावलों का पाक नहीं हो सकता।

तत्त्रयं च न मोक्षार्थमाप्ताभासादिगोचरम्।

ध्यातो गरुडबोधेन न हि हन्ति विषं बकः॥२३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (च) और (आप्ताभासादिगोचरं) झूठे आप्त, आगम, पदार्थ और (तत् त्रयं) वे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचरित्र (मोक्षार्थं न) मोक्ष के साधन नहीं हैं। (हि) निश्चय से (गरुडबोधेन ध्यातः बकः) यह गरुड़ है इस बुद्धि से ध्यान किया हुआ बगुला (विषं न हन्ति) विष को दूर नहीं कर सकता।

सर्वदोषविनिर्मुक्तं सर्वज्ञोपज्ञमज्जसा।

तप्यध्वं तत्तपो यूयं किं मुधा तुषखण्डनैः॥२४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (यत् तपः) जो तप (सर्वदोषविनिर्मुक्तं) सम्पूर्ण दोषों से रहित (सर्वज्ञोपज्ञं) सर्वज्ञ का कहा हुआ हो (यूयं) तुम लोग (तत् तपः) उस तप को (अज्जसा तप्यध्वं) भले प्रकार तपो (मुधा तुषखण्डनैः किं) वृथा भूसे को कूटने से क्या लाभ?

रागादिदोषसंयुक्तः प्राणिनां नैव तारकः।

पतन्तः स्वयमन्येषां न हि हस्तावलम्बनम्॥२५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (रागादिदोषसंयुक्तः) रागादि दोषों से सहित देव (प्राणिनां तारकः न एव) प्राणियों को संसार सागर से पार नहीं कर सकता। (हि) निश्चय से (स्वयं पतन्तः) आप ही गिरनेवाला (अन्येषां) दूसरों को (हस्तावलम्बनं न भवति) अपने हाथ का सहारा देनेवाला नहीं हो सकता।

न च क्रीडा विभोस्तस्य बालिशेष्वेव दर्शनात्।

अतृप्तश्च भवेत्तृप्तिं क्रीडया कर्तुमुद्यतः॥२६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः/] (तस्य विभोः) उस ईश्वर के (क्रीडा न च) क्रीडा नहीं हो सकती; क्योंकि क्रीडा तो (बालिशेषु एव दर्शनात्) बालकों में ही देखी जाती है। (च) और (अतृप्तः) जो अतृप्त पुरुष है (क्रीडया तृप्तिं कर्तुं) वह क्रीडा से तृप्ति करने के लिए (उद्यतः भवेत्) उद्यत होता है।

स्वैराचारस्वभावोऽपि नेश्वरस्यैश्यहानितः।

अप्यस्मदादिभिर्द्वेष्यं सर्वोत्कर्षवतः कुतः॥२७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः/] (ऐश्यहानितः) ईश्वरपने की हानि होने से (ईश्वरस्य) ईश्वर के (स्वैराचारस्वभावः अपि न) स्वेच्छाचार स्वभाव भी नहीं है (अपि च) क्योंकि (सर्वोत्कर्षवतः) सर्वोत्कर्षवान उस ईश्वर के (अस्मदादिभिः सह) हम लोगों के साथ (कुतः द्वेष्यं) द्वेषपना कैसे हो सकता है?

अदोषश्चेदकृत्यं च कृतिनः किमु कृत्यतः।

स्वैराचारविधिर्दृष्टो मत्त एव न चोत्तमे॥२८॥

अन्वयार्थ- (चेत्) यदि वह ईश्वर (अदोषः) निर्दोष (च) और (अकृत्यं) कृत्यरहित है तो फिर (कृतिनः) कृतकृत्य उस ईश्वर को (कृत्यतः किमु) जगतरूप कार्य करने से क्या फल?

[अत्र नीतिः/] (स्वैराचारविधिः) स्वेच्छाचार प्रवृत्ति भी (मत्ते एव दृष्टः) उन्मत्त पुरुषों में ही देखी जाती है (उत्तमे न) उत्तम पुरुषों में नहीं।

इति प्रबोधिताः केचिद्भूवुस्तेषु धार्मिकाः।

मृत्स्ना ह्यार्द्रत्वमायाति नोपलं जलसेचनात्॥२९॥

अन्वयार्थ- (इति प्रबोधिताः) इसप्रकार धर्म से प्रबोधित (तेषु) उनमें से (केचित् धार्मिकाः बभूवुः) कुछ लोग धर्मात्मा पुरुष बन गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (जलसेचनात्) जल के सींचने से (मृत्स्ना) अच्छी मिट्टी ही (आर्द्रत्वं आयाति) गीली होती है (उपलं न) पत्थर कभी गीला नहीं होता। ठीक ही है-उपदेश पात्रों में ही फलित होता है, कुपात्रों को उपदेश देने से कुछ फल नहीं होता।

धर्माश्रितान्समालोक्य तापसान्मुमुदे कृती।

प्रीतये हि सतां लोके स्वोदयाच्च परोदयः॥३०॥

अन्वयार्थ- (कृती) विद्वान् जीवन्धरकुमार (धर्माश्रितान् तापसान् समालोक्य) धर्मयुक्त उन तपस्वियों को देखकर (मुमुदे) अत्यन्त आनन्दित हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लोके) इस लोक में (सतां) सज्जन पुरुषों को (सोदयात्) अपने अभ्युदय से (परोदयः) दूसरे का अभ्युदय ही (प्रीतये भवति) आनन्ददायक होता है।

बोधिलाभात्परा पुंसां भूतिः का वा जगत्त्रये।

किम्पाकफलसङ्काशैः किं परैरुदयच्छलैः॥३१॥

अन्वयार्थ- - [अत्र नीतिः] (जगत्त्रये) तीनों लोकों में (पुंसां) पुरुषों को (बोधिलाभात्) सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र की प्राप्ति से (परा) उत्कृष्ट (का वा भूतिः) और कौन-सा ऐश्वर्य है?

(किम्पाकफलसङ्काशैः उदयच्छलैः) विष्वक्ष के फल के समान प्राप्त काल में छलनेवाले (परैः किं) धन सम्पत्ति आदि और इन्द्रिय विषयादिक से क्या फल?

ततस्तस्माद्विनिर्गत्य देशे दक्षिणनामके।

सहस्रकूटमाश्रित्य श्रीविमानं नुनाव सः॥३२॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (सः) उन जीवन्धरकुमार ने (तस्मात्) उस तापस आश्रम से (विनिर्गत्य) निकलकर (दक्षिणनामके देशे) दक्षिण नाम के देश में (सहस्रकूटं) सहस्रकूट नाम के (श्रीविमानं) जिनालय को (आश्रित्य) प्राप्त होकर (नुनाव) स्तुति प्रारम्भ की।

भगवन्दुर्णयध्वान्तैराकीर्णे पथि मे सति।

सज्ज्ञानदीपिका भूयात्संसारवधिवर्धिनी॥३३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (भगवन्) हे भगवान! (दुर्णयध्वान्तैः) दुर्णयरूपी अन्धकार से (आकीर्णे) व्याप्त (मे पथि सति) मेरा मार्ग होने पर (संसारवधिवर्धिनी) मोक्ष को देनेवाला (सज्ज्ञानदीपिका भूयात्) सम्यग्ज्ञानरूपी दीपक आपके प्रसाद से मुझे प्राप्त हो।

जन्मजीर्णाटवीमध्ये जनुषान्धस्य मे सती।

सन्मार्गे भगवन्भक्तिर्भवतान्मुक्तिदायिनी॥३४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (भगवन्) हे भगवान! (जन्मजीर्णाटवी-मध्ये) जन्मरूपी अत्यन्त पुराने वन में (जनुषान्धस्य) जन्म से

अन्धे (मे) मुझे (मुक्तिदायिनी) मुक्ति देनेवाली (सन्मार्गे सती) सन्मार्ग में उत्तम {ते} (भक्तिः भवतात्) आपकी भक्ति होवे।

स्वान्तशान्तिं ममैकान्तामनेकान्तैकनायकः।

शान्तिनाथो जिनः कुर्यात्संसृतिक्लेशशान्तये॥३५॥

अन्वयार्थ- (अनेकान्तैकनायकः) अनेकान्त मत के अद्वितीय नायक (शान्तिनाथः जिनः) शान्तिनाथ जिनेन्द्र (संसृतिक्लेशशान्तये) संसार के दुःखों की शान्ति के लिए (एकान्तां) हमेशा स्थिर रहनेवाली (मम स्वान्तशान्तिं) मेरे हृदय की शान्ति को (कुर्यात्) करें।

इति स्तोत्रेण तच्चासीदुद्धाटितकवाटकम्।

मुक्तिद्वारकवाटस्य भेदिना किं न भिद्यते॥३६॥

अन्वयार्थ- (इति स्तोत्रेण) इसप्रकार स्तुति करने से (तत् उद्धाटितकवाटकं आसीत्) वह जिनमन्दिर खुले हुए किवाड़ों वाला हो गया अर्थात् उस जिनमन्दिर के किवाड़ खुल गए।

[अत्र नीतिः] ठीक ही है! (मुक्तिद्वारकवाटस्य भेदिना) मोक्षरूपी द्वार के किवाड़ों का भेदन करनेवाले स्तवन से (किं न भिद्यते) किसका भेदन नहीं हो सकता?

अन्याशक्यमिदं मान्यो वितन्वन्न विसिष्मिये।

लोकमालोकसात्कुर्वन्न हि विस्मयते रविः॥३७॥

अन्वयार्थ- (मान्यः) माननीय जीवन्धरकुमार ने (अन्याशक्यं इदं वितन्वन्) दूसरों के लिए अशक्य इस कार्य को करते हुए भी उनको (न विसिष्मिये) कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (रविः) सूर्य (लोकं) संसार को (आलोकसात् कुर्वन्) प्रकाशमय करता हुआ स्वयं कुछ भी (न विस्मयते) आश्चर्ययुक्त नहीं होता है।

तावता तं समासाद्य प्रणतः कोऽपि पिप्रिये।

स्वमनीषितनिष्पत्तौ किं न तुष्यन्ति जन्तवः॥३८॥

अन्वयार्थ- (तावता) उसी समय (प्रणतः कः अपि) कोई विनयी पुरुष (तं समासाद्य) जीवन्धरकुमार के पास आकर (पिप्रिये) अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वमनीषितनिष्पत्तौ) अपने इच्छित कार्य की सफलता पर (जन्तवः) प्राणी (किं न तुष्यन्ति) क्या सन्तोषित नहीं होते? {किन्तु तुष्यन्ति एव} किन्तु सन्तुष्ट होते ही हैं।

स्वामी तु तं समालोक्य कस्त्वमार्येति पृष्ठवान्।

प्रभूणां प्राभवं नाम प्रणतेष्वेकरूपता॥३९॥

अन्वयार्थ- (तु) फिर (स्वामी) जीवन्धरकुमार ने (तं समालोक्य) उसको देखकर (आर्य) हे आर्य! (त्वं कः) तुम कौन हो (इति पृष्ठवान्) इसप्रकार पूछा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्रणतेषु एकरूपता) विनयी पुरुषों में दूसरे को अपने समान समझना ही (प्रभूणां) बड़े पुरुषों की (प्राभवं नाम) प्रभुता अर्थात् बड़प्पन है।

पृष्ठः सोऽप्युत्तरं वक्तुमुपादत्त कृतत्वरः।

समीहितेऽपि साहाय्ये प्रयत्नो हि प्रकृष्यते॥४०॥

अन्वयार्थ- (पृष्ठः सः अपि) पूछे हुए उसने भी (कृतत्वरः) शीघ्रतापूर्वक (उत्तरं वक्तुं उपादत्त) उत्तर देना प्रारम्भ किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (समीहिते साहाय्ये) इच्छित कार्य में सहायक (सति अपि) होने पर ही (प्रयत्नः प्रकृष्यते) प्रयत्न बढ़ता है।

इह क्षेमपुरी नाम राजधानी विराजते।

नरपतिस्तु देवान्तो राजा तत्पुरनायकः॥४१॥

अन्वयार्थ- (इह) यहाँ (क्षेमपुरी नाम) क्षेमपुरी नाम की (राजधानी) राजा की प्रधान नगरी (विराजते) सुशोभित है (तु) और (तत् पुरनायकः) उस नगरी का स्वामी (देवान्तः नरपतिः राजा) {अस्ति} नरपतिदेव नाम का राजा है।

तस्य श्रेष्ठिपदप्राप्तः सुभद्रस्तस्य गेहिनी।

नाम्ना तु निर्वृतिः पुत्री क्षेमश्रीरित्यभूतयोः॥४२॥

अन्वयार्थ- (तस्य श्रेष्ठिपदप्राप्तः सुभद्रः) उस राजा के श्रेष्ठिपद पर नियत सुभद्र नाम का सेठ है (तु) और (निर्वृतिः नाम्ना

गेहिनी) {अस्ति} निर्वृति नाम की उसकी स्त्री है (तयोः क्षेमश्री इति नाम्ना पुत्री अभूत्) उन दोनों के क्षेमश्री नाम की पुत्री है।

जन्मलग्ने च दैवज्ञास्तत्पतिं तमजीगणन्।

स्वयंविघटितद्वारो येनायं स्याज्जिनालयः॥४३॥

अन्वयार्थ- (जन्मलग्ने) इस कन्या के जन्म-समय में (येन) जिस पुरुष के निमित्त से (अयं जिनालयः) यह जिनमन्दिर (स्वयंविघटितद्वारः स्यात्) स्वयं खुले हुए द्वारवाला हो जाएगा (तं तत्पतिं) वही उसका पति होगा (इति दैवज्ञाः अजीगणन) ऐसा ज्योतिषियों ने निश्चय किया है।

तत्परीक्षाकृतेऽत्रैव गुणभद्रसमाह्वयः।

प्रेष्योऽहं प्रेरितस्तिष्ठन्भवन्तं दृष्टवानिति॥४४॥

अन्वयार्थ- (तत्परीक्षाकृते) उस पुरुष की परीक्षा करने के लिए (प्रेरितः) भेजा गया (अत्र एव तिष्ठन्) यहाँ पर ठहरे हुए (गुणभद्रसमाह्वयः प्रेष्यः अहं) गुणभद्र नाम मुझ किंकर ने (भवन्तं) आपको (दृष्टवान्) देखा (इति) ऐसा जीवन्धरकुमार को उसने कहा।

इत्युक्त्वा स पुनर्नत्वा गत्वा सत्वरमात्मनः।

स्वामिने स्वामिवृत्तान्तममन्दप्रीतिरब्रवीत्॥४५॥

अन्वयार्थ- (सः) उस गुणभद्र ने (इति उक्त्वा) पूर्वोक्त उत्तर देकर (पुनः नत्वा) फिर से नमस्कार कर (आत्मनः स्वामिने) अपने मालिक के पास (सत्वरं गत्वा) शीघ्र जाकर (अमन्दप्रीतिः)

अत्यन्त प्रीतिपूर्वक (स्वामिवृत्तान्तं अब्रवीत्) जीवन्धरकुमार का वृत्तान्त कहा।

भद्रवार्ता ततः शृण्वन् सुभद्रोऽपि समागतः।

तत्क्षणे च तमद्राक्षीज्जिनपूजाकृतक्षणम्॥४६॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (सुभद्रः अपि) सुभद्र सेठ भी (भद्रवार्ता शृण्वन्) इस उत्तम बात को सुनकर (समागतः) उसी समय वहाँ आए (च) और (तत्क्षणे) उससमय (जिनपूजाकृतक्षणं) जिनेन्द्र पूजा में उत्कंठित ऐसे (तं अद्राक्षीत्) उन जीवन्धरकुमार को देखा।

न गात्रमात्रमद्राक्षीद्विभवं चास्य वैश्यराट्।

सौगन्धिकस्य सौगन्ध्यं शपथात्किं प्रतीयते॥४७॥

अन्वयार्थ- (वैश्यराट्) वैश्यपति सुभद्र ने (अस्य गात्रमात्रं न अद्राक्षीत्) इनके शरीरमात्र को ही नहीं देखा (किन्तु विभवं च अद्राक्षीत्) किन्तु उनके वैभव को भी देख लिया।

[अत्र नीतिः] (किं सौगन्धिकस्य सौगन्ध्यं) क्या सुगन्धित पदार्थ की सुगन्ध (शपथात् प्रतीयते) शपथ खाने से ही मालूम पड़ती है? नहीं, उसकी सुगन्ध तो स्वयं मालूम हो जाती है।

इज्यान्तेऽभूद्यथायोग्यमुपचारः परस्परम्।

सतां हि प्रह्वता शास्ति शालीनामिव पक्वताम्॥४८॥

अन्वयार्थ- (इज्यान्ते) पूजा के बाद (तयोः परस्परं) उन दोनों का परस्पर (यथायोग्यं) यथायोग्य (उपचारः अभूत्) व्यवहार हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (शालीनां इव) धान्यों के सदृश (सतां प्रह्वता) सज्जन पुरुषों की नम्रता (पक्वतां शास्ति) उनकी योग्यता और बड़प्पन को प्रगट करती है।

तद्वेश्म तस्य निर्बन्धादथ बन्धुप्रियो गतः।

सख्यं साप्तपदीनं हि लोके सम्भाव्यते सताम्॥४९॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (बन्धुप्रियः) बन्धुओं के प्यारे जीवन्धरकुमार (तस्य निर्बन्धात्) उस सेठ के आग्रह करने से (तद्वेश्म गतः) उसके घर गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लोके) संसार में (सतां सख्यं) सज्जन पुरुषों की मित्रता (साप्तपदीनं सम्भाव्यते) दूसरों के साथ सात पग चलने मात्र से ही सम्भव हो जाती है।

कन्यायाः करपीडां च तदैन्यादन्वमन्यत।

आश्रयन्तीं श्रियं को वा पादेन भुवि ताडयेत्॥५०॥

अन्वयार्थ- (च) और जीवन्धरकुमार ने (तदैन्यात्) उस सेठ की दीनतापूर्वक प्रार्थना से (कन्यायाः) कन्या के (करपीडां) अपने साथ विवाह को (अन्वमन्यत) स्वीकार किया।

[अत्र नीतिः] (भुवि) संसार में (कः वा) कौन पुरुष (आश्रयन्तीं श्रियं) अपने आश्रय को प्राप्त होनेवाली लक्ष्मी को (पादेन ताडयेत्) चरणों से ठुकराता है, कोई नहीं।

अथ भद्रतरे लग्ने सुभद्रेण समर्पिताम्।

क्षेमश्रियं पवित्रोऽयमुपयेमे यथाविधि॥५१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (अयं पवित्रः) इन पवित्र जीवन्धरकुमार ने (भद्रतरे लग्ने) शुभ समय में (सुभद्रेण समर्पितां) सुभद्र सेठ द्वारा दी हुई (क्षेमश्रियं) क्षेमश्री नाम की कन्या को (यथाविधि उपयेमे) विधिपूर्वक ब्याहा।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ
क्षेमश्रीलम्भो नाम षष्ठो लम्बः।

सप्तमो लम्बः

अथ वध्वा तया साकमनुबोभूय भूयसीम्।
सुखतातिं ततो यातुं विततान मतिं कृती॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) क्षेमश्री के विवाहानन्तर (कृती) पुण्यशाली जीवन्धरकुमार ने (तया वध्वा साकं) उस स्त्री के साथ (भूयसीं सुखतातिं) बहुत सुख परम्परा का (अनुबोभूय) अनुभवन करके (ततः यातुं) वहाँ से जाने के लिए (मतिं विततान) बुद्धि की।

अकथयन्नथ स्वामी गणरात्रात्यये गतः।
न हि मुग्धाः सतां वाक्यं विश्वसन्ति कदाचन॥२॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (स्वामी) जीवन्धरकुमार (गणरात्रात्यये) बहुत रात्रियों (दिनों) के बीत जाने पर (अकथयन्) बिना कहे हुए ही वहाँ से (गतः) चले गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मुग्धाः) भोले मनुष्य (सतां) महापुरुषों के (वाक्यं) वचन को (कदाचन) कभी (न विश्वसन्ति) प्रमाण/सत्य नहीं मानते।

तद्वियोगादभूत्पत्नी दग्धरज्जु-समद्युतिः।
प्राणाः पाणिगृहीतीनां प्राणनाथो हि नापरम्॥३॥

अन्वयार्थ- (पत्नी) जीवन्धरकुमार की क्षेमश्री नाम की स्त्री (तद्वियोगात्) उनके वियोग से (दग्धरज्जुसमद्युतिः) जली हुई रस्सी के समान कान्तिहीन (अभूत्) हो गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पाणिगृहीतीनां) विवाहिता स्त्रियों के (प्राणाः) प्राण (प्राणनाथ) उनके पति ही हैं (अपरं न) और कोई नहीं।

सुभद्रोऽपि पवित्रं तमन्विष्याधिमयोऽभवत्।
बहुयत्नोपलब्धस्य प्रच्यवो हि दुरुत्सहः॥४॥

अन्वयार्थ- (सुभद्रः अपि) सुभद्र नाम के सेठ भी (तं पवित्रं) उन पवित्र जीवन्धरकुमार को (अन्विष्य) ढूँढकर उनके न मिलने पर (आधिमयः अभवत्) मानसिक पीडा से ग्रस्त हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (बहुयत्नोपलब्धस्य) बहुत यत्न से प्राप्त वस्तु का (प्रच्यवः) हाथ से निकल जाना (दुरुत्सहः) अतीव दुःखकर होता है।

स्वामी स्वाभरणत्यागमैच्छद्गच्छन्नतुच्छधीः।
विवेकभूषितानां हि भूषा दोषाय कल्पते॥५॥

अन्वयार्थ- (अतुच्छधीः) श्रेष्ठ बुद्धिवाले जीवन्धरकुमार ने (गच्छन्) जाते समय (स्वाभरणत्यागं ऐच्छत्) अपने आभूषण त्यागने की इच्छा की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विवेकभूषितानां) विवेक से भूषित पुरुषों के (भूषा) भूषण-आभरणादि (दोषाय) दोष के लिए ही (कल्पते) माने गए हैं।

धार्मिकाय तदाकल्पं दातुं च समकल्पयत्।
स्थाने हि बीजवद्दत्तमेकं चापि सहस्रधा॥६॥

अन्वयार्थ- (तदा) उस समय (सः) उन जीवन्धरकुमार ने (धार्मिकाय) धार्मिक पुरुष के लिए (आकल्पं) भूषण {आभरण} (दातुं) देने का (समकल्पयत्) संकल्प किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्थाने) योग्य स्थान में (बीजवत्) बीज के सदृश (दत्तं एकं च अपि) दी हुई एक वस्तु भी (सहस्रधा फलति) हजार गुनी फलती है।

तावता सन्यधात्कोऽपि सन्निधेस्तस्य सन्निधौ।

भागधेयविधेया हि प्राणिनां तु प्रवृत्तयः ॥७॥

अन्वयार्थ- (तावता) इतने में ही (कः अपि) कोई पुरुष (सन्निधेः तस्य) सज्जनों के उपकारक उन जीवन्धरकुमार के (सन्निधौ) पास (सन्यधात्) आया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्राणिनां प्रवृत्तयः) प्राणियों की सारी प्रवृत्तियाँ (भागधेयविधेयाः भवन्ति) उनके भाग्य के अनुकूल हुआ करती हैं।

आगच्छन्तमपृच्छच्च पामरं पार्श्वमात्मनः।

कुतः कुत्र प्रयासि त्वं स्वास्थ्यं चास्ति न वेति च ॥८॥

अन्वयार्थ- जीवन्धरकुमार ने (आत्मनः पार्श्वं) अपने समीप (आगच्छन्तं) आए हुए (पामरं) उस ग्रामीण पुरुष से (अपृच्छत्) पूछा। (त्वं) तुम (कुतः आगतः) कहाँ से आए हो? (च) और (कुत्र प्रयासि) कहाँ जाओगे? (ते स्वास्थ्यं अस्ति न वा) तुम कुशल हो अथवा नहीं? (इति) इस प्रकार पूछा।

प्रीतः प्रत्यब्रवीत्सोऽपि प्रश्रयेण समाश्रितः।

मुखदानं हि मुख्यानां लघूनामभिषेचनम्॥९॥

अन्वयार्थ- (सः अपि) उसने भी (प्रीतः) {सन} प्रसन्न होकर (प्रश्रयेण समाश्रितः) विनयपूर्वक (प्रत्यब्रवीत्) उनके प्रश्न का उत्तर दिया।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (मुख्यानां) बड़े मनुष्यों का (मुखदानं) छोटे आदमियों से प्रीतिपूर्वक बोलना (लघूनां अभिषेचनम्) {भवति} छोटे आदमियों के लिए राज्याभिषेक के समान होता है।

इतस्ततो मया मह्य गम्यते कार्यकाम्यया।

स्वास्थ्यं स्वास्थ्यतमं भूयात्कार्येऽप्यार्यदृशो मम॥१०॥

अन्वयार्थ- (महा) हे पूज्य! (मया) मैं (कार्यकाम्यया) कार्य की इच्छा से (इतस्ततः) इधर-उधर (गम्यते) जा रहा हूँ। (मम कार्ये) मेरे कार्य में (आर्यदृशः) आपके दर्शन से (स्वास्थ्यं) सुख (स्वास्थ्यतमं भूयात्) और भी अधिक सुख होवे।

इत्युक्तेन कुमारेण प्रत्युक्तो वृषलः पुनः।

स्वास्थ्यं नाम न कृष्यादिजायमानं कृषीवल॥११॥

अन्वयार्थ- (इत्युक्तेन कुमारेण) कृषक द्वारा कुमार से इसप्रकार कहे जाने पर कुमार ने (पुनः वृषलः प्रत्युक्तः) फिर उस किसान से कहा-(कृषीवल) हे किसान!

[अत्र नीतिः] (कृष्यादि जायमानं) खेती आदि कर्मों से उत्पन्न सुख (न स्वास्थ्यं नाम) सच्चा सुख नहीं है।

षट्कर्मोपस्थितं स्वास्थ्यं तृष्णाबीजं विनश्वरम्।

पापहेतुः परापेक्षि दुरन्तं दुःखमिश्रितम्॥१२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (षट्कर्मोपस्थितं स्वास्थ्यं) असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य-इन छह कर्मों से उत्पन्न सुख (तृष्णाबीजं) तृष्णा का कारण (विनश्वरं) विनाशशील (पापहेतुः) पाप का कारण (परापेक्षी) दूसरे की अपेक्षा रखनेवाला (दुरन्तं) अन्त में दुःख देनेवाला (दुःखमिश्रितं) और दुःख से मिश्रित है।

आत्मोत्थमात्मना साध्यमव्याबाधमनुत्तरम्।

अनन्तं स्वास्थ्यमानन्दमतृष्णामपवर्गजम्॥१३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (आत्मोत्थं स्वास्थ्यं) अपनी आत्मा से उत्पन्न हुआ सुख (आत्मना साध्यं) आत्मा के द्वारा साध्य, (अव्याबाधं) बाधारहित, (अनुत्तरं) सर्वोत्कृष्ट, (अनन्तं) अनन्त, (आनन्दं) आनन्दमय, (अतृष्णं) तृष्णारहित और (अपवर्गजम्) मोक्ष में होनेवाला है।

तदपि स्वपरज्ञाने याथात्म्यरुचिमात्रके।

परित्यागे च पूर्णे स्यात्परमं पदमात्मनः॥१४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (तत् अपि) और वह (आत्मनः परमं पदं) आत्मा का परम पद अर्थात् मोक्ष (याथात्म्यरुचिमात्रके) यथार्थ रुचिरूप सम्यग्दर्शन (स्वपरज्ञाने) स्व और पर के

भेद-विज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान (च) और (पूर्णे परित्यागे) परिपूर्ण सम्यक्चारित्र के होने पर ही (स्यात्) होता है।

स्वमपि ज्ञानदृक्सौख्यसामर्थ्यादिगुणात्मकम्।

परं पुत्रकलत्रादि विद्धि गात्रमलं परैः॥१५॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] {त्वं} और तू (स्वं) अपनी आत्मा को (ज्ञानदृक्सौख्यसामर्थ्यादिगुणात्मकं) अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यादि गुणात्मक (विद्धि) जान तथा (पुत्रकलत्रादि परं विद्धि) पुत्र, स्त्री आदिक को पर जान। (परैः अलं) और तो क्या (गात्रं अपि परं विद्धि) अपने शरीर को भी पर जान।

एवं भिन्नस्वभावोऽयं देही स्वत्वेन देहकम्।

बुध्यते पुनरज्ञानादतो देहेन बध्यते॥१६॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (एवं भिन्नस्वभावः) इसप्रकार भिन्न स्वभाव को धारण करनेवाला (अयं देही) यह आत्मा (अज्ञानात्) अज्ञानता से (देहकं) शरीर को (स्वत्वेन बुध्यते) निजत्व बुद्धि से जानता है (अतः) इसलिए (पुनः) फिर से (देहेन) देह से (बध्यते) बँधता है।

अज्ञानात्कायहेतुः स्यात्कर्माज्ञानमिहात्मनाम्।

प्रतीके स्यात्प्रबन्धोऽयमनादिः सैव संसृतिः॥१७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (इह) इस संसार में (आत्मनां) जीवों के (अज्ञानात्) अज्ञान से (कायहेतुः) शरीर का कारणभूत (कर्म

स्यात्) कर्म बंधता है (प्रतीके) और फिर शरीर के होने पर (अज्ञानं स्यात्) अज्ञान होता है। (अयं प्रबन्धः) यह अज्ञान और शरीर की परम्परा (अनादिः) अनादिकाल से है (सा एव संसृतिः) और इसी को संसार कहते हैं।

स्वं स्वत्वेन ततः पश्यन्परत्वेन च तत्परम्।

परत्यागे मतिं कुर्याः कार्यैरन्यैः किमस्थिरैः॥१८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (ततः) इसलिए (स्वं स्वत्वेन पश्यन्) आत्मा को आत्मपने से और (तत्परं) आत्मा से भिन्न शरीर को (परत्वेन पश्यन्) भिन्नपने से देखते हुए (परत्यागे) पर वस्तु के त्याग में (मतिं कुर्याः) बुद्धि को कर (च) और (अन्यैः अस्थिरैः कार्यैः किं) दूसरे नष्ट होने वाले कार्यों से क्या लाभ?

परत्यागकृतो ज्ञेयाः सानगारा अगारिणः।

गात्रमात्रधनाः पूर्वे सर्वसावद्यवर्जिताः॥१९॥

अन्वयार्थ- (परत्यागकृतः) परवस्तु के त्याग करनेवाले (सानगाराः) एक अनगार/मुनिराज (अगारिणः) और दूसरे गृहस्थ/श्रावक (ज्ञेयाः) जानने चाहिए। (पूर्वे) प्रथम मुनि (सर्वसावद्यवर्जिताः) सम्पूर्ण पापों से रहित (गात्रमात्रधनाः सन्ति) शरीर मात्र परिग्रह रखनेवाले होते हैं अर्थात् शरीर को छोड़कर उनके दूसरा कोई परिग्रह नहीं होता।

मूलोत्तरादिकान्वोढुं त्वं न शक्तो हि तद्गुणान्।

न हि वारणपर्याणं भर्तुं शक्तो वनायुजः॥२०॥

अन्वयार्थ- (हि) निश्चय से (त्वं) तुम (मूलोत्तरादिकान् तद्गुणान्) मूलगुण और उत्तर-गुणरूप मुनिराज के व्रतों को (वोढुं) धारण करने के लिए (न शक्तः) समर्थ नहीं हो।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वनायुजः) पारसी देश का सवारी का श्वेत घोड़ा भी (वारणपर्याणं) हाथी के पलान के भार को (भर्तुं) धारण करने के लिए (न शक्तः) समर्थ नहीं है।

अतस्त्वमधुना धर्मं गृहाण गृहमेधिनाम्।
न ह्यारोढुमधिश्रेणिं यौगपद्येन पार्यते॥२१॥

अन्वयार्थ- (अतः) इसलिए (अधुना) इससमय (त्वं) तुम (गृहमेधिनां) गृहस्थों के (धर्मं) धर्म को (गृहाण) स्वीकार करो।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (यौगपद्येन) एक ही साथ (अधिश्रेणिं) ऊँची नसैनी पर (आरोढुं) आरोहण करने के लिए (न पार्यते) कोई भी समर्थ नहीं है।

त्रिचतुः पञ्चभिर्युक्ता गुणशिक्षाणुभिर्व्रतैः।
तत्त्वधीरुचिसम्पन्नाः सावद्या गृहमेधिनः॥२२॥

अन्वयार्थ- (त्रिचतुः पञ्चभिः) क्रम से तीन, चार, पाँच (गुणशिक्षाणुभिः व्रतैः) गुणव्रत, शिक्षाव्रत और अणुव्रतों से (युक्ताः) सहित (तत्त्वधीरुचिसम्पन्नाः) सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन सम्पन्न (सावद्याः) कुछ दोषसहित (गृहमेधिनः सन्ति) श्रावकव्रतधारी होते हैं।

अहिंसा सत्यमस्तेयं स्वस्त्रीमितवसुग्रहौ।

मद्यमांसमधुत्यागैस्तेषां मूलगुणाष्टकम्॥२३॥

अन्वयार्थ- (तेषां) उन गृहस्थ पुरुषों के (मद्यमांसमधुत्यागैः सह) मद्यत्याग, मांसत्याग और मधुत्याग सहित (अहिंसा) हिंसा न करना (सत्यं) सच बोलना (अस्तेयं) चोरी न करना (स्वस्त्रीमितवसु ग्रहौ) स्वस्त्री सन्तोष और परिमितवस्तु का संग्रह (इति मूलगुणाष्टकं) ये आठ मूलगुण कहलाते हैं।

भोगोपभोगसंहारोऽनर्थदण्डव्रतान्वितः।

गुणानुबृंहणाद् ज्ञेयो दिग्व्रतेन गुणव्रतम्॥२४॥

अन्वयार्थ- (गुणानुबृंहणात्) अणुव्रतों के वर्धक होने से (दिग्व्रतेन सह) दिग्व्रत के साथ (अनर्थदण्डव्रतान्वितः) अनर्थदण्डव्रतसहित (भोगोपभोगसंहारः) भोगोपभोगपरिमाणव्रत (गुणव्रतं) गुणव्रत (ज्ञेयं) जानना चाहिए।

सप्रोषधोपवासेन व्रतं सामायिकेन च।

देशावकाशिकेन स्याद् वैयावृत्यं तु शिक्षकं॥२५॥

अन्वयार्थ- (वैयावृत्यं) वैयावृत्य (सप्रोषधोपवासेन) प्रोषधोपवास सहित (सामायिकेन) सामायिक (च) और (देशावकाशिकेन) देशावकाशिक व्रत के साथ (शिक्षकं व्रतं स्यात्) ये चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं।

परिच्छिन्नदिशि प्राप्तिं त्यागं निष्फलदुष्कृतेः।

मितान्नस्यादिकत्वं च कृत्यं विद्धि गुणव्रते॥२६॥

अन्वयार्थ- (गुणव्रते) गुणव्रत में (परिच्छिन्नदिशि प्राप्तिं) मर्यादित दिशाओं में जाना, (निष्फलदुष्कृतेः) निष्प्रयोजन पापों का (त्यागं) त्याग (च) और (मितान्नस्त्र्यादिकत्वं) परिमित अन्न, स्त्री आदि भोगोपभोग पदार्थों का सेवन (इति कृत्यं) यह कार्य (विद्धि) जानो।

सञ्चारस्यावधिर्नित्यं सचिह्ना चात्मभावना।

दानाद्यैरुपवासश्च पर्वादिष्वन्यतः कृती॥२७॥

अन्वयार्थ- (अन्यतः) शिक्षाव्रत में (सञ्चारस्य नित्यं अवधिः) गमन की नित्य मर्यादा करना (सचिह्ना आत्मभावना) कुछ चिह्न द्वारा विशिष्ट काल निश्चित कर सब जीवों में समतादि भावों सहित आत्मा का चिन्तन करना और (दानाद्यैः) मुनि दानादि सहित (पर्वादिषु उपवासः) अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्व के दिनों में उपवास करना ही (कृती) कृत्य जानो।

अणुव्रती व्रतैरेतैः क्वचिद्देशे क्वचित्क्षणे।

महाव्रती भवेत्तस्माद् ग्राह्यं धर्ममगारिणाम्॥२८॥

अन्वयार्थ- (अणुव्रती) अणुव्रती श्रावक (एतैः व्रतैः) इन व्रतों से (क्वचिद्देशे) किसी देश (क्वचित्क्षणे) व किसी समय में (महाव्रती भवेत्) उपचार से महाव्रती हो जाता है (तस्मात्) इसलिए (अगारिणां धर्मं ग्राह्यं) गृहस्थधर्म का ग्रहण करना चाहिए।

इत्युक्तः प्रत्यगृह्णाच्च स धर्मं गृहमेधिनाम्।

कः कदा कीदृशो न स्याद्भाग्ये सति पचेलिमे॥२९॥

अन्वयार्थ- (इत्युक्तः सः) इसप्रकार उपदेशित उस किसान ने (गृहमेधिनां धर्मं प्रत्यगृह्णाच्च) गृहस्थ धर्म का स्वीकार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भाग्ये पचेलिमे सति) उत्तम भाग्य के उदय होने पर (कः) कौन (कदा) किस समय (कीदृशः न स्यात्) कैसा नहीं हो जाता है?

अत्यादरान्निजाहार्यममुष्मै दानविद्दौ।

नादाने किन्तु दाने हि सतां तुष्यति मानसम्॥३०॥

अन्वयार्थ- (दानवित्) दान के ज्ञाता उन जीवन्धरकुमार ने (अति आदरात्) अत्यन्त आदर से (निजाहार्यं अमुष्मै ददौ) अपने आभूषण उस किसान को दिए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सतां मानसं) सज्जन पुरुषों का हृदय (दाने तुष्यति) दूसरों को दान देने में ही सन्तोषित होता है (किन्तु आदाने न) न कि दूसरों से दान लेने में।

अनर्घ्याकल्पलाभाच्च धर्मलाभाच्च पिप्रिये।

तादात्विकसुखप्रीतिः संसृतौ हि विशेषतः॥३१॥

अन्वयार्थ- {सः} वह किसान (अनर्घ्याकल्पलाभात्) बहुमूल्य आभूषणों के लाभ से (च) और (धर्मलाभात्) धर्म के लाभ से (पिप्रिये) अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (संसृतौ) संसार में जीवों को (तादात्विकसुखप्रीतिः) तात्कालिक विषय सुखों की प्रीति (विशेषतः भवति) विशेष रीति से होती है।

तं विसृज्य ततः स्वामी तस्य स्मृत्यैव निर्ययौ।
प्रत्यक्षे च परोक्षे च सन्तो हि समवृत्तिकाः॥३२॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (स्वामी) जीवन्धरकुमार (तं विसृज्य) उसको छोड़कर (तस्य स्मृत्वा एव) उसका स्मरण करते हुए ही वहाँ से (निर्ययौ) चल पड़े।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सन्तः) सज्जन पुरुष (प्रत्यक्षे) सामने (च) और (परोक्षे) पीठ पीछे-दोनों अवस्थाओं में (समवृत्तिकाः भवन्ति) एक-सा व्यवहार करनेवाले होते हैं।

अथारण्ये क्वचिच्छ्रान्तो निषण्णो निरुपद्रवः।
शरण्यं सर्वजीवानां पुण्यमेव हि नापरम्॥३३॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (श्रान्तः) थके हुए (क्वचिद् अरण्ये) किसी वन में (निरुपद्रवः) उपद्रवरहित (निषण्णः) होकर बैठ गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पुण्यं एव सर्वजीवानां) पुण्य ही सब जीवों का (शरण्यं) रक्षक है (अपरं न) और कोई नहीं।

तत्र चैकाकिनीं रामां पश्यन्नासीत्पराङ्मुखः।
अपदोषानुषङ्गा हि करुणा कृतिसम्भवा॥३४॥

अन्वयार्थ- (तत्र च) और उस वन में जीवन्धरकुमार ने (एकाकिनीं रामां) अकेली एक स्त्री को (पश्यन्) देखकर (पराङ्मुखः आसीत्) उधर से मुँह फेर लिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कृतिसम्भवा) विद्वानों से उत्पन्न (करुणा) दया (अपदोषानुषङ्गा) दोषों के सम्बन्ध से रहित होती है। जिसमें किसी भी दोष की आशंका न हो ऐसी दया ही विद्वान लोग किया करते हैं।

सा तु जाता वृषस्यन्ती वृषस्कन्धस्य वीक्षणात्।

अप्राप्ते हि रुचिः स्त्रीणां न तु प्राप्ते कदाचन॥३५॥

अन्वयार्थ- (सा तु) और वह (वृषस्कन्धस्य) बैल के समान श्रेष्ठ कन्धे वाले पराक्रमी जीवन्धरकुमार को (वीक्षणात्) देखने से (वृषस्यन्ती जाता) काम से पीड़ित हो गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्त्रीणां रुचिः) स्त्रियों की प्रीति (अप्राप्ते स्यात्) अप्राप्त पुरुष में ही होती है (तु प्राप्ते) किन्तु प्राप्त पुरुष में (कदाचन न) कभी भी नहीं होती।

अश्वस्यन्तीं विभाव्यैनामाकूतज्ञो व्यरज्यत।

अनुरागकूदज्ञानां वशिनां हि विरक्तये॥३६॥

अन्वयार्थ- (आकूतज्ञः) पर के अभिप्राय को जाननेवाले जीवन्धरकुमार (एनां अश्वस्यन्तीं) उसको पर पुरुषाभिलाषिणी (विभाव्य) जानकर (व्यरज्यत) उससे विरक्त हो गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अज्ञानां) मूर्ख पुरुषों को (अनुरागकूत् वस्तु) प्रिय लगनेवाली वस्तु (वशिनां) जितेन्द्रिय पुरुषों को (विरक्तये) विराग के लिए {भवति} होती है।

पृथक्चेदङ्गनिर्माणं चर्ममांसमलादिकम्।

सजुगुप्सेऽत्रतत्पुञ्जे मूढात्मा हन्त मुह्यति॥३७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (अङ्गनिर्माणं पृथक्) {स्यात्} शरीर की रचना का पृथक् पृथक् विश्लेषण करें तो फिर (चर्ममांसमलादिकं) चमड़ा, मांस और मलादिक को (विहाय) छोड़कर (अन्यत्) शरीर में और कुछ भी (अवशिष्टं न भवेत्) शेष न रहे। (हन्त) बड़े खेद की बात है कि तो भी (मूढात्मा) मूर्ख अज्ञानी पुरुष (सजुगुप्से) घृणासहित (तत्पुञ्जे अत्र) चमड़ा और मांसादिक के ढेररूप इस शरीर में (मुह्यति) मोहित होते हैं।

दुर्गन्धमलमांसादिव्यतिरिक्तं विवेचने।

नेक्षते जातु देहेऽस्मिन्मोहे को हेतुरात्मनाम्॥३८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (विवेचने सति) भली-भाँति विचार करने पर (अस्मिन् देहे) इस शरीर में (दुर्गन्धमलमांसादिव्यतिरिक्तं) दुर्गन्ध-मल मांसादिक के सिवाय (जातु न ईक्षते) और कुछ भी दिखाई नहीं देता। (तथापि) तो भी (आत्मनां) जीवों का (अस्मिन् मोहे) देह पर मोह होने में (कः हेतु) क्या हेतु है?

अज्ञानमशुचेर्बीजं ज्ञात्वा व्यूहं च देहकम्।

आत्मात्र सस्पृहो वक्ति कर्माधीनत्वमात्मनः॥३९॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (अज्ञानं) अज्ञानस्वरूप (अशुचेः बीजं) अपवित्र मल-मूत्रादिक का कारण (व्यूहं) तर्कणारहित विचारशून्य (देहकं) शरीर को (ज्ञात्वा अपि) जानकर भी (अत्र सस्पृहः

आत्मा) इसमें चाह करनेवाला आत्मा (आत्मनः कर्माधीनत्वं वक्ति) अपनी कर्माधीनता को ही बताता है।

मदीयं मांसलं मांसममीमांसेयमङ्गना।

पश्यन्ती पारवश्यान्धा ततो याम्यात्मनेऽथवा ॥४०॥

अन्वयार्थ- (अमीमांसा) विचारशून्य (इयं अङ्गना) यह स्त्री (मांसलं मदीयं मांसं) हृष्ट-पुष्ट मेरे शरीर को (पश्यन्ती) देखकर (पारवश्यान्धा) काम की पराधीनता से अन्ध {जाता} हो गई है। (ततः) इसके हित के लिए (अथवा) अथवा (आत्मने) अपनी आत्मा के हित के लिए (यामि) मैं यहाँ से जाता हूँ।

अङ्गारसदृशी नारी नवनीतसमा नराः।

तत्तत्सान्निध्यमात्रेण द्रवेत्पुंसां हि मानसम् ॥४१॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (नारी) स्त्री (अङ्गारसदृशी) जलते हुए कोयले के समान है और (नराः) पुरुष (नवनीतसमाः) मक्खन के समान हैं (तत्) इसलिए (हि) निश्चय से (तत्सान्निध्यमात्रेण) स्त्रियों की समीपता मात्र से ही (पुंसां) पुरुषों का (मानसं) हृदय (द्रवेत्) पिघल जाता है।

संलापवासहासादि तद्वर्ज्यं पापभीरुणा।

बालया वृद्धया मात्रा दुहित्रा वा व्रतस्थया ॥४२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (तस्मात्) इसलिए (पापभीरुणा) पाप से डरनेवाले पुरुषों को (बालया) बाल कन्या से (वृद्धया) वृद्ध स्त्री से (मात्रा) माता से (वा) अथवा (दुहित्रा) पुत्री से और

(व्रतस्थया) व्रत पालन करनेवाली श्राविका से (संलापवासहासादि) भी बोलना, साथ में रहना और हँसी आदि करना (वर्ज्य) छोड़ देना चाहिए।

इति वैराग्यतर्केण ततो यातुं प्रचक्रमे।

भेतव्यं खलु भेतव्यं प्राज्ञैरज्ञोचितात्परम्॥४३॥

अन्वयार्थ- (इति वैराग्यतर्केण) इसप्रकार वैराग्योत्पादक विचार से जीवन्धरकुमार (ततः) वहाँ से (यातुं) जाने के लिए (प्रचक्रमे) तैयार हुए।

[अत्र नीतिः] (खलु) निश्चय से (प्राज्ञैः) बुद्धिमान पुरुषों को (अज्ञोचितात्) अज्ञानी पुरुषों के अयोग्य कार्यों से (परं) अत्यन्त (भेतव्यं भेतव्यं) भयभीत रहना चाहिए।

विरक्तमेव रक्ता सा निश्चिकाय विपश्चितम्।

निसर्गादिङ्गितज्ञानमङ्गनासु हि जायते॥४४॥

अन्वयार्थ- (रक्ता सा) उस आसक्त स्त्री ने (विपश्चितं) विद्वान जीवन्धरकुमार के व्यवहार को देख 'ये मुझसे (विरक्तं एव) अत्यन्त विरक्त हैं'-ऐसा (निश्चिकाय) निश्चय किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अङ्गनासु) स्त्रियों में (इङ्गित ज्ञानं) शरीर की चेष्टा से मन के भावों को जान लेने का ज्ञान (निसर्गात् एव जायते) स्वभाव से ही होता है।

तस्य स्वान्तं वशीकर्तुं स्वोदन्तमियमूचिषी।

प्रतारणविधौ स्त्रीणां बहुद्वारा हि दुर्मतिः॥४५॥

अन्वयार्थ- (इयं) इस स्त्री ने (तस्य) उनके (स्वान्तं) हृदय को (वशीकर्तुं) वश में करने के लिए (स्वोदन्तं) अपना वृत्तान्त (ऊचिषी) कहा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्त्रीणां) स्त्रियों की (दुर्मतिः) खोटी बुद्धि दूसरों को (प्रतारणविधौ) ठगने में (बहुद्वारा भवति) अनेक प्रकार से चलती है।

विद्धि दीनां महाभाग मां विद्याधरकन्यकाम्।

स्यालेनात्र बलान्नीतां त्यक्तामात्मप्रियाभयात्॥४६॥

अन्वयार्थ- (महाभाग) हे महाभाग! (मां) मुझे (स्वालेन) मेरे भाई के साले से (बलात्) जबरदस्ती से (नीतां) लाई गई और (आत्मप्रिया भयात्) अपनी स्त्री के भय से (अत्र) यहाँ इस वन में (त्यक्तां) छोड़ी हुई (मां) मुझ (दीनां) गरीब (अनाथ) को (विद्याधरकन्यकां) विद्याधर की कन्या (विद्धि) समझो।

अनङ्गतिलकां नाम्ना पुंसां तिलक रक्ष माम्।

अशरण्यशरण्यत्वं वरेण्ये वर्ततामिति॥४७॥

अन्वयार्थ- (पुंसां तिलक) हे पुरुषों के भूषण! (नाम्ना अनङ्गतिलकां मां) अनंगतिलका नाम की मुझ विद्याधर कन्या की (रक्ष) रक्षा करो। (अशरण्यशरण्यत्वं) जिनको कोई शरण नहीं है उनका शरणपना (वरेण्ये) पुरुषों में श्रेष्ठ आप में (वर्ततां) है। (इति) ऐसा उसने कहा।

तावदार्तस्वरः कोऽपि शुश्रुवे श्रुतशालिना।

क्व प्रयाता प्रिये प्राणा मम यान्तीति दुःसहः॥४८॥

अन्वयार्थ- (तावत्) इतने में ही (श्रुतशालिना) शास्त्र में प्रवीण उन जीवन्धरकुमार ने (प्रिये) हे प्यारी! (क्व) कहाँ (प्रयाता) चली गई हो (मम) मेरे (प्राणाः) प्राण (यान्ति) निकल रहे हैं। (इति) इसप्रकार (कः अपि) किसी पुरुष का (दुःसहः) दुःसह (आर्तस्वरः) दुःखद स्वर (शुश्रुवे) सुना।

योषाप्येषा मिषेणास्मान्निमेषादिव निर्ययौ।

मायामयी हि नारीणां मनोवृत्तिर्निसर्गतः॥४९॥

अन्वयार्थ- (एषा) यह (योषा) स्त्री (अपि) भी (मिषेण) किसी बहाने से (अस्मात्) इन जीवन्धरकुमार के पास से (निमेषात् इव) क्षणमात्र में ही (निर्ययौ) चली गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (नारीणां) स्त्रियों की (मनोवृत्तिः) चित्तवृत्ति (निसर्गतः) स्वभाव से ही (मायामयी) छलकपट करनेवाली होती है।

आर्तस्वरकरोऽप्याह दैन्यं मान्यस्य वीक्षणात्।

शोच्याः कथं न रागान्धा ये तु वाच्यान् बिभ्यति॥५०॥

अन्वयार्थ- (आर्तस्वरकरः अपि) दुःखित शब्द को करनेवाले ने भी (मान्यस्य) माननीय जीवन्धरकुमार के (वीक्षणात्) देखने से (दैन्यं) दीनतापूर्वक (आह) कहा।

[अत्र नीतिः] (ये तु) जो पुरुष (वाच्यात्) अपवाद से वा निन्दा से (न) नहीं (बिभ्यति) डरते हैं (ते) वे (रागान्धाः) राग से अन्धे पुरुष

(कथं) कैसे (न शोच्याः) शोचनीय दशा को प्राप्त नहीं होते हैं? अर्थात् उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय होती है, दयनीय होती है।

उदन्योपद्रुतामत्र मान्य! भार्या पतिव्रताम्।

पानीयार्थमवस्थाप्य नाद्राक्षं प्रस्थितागतः॥५१॥

अन्वयार्थ- (मान्य) हे माननीय! (अहं) मैं (उदन्योपद्रुतां) प्यास से व्याकुल (पतिव्रतां भार्या) अपनी पतिव्रता स्त्री को (अत्र) यहाँ पर (अवस्थाप्य) बिठलाकर (पानीयार्थं) पानी लाने के लिए (प्रस्थितागतः) गया था, वहाँ से लौटने पर (न अद्राक्षं) मैंने उसे वहाँ नहीं देखा, अर्थात् उसे वहाँ नहीं पाया।

विद्याप्यविद्यमानैव मम विद्याधरोचिता।

मर्त्योत्तम भवानत्र कर्तव्यं कथयेदिति॥५२॥

अन्वयार्थ- (मर्त्योत्तम) हे मनुष्यों में श्रेष्ठ! (मम) मेरी (विद्याधरोचिता) विद्याधरों के योग्य (विद्या अपि) विद्या भी (अविद्यमाना इव) अविद्यमान के सदृश हो गई अर्थात् स्त्री के वियोग से मैं अपनी सब विद्याएँ भूल गया हूँ। (भवान्) आप (अत्र) इस विषय में (कर्तव्यं) करने योग्य उपाय को (कथयेत्) कहिये। (इति) ऐसा विद्याधर ने कहा।

पुरन्ध्रीष्वति सन्धानादभैषीदभयङ्करः।

वचनीयाद्धि भीरुत्वं महतां महनीयता॥५३॥

अन्वयार्थ- (अभयङ्करः) निर्भय (पुरन्ध्रीषु) स्त्रियों में विद्यमान (अतिसन्धानात्) ठग विद्या से (अभैषीत्) डर गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वचनीयात् भीरुत्वं) निन्द्य, बुरी बातों से भयपना (महतां) बड़े पुरुषों का (महनीयता) बड़प्पन है।

नभश्चरं पुनश्चैनं स विपश्चिदबोधयत्।

अपश्चिमफलं वक्तुं निश्चितं हि हितार्थिनः॥५४॥

अन्वयार्थ- (पुनः) फिर (सः विपश्चित्) उन पण्डित जीवन्धरकुमार ने (एनं नभश्चरं) इस विद्याधर को (अबोधयत्) समझाया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (हितार्थिनः) दूसरों का हित करनेवाले पुरुष (निश्चितं) निश्चितरूप से (अपश्चिमफलं) सर्वोत्तम फल देनेवाली बात (वक्तुं) कहने की (इच्छति) इच्छा करते हैं।

भवदत्त! मुधार्तोऽसि विद्यावित्तो भवन्नपि।

न विद्यते हि विद्यायामगम्यं रम्यवस्तुषु॥५५॥

अन्वयार्थ- (भवदत्त) हे भवदत्त! (त्वं) तू (विद्यावित्तः) विद्यारूपी धनवाला (भवन् अपि) होनेपर भी क्यों (मुधा) व्यर्थ (आर्तः असि) दुःखी हो रहा है?

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विद्यायां) {सत्यां} विद्या के होने पर (रम्य वस्तुषु) सुन्दर पदार्थों में (अगम्यं) दुष्प्राप्य (न विद्यते) कुछ भी नहीं है।

नभश्चर न कश्चित्स्याद्विपश्चिदविपश्चितोः।

विनिश्चलशुचोर्भेदो यतश्चन कुतश्चन॥५६॥

अन्वयार्थ- (नभश्चर) हे विद्याधर! [अत्र नीतिः] (यतश्चन कुतश्चन) इधर-उधर से {विपत्तौ सत्यां} विपत्ति आ जाने पर (विनिश्चलशुचोः) निश्चल रहना और शोक करना बस यही क्रमशः विद्वान और मूर्ख की पहचान है। इसके सिवाय (विपश्चिदविपश्चितोः) विद्वान और मूर्ख में (कश्चित् भेदः न) और कुछ भी भेद नहीं है।

परं सहस्रधीभाजि स्त्रीवर्गे का पतिव्रता।

पातिव्रत्यं हि नारीणां गत्यभावे तु कुत्रचित्॥५७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (परं सहस्रधीभाजि स्त्रीवर्गे) हजारों प्रकार की बुद्धि को धारण करनेवाले स्त्रीसमूह में (का पतिव्रता) पातिव्रत्य धर्म कहाँ से हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। (हि) निश्चय से (कुत्रचित्) कहीं पर (गत्यभावे तु) उपाय के अभाव से (नारीणां पातिव्रत्यं भवेत्) स्त्रियों का पातिव्रत्य धर्म सुरक्षित रह सकता है।

मदमात्सर्यमायेर्ष्यारागरोषादिभूषिताः।

असत्याशुद्धिकौटिल्यशाठ्यमौढ्यधनाः स्त्रियः॥५८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (स्त्रियः) स्त्रियाँ (मदमात्सर्यमायेर्ष्यारागरोषादिभूषिताः) घमण्ड, डाह, छल-कपट, प्रीति, विरोध और क्रोध से भूषित और (असत्याशुद्धिकौटिल्यशाठ्यमौढ्यधनाः) झूठ, अपवित्रता, कुटिलता, शठता और मूर्खता हैं धन जिसके ऐसी होती हैं।

निर्घृणे निद्रये क्रूरे निर्व्यवस्थे निरङ्कुशे।

पापे पापनिमित्ते च कलत्रे ते कुतः स्पृहा॥५९॥

अन्वयार्थ- (निर्घृणे) घृणासहित (निर्द्रये) दयाहीन (क्रूरे) दुष्ट (निर्व्यवस्थे) अव्यवस्थित (निरङ्कुशे) स्वच्छंद (पापे) पापरूप (च) और (पापनिमित्ते) पाप की कारणभूत (कलत्रे) स्त्री में (ते स्पृहा) तेरी इच्छा (कुतः भवेत्) कैसे होती है?

इत्युपादिष्टमेतस्य हृदये नासजत्तराम्।

जठरे सारमेयस्य सर्पिषो न हि सज्जनम्॥६०॥

अन्वयार्थ- (इति उपादिष्टं) इसप्रकार यह उपदेश (एतस्य हृदये) इस विद्याधर के मन में (न असजत्तरां) नहीं लगा अर्थात् उनके हृदय में जीवन्धरकुमार के उपदेश ने कुछ भी असर नहीं किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सारमेयस्य जठरे) कुत्ते के पेट में (सर्पिषः सज्जनं न भवति) घी का ठहरना नहीं होता है।

स्वामी तु तस्य मौढ्येन सुतरामन्वकम्पत।

उत्पथस्थे प्रबुद्धानामनुकम्पा हि युज्यते॥६१॥

अन्वयार्थ- (तु) किन्तु (स्वामी) जीवन्धरकुमार (तस्य) उसकी (मौढ्येन) मूर्खता पर (सुतरां) अत्यन्त (अन्वकम्पत) दयायुक्त हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (उत्पथस्थे) खोटे मार्ग में चलनेवाले मनुष्यों पर (प्रबुद्धानां) बुद्धिमान पुरुषों का (अनुकम्पा) दया करना ही (युज्यते) उचित है।

ततस्तस्माद्विनिर्गत्य कमप्याराममाश्रयत्।

अदृष्टपूर्वदृष्टौ हि प्रायेणोत्कण्ठते मनः॥६२॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (तस्मात्) उस स्थान से (विनिर्गत्य) निकलकर जीवन्धरकुमार ने (कं अपि) किसी (आरामं) बगीचे का (आश्रयत्) आश्रय लिया अर्थात् वे किसी बगीचे में पहुंचे।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अदृष्टपूर्वदृष्टौ) पहले नहीं देखी हुई वस्तु के देखने में (प्रायेण) प्रायः (मनः उत्कण्ठते) मन उत्कण्ठित हुआ करता है।

तत्राम्रफलमाक्रष्टुं धनुषा कोऽपि नाशकत्।

अशक्तैः कर्तुमारब्धं सुकरं किं न दुष्करम्॥६३॥

अन्वयार्थ- (तत्र) उस बगीचे में (कः अपि) उस देश के राजकुमारों में से कोई भी राजकुमार (धनुषा) धनुष से (आम्रफलं) किसी आम्रफल को (आक्रष्टुं) तोड़कर वापस लाने में (न अशकत्) समर्थ नहीं हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अशक्तैः) असमर्थ पुरुषों द्वारा (कर्तुं आरब्धं) करने के लिए आरम्भ किया हुआ (सुकरं) सरल काम भी (किं दुष्करं न) क्या दुःसाध्य नहीं होता है? अपितु दुःसाध्य होता ही है।

स्वामी तु तत्फलं विद्धिमादत्त सशिलीमुखम्।

तत्तन्मात्रकृतोत्साहैः साध्यते हि समीहितम्॥६४॥

अन्वयार्थ- (तु) परन्तु (स्वामी) जीवन्धरकुमार ने (विद्धं तत्फलं) बाण से छेदित उस फल को (सशिलीमुखं) बाण सहित (आदत्त) ग्रहण कर लिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (तत्तन्मात्रकृतोत्साहैः) प्रत्येक कार्य में उत्साह व निपुणता युक्त पुरुष ही (समीहितं) इच्छित कार्य को (साध्यते) सफल करते हैं।

अपराद्धपृषत्कोऽपि दृष्ट्वा व्यस्मेष्ट तत्कृतिम्।

अपदानमशक्तानामद्भुताय हि जायते ॥६५॥

अन्वयार्थ- (अपराद्धपृषत्कः अपि) लक्ष्य से च्युत है बाण जिसका ऐसा वह राजकुमार (तत्कृतिं दृष्ट्वा) जीवन्धरकुमार की बाण निपुणता को देखकर (व्यस्मेष्ट) अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अपदानं) स्वयं जिसको न कर सके ऐसा उत्तम कार्य दूसरे के द्वारा कर दिया जाना (अशक्तानां) अशक्त पुरुषों को (अद्भुताय) आश्चर्य के लिए (जायते) होता है।

स्वामिनोऽयं स्ववृत्तान्तं सकातर्यं समभ्यधात्।

सन्निधाने समर्थानां वराको हि परो जनः ॥६६॥

अन्वयार्थ- (अयं) जिसका बाण खाली गया, उस राजकुमार ने (स्वामिनः) जीवन्धरकुमार से (सकातर्यं) दीनतापूर्वक डरते हुए (स्ववृत्तान्तं) अपना वृत्तान्त (समभ्यधात्) कहा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (समर्थानां) समर्थ पुरुषों के (सन्निधाने) समक्ष (परः जनः) असमर्थ मनुष्य (वराकः भवति) तुच्छ/दीन हो जाता है।

कर्तव्यं वा न वा प्रोक्तं मया कार्मुककोविद।
कर्णकट्वपि मद्वाक्यमाकर्णयितुमर्हसि॥६७॥

अन्वयार्थ- (कार्मुककोविद) हे धनुर्विद्या में प्रवीण जीवन्धरकुमार! (मया प्रोक्तं) मुझसे कहा हुआ (कर्तव्यं) करने योग्य है (वा न वा) अथवा नहीं यह आप जाने (किन्तु कर्णकटु अपि) किन्तु कानों को अप्रिय भी (मद्वाक्यं) मेरे वचन (आकर्णयितुं अर्हसि) आप अवश्य सुनें।

एतन्मध्यमदेशस्था हेमाभा स्यादियं पुरी।
क्षत्रियो दृढमित्रः स्यात्तत्प्रिया नलिनाह्वया॥६८॥

अन्वयार्थ- (एतन्मध्यमदेशस्था) इस मध्यदेश में स्थित (इयं) यह (हेमाभा) हेमाभा नाम की नगरी (स्यात्) है। उसका राजा (दृढमित्रः क्षत्रियः) दृढमित्र नाम का क्षत्रिय है (तत्प्रिया नलिनाह्वया स्यात्) और उसकी स्त्री का नाम नलिना है।

सुमित्राद्यास्तयोः पुत्रास्तेष्वप्यन्यतमोऽस्म्यहम्।
वयसैव वयं पक्वा विश्वेऽपि न तु विद्यया॥६९॥

अन्वयार्थ- और (तयोः) उन दोनों के (सुमित्राद्याः पुत्राः) {अभवन्} सुमित्र आदि कई पुत्र हैं। (तेषु) उनमें से (अहं) मैं भी (अन्यतमः अस्मि) एक हूँ (वयं विश्वेऽपि) हम सब (वयसा एव

पक्वाः) उम्र से ही बड़े हो गए हैं; (तु) परन्तु (न विद्यया) विद्या से बड़े नहीं हैं।

तातपादोऽयमस्माकं चापविद्याविशारदम्।
विचिनोति न चेद्दोष एषोऽप्यालोक्यतामिति ॥७०॥

अन्वयार्थ- (अस्माकं) हमारे (अयं तातपादः) यह पूज्य पिता (चापविद्याविशारदं) धनुर्विद्या में पण्डित पुरुष को (विचिनोति) खोज रहे हैं। (चेत्) यदि (दोषः न) आप कुछ दोष न समझें तो (एषः अपि) इनको भी (आलोक्यतां) देखें अर्थात् उनसे मिलें (इति) ऐसा कुमार ने कहा।

तद्व्याहारे विसंवादो विदुषोऽप्यस्य नाजनि।
विधिर्घटयतीष्टार्थः स्वयमेव हि देहिनः ॥७१॥

अन्वयार्थ- (तद्व्याहारे) उस कुमार के कथन में (अस्य विदुषः अपि) इन विद्वान् जीवन्धरकुमार को भी (विसंवादः) कुछ भी विरोध (न अजनि) नहीं लगा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विधि) कर्म (देहिनः) देहधारी मनुष्यों को (स्वयं एव) अपने आप ही (इष्टार्थः) इष्ट पदार्थों से (घटयति) सम्बन्ध करा देता है।

पार्थिवं च ततः पश्यंस्तद्वश्योऽभूच्च सम्मतेः।
अनुसारप्रियो न स्यात्को वा लोके सचेतनः ॥७२॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर जीवन्धरकुमार (पार्थिवं पश्यन्) राजा को देखकर (सम्मतेः) उनके द्वारा आदर सत्कार मिलने से (तद्वश्यः) उनके वशीभूत (अभूत्) हो गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लोके) लोक में (कः वा) कौन (सचेतनः) प्राणी (अनुसारप्रियः न स्यात्) अपने अनुकूल मनुष्य से प्रेम करनेवाला नहीं होता है?

महीक्षिता क्षणान्तस्य माहात्म्यमपि वीक्षितम्।

वपुर्वक्ति हि सुव्यक्तमनुभावमनक्षरम्॥७३॥

अन्वयार्थ- (महीक्षिता अपि) राजा ने भी (क्षणात्) क्षणमात्र में (तस्य माहात्म्यं) उनका माहात्म्य अर्थात् बड़प्पन (वीक्षितं) देख लिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वपुः) शरीर (अनुभावं) मनुष्य के प्रभाव को (अनक्षरं) बिना शब्द कहे हुए ही (सुव्यक्तं) स्पष्टरूप से (वक्ति) व्यक्त कर देता है।

सुतविद्यार्थमत्यर्थं पार्थिवस्तमयाचत।

आराधनैकसम्पाद्या विद्या न ह्यन्यसाधना॥७४॥

अन्वयार्थ- (पार्थिवः) राजा ने (सुतविद्यार्थं) अपने पुत्रों को विद्या सिखाने के लिए (तं) उनसे (अत्यर्थं) अत्यन्त (अयाचत) प्रार्थना की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विद्या) विद्या (आराधनैक सम्पाद्या) गुरु की आराधना/सेवा-शुश्रूषा से ही प्राप्त होती है (अन्यसाधना न) और दूसरे साधनों से नहीं।

अभ्यर्थनबलात्तस्य कुमारोऽप्यभ्युपागमत्।

स्वयं देया सती विद्या प्रार्थनायां तु किं पुनः॥७५॥

अन्वयार्थ- (तस्य अभ्यर्थनबलात्) उस राजा के बार-बार प्रार्थना करने से (कुमारः अपि) जीवन्धरकुमार ने भी (अभ्युपागमत्) उन राजकुमारों को विद्या पढ़ाना स्वीकार कर लिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सती विद्या) समीचीन/निर्दोष विद्या जब (स्वयं देया) अपने आप ही देने योग्य है, (प्रार्थनायां तु) तब प्रार्थना करने पर तो (पुनः) फिर (किं वक्तव्यं) कहना ही क्या है।

पवित्रोऽपि सुतान्विद्यां स प्रापयदवज्जितम्।

कृतार्थानां हि पारार्थ्यमैहिकार्थपराङ्मुखम्॥७६॥

अन्वयार्थ- (सः पवित्रः अपि) उन पवित्र जीवन्धरकुमार ने भी (सुतान्) उन राजा के कुमारों को (अवज्जितं विद्यां प्रापयत्) सच्चे हृदय से विद्या सिखाई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कृतार्थानां) कृतकृत्य पुण्यवान् पुरुषों का (पारार्थ्यं) परोपकार करना (ऐहिकार्थपराङ्मुखं) इस लोक सम्बन्धी प्रयोजन से रहित होता है।

प्रश्रयेण बभूवुस्ते प्रत्यक्षाचार्यरूपकाः।

विनयः खलु विद्यानां दोग्ध्री सुरभिरञ्जसा॥७७॥

अन्वयार्थ- (ते) वे राजकुमार (प्रश्रयेण) जीवन्धरकुमार गुरु की विनय करने से (प्रत्यक्षाचार्यरूपकाः बभूवुः) धनुर्विद्या में साक्षात् जीवन्धरकुमार के समान हो गए।

[अत्र नीतिः] (खलु) निश्चय से (अज्जसा विनयः) यथार्थ गुरु की विनय (विद्यानां) विद्याओं को (दोग्ध्री) देनेवाली (सुरभिः) सच्ची कामधेनु है।

वीक्ष्य तानतृपद्भूपो विद्यानां पारदृश्वनः।

पुत्रमात्रं मुदे पित्रोर्विद्यापात्रं तु किं पुनः॥७८॥

अन्वयार्थ- (भूपः) राजा (विद्यानां पारदृश्वनः) विद्या में पारगामी (तान्) उन पुत्रों को (वीक्ष्य) देखकर (अतृपत्) अत्यन्त प्रसन्न हुए।

[अत्र नीतिः] ठीक ही है (पित्रोः) माता-पिता को (पुत्रमात्रं) मात्र पुत्र ही (मुदे) हर्ष के लिए होता है, फिर यदि वह (विद्यापात्रं) विद्या का पात्र हो तो (किं पुनः वक्तव्यं) फिर कहना ही क्या है।

अतिमात्रं पवित्रं तं धात्रिपः समभावयत्।

असम्भावयितुर्दोषो विदुषां चेदसम्मतिः॥७९॥

अन्वयार्थ- फिर (धात्रिपः) राजा ने (पवित्रं तं) जीवन्धरकुमार का (अतिमात्रं) अत्यन्त (समभावयत्) सम्मान किया।

[अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (विदुषां) विद्वानों का (असम्मतिः स्यात्) सम्मान न होवे तो (असम्भावयितुः) इसमें सम्मान नहीं करनेवाले का ही (दोषः) दोष है।

महोपकारिणः किं वा कुर्यामित्यप्यतर्कयत्।

विद्याप्रदायिनां लोके का वा स्यात्प्रत्युपक्रिया॥८०॥

अन्वयार्थ- (महोपकारिणः) महान उपकारी (अस्य) इनका (अहं किं वा कुर्यां) मैं क्या उपकार करूँ? (इति सः अतर्कयत्) इसप्रकार उसने विचार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लोके) इस संसार में (विद्याप्रदायिनां) विद्यादान करनेवालों का (का वा) क्या (प्रत्युपक्रिया) प्रत्युपकार (स्यात्) हो सकता है?

कन्याविश्राणनं तस्मै करणीयमजीगणत्।

शक्यमेव हि दातव्यं सादरैरपि दातृभिः॥८१॥

अन्वयार्थ- फिर (सः) उस राजा ने (तस्मै) उन जीवन्धरकुमार के लिए (कन्याविश्राणनं) अपनी कन्या देना (करणीयं) योग्य है (अजीगणत्) ऐसा निश्चय किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सादरैः) आदरसहित (दातृभिः) दाताओं को (अपि) भी (शक्यं एव) अपने लिए शक्य एवं योग्य वस्तु ही (दातव्यं) देना चाहिए।

अभ्युपाजीगमत्पुत्रीं परिणेतुममुं पुनः।

उदाराः खलु मन्यन्ते तृणायेदं जगत्त्रयम्॥८२॥

अन्वयार्थ- (पुनः) फिर वह राजा (पुत्रीं परिणेतुं) पुत्री को ब्याह देने के लिए (अमुं) जीवन्धरकुमार के पास (अभ्युपाजीगमत्) आया।

[अत्र नीतिः] (खलु) निश्चय से (उदाराः) उदार पुरुष (इदं जगत्त्रयं) इस जगत्त्रय को (तृणाय) तृण के समान (मन्यन्ते) मानते हैं।

ततः कनकमालाख्यां कन्यां राज्ञा समर्पिताम्।
पर्यणैषीत्पवित्रोऽयं पवित्रामग्निसाक्षिकम्॥८३॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (अयं पवित्रः) इन पवित्र जीवन्धरकुमार ने (राज्ञा समर्पितां) राजा दृढमित्र द्वारा प्रदान की गई (पवित्रां) पवित्र (कनकमालाख्यां) कनकमाला नाम की (कन्यां) कन्या को (अग्निसाक्षिकं) अग्नि की साक्षीपूर्वक (पर्यणैषीत्) ब्याहा।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचितौ क्षत्रचूडामणौ
कनकमालालम्भो नाम सप्तमो लम्बः समाप्तः।

अष्टमो लम्बः

अथ तत्करपीडान्तेऽसक्तस्वान्तोऽभवत्सुधीः।

तीरस्थाः खलु जीवन्ति न हि रागाब्धिगाहिनः॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) फिर (तत्करपीडान्ते) कनकमाला से विवाह के अनन्तर (सुधीः) बुद्धिमान जीवन्धरकुमार (असक्तस्वान्तः) उसमें अधिक अनुराग युक्त नहीं (अभवत्) हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (तीरस्थाः) रागरूपी समुद्र के तट पर स्थित पुरुष (जीवन्ति) जीते हैं; किन्तु (खलु रागाब्धिगाहिनः) विषयरागरूपी समुद्र में अवगाहन करनेवाले (न जीवन्ति) नहीं जीते हैं अर्थात् संसार में वे ही पुरुष सुखी हैं, जो विषय भोगों की तृष्णा में तटस्थ रहते हैं; उनमें तन्मय नहीं होते।

स्यालानां तत्र वात्सल्यादवात्सीत्सुचिरं सुधीः।

वत्सलेषु च मोहः स्याद्वात्सल्यं हि मनोहरम्॥२॥

अन्वयार्थ- (तत्र) उस हेमाभा नगरी में (सुधीः) बुद्धिमान जीवन्धरकुमार (स्यालानां) अपने सालों के (वात्सल्यात्) प्रेम से (सुचिरं) चिरकाल तक (अवात्सीत्) स्थित रहे।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वत्सलेषु) प्रेमियों में (मोहः स्यात्) मोह हो ही जाता है; क्योंकि (वात्सल्यं) प्रेमभाव (मनोहरं) मन को हरनेवाला {भवति} होता है।

यापितोऽपि महाकालस्तस्य नोद्वेगमातनोत्।

वत्सलैः सह संवासे वत्सरो हि क्षणायते॥३॥

अन्वयार्थ- (यापितः) बीते हुए (महाकालः अपि) बहुत समय ने भी (तस्य) उन जीवन्धरकुमार को (उद्वेगं) कुछ भी खेद भाव (न आतनोत्) नहीं किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वत्सलैः सह) प्रियजनों के साथ (संवासे) रहने में (वत्सरः अपि) एक वर्ष भी (क्षणायते) क्षण के समान बीत जाता है।

कदाचित्कापि तत्प्रान्तं समन्दस्मितमासदत्।

नैसर्गिकं हि नारीणां चेतः सम्मोहि चेष्टितम्॥४॥

अन्वयार्थ- (कदाचित्) एक दिन (का अपि) कोई स्त्री (तत्प्रान्तं) उनके समीप (समन्दस्मितं) कुछ हँसती हुई (आसदत्) पहुँची।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (नारीणां) स्त्रियों की (चेष्टितं) चेष्टाएँ (नैसर्गिकं) स्वभाव से ही (चेतः सम्मोहि) चित्त को मोहित करनेवाली होती हैं।

अप्राक्षीत्तां च साकूतां किमायातेति सादरः।

विवक्षालिङ्गितं हि स्यात्प्रष्टुः प्रश्नकुतूहलम्॥५॥

अन्वयार्थ- (सादरः) कुमार ने आदरसहित (किं आयाता) तुम यहाँ क्यों आई हो (इति) इसप्रकार (साकूतां तां) किसी मतलब से आई हुई उस स्त्री से (अप्राक्षीत्) पूछा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्रष्टुः) पूछनेवाले के (प्रश्नकुतूहलं) प्रश्न में कुतूहल (विविक्षातिङ्गितं) कुछ कहने की इच्छा से युक्त (स्यात्) होता है।

अत्र चायुधशालायां चैकदैवाविशेषतः।

स्वामिन्स्वामिनमद्राक्षमित्यसौ प्रत्यभाषत ॥६॥

अन्वयार्थ- (असौ) उस स्त्री ने (इति) इसप्रकार (प्रत्यभाषत) प्रत्युत्तर दिया कि (स्वामिन्) हे स्वामी जीवन्धरकुमार (अत्र) यहाँ राजभवन में (च) और (आयुधशालायां) आयुधशाला में (एकदा एव) एक ही समय में (स्वामिनं) आपको (अविशेषतः) एकरूप से (अद्राक्षं) देखा है।

अतिमात्रं पवित्रोऽयमचित्रीयत तच्छ्रुतेः।

अयुक्तं खलु दृष्टं वा श्रुतं वा विस्मयावहम् ॥७॥

अन्वयार्थ- (अयं पवित्रः) पवित्र जीवन्धरकुमार (तच्छ्रुतेः) उसकी बात सुनने से (अतिमात्रं) अत्यन्त (अचित्रीयत) आश्चर्य युक्त हुए।

[अत्र नीतिः] (खलु) निश्चय से (दृष्टं) देखी हुई (वा) अथवा (श्रुतं वा) सुनी हुई (अयुक्तं) अनहोनी बात (विस्मयावहं) आश्चर्य करनेवाली होती है।

नन्दाढ्यः किमिहायात इत्ययं पुनरौहत।

संसारविषये सद्यः स्वतो हि मनसो गतिः ॥८॥

अन्वयार्थ- (पुनः) फिर (अयं) इन जीवन्धरकुमार ने (किं) क्या (इह) यहाँ (नन्दाढ्यः) मेरा छोटा भाई नन्दाढ्य (आयातः) आ गया है? (इति) इसप्रकार (औहत) विचार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (संसारविषये) संसार के विषयों में (मनसः गतिः) मन की प्रवृत्ति (सद्यः) शीघ्र (स्वतः) अपने आप {स्यात्} हो जाती है।

प्रागेव तन्मनोवृत्तेः प्रययौ तत्र तद्वपुः।

आस्थायां हि विना यत्नमस्ति वाक्कायचेष्टितम्॥९॥

अन्वयार्थ- (तत्र) उस आयुधशाला में (तद्वपुः) उन जीवन्धरकुमार का शरीर (तन्मनोवृत्तेः) उनके मन के व्यापार से (प्राक् एव) पहले ही (प्रययौ) नन्दाढ्य के कारण पहुँच गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (आस्थायां) किसी वस्तु की आस्था रहने पर (यत्नं विना) बिना यत्न के भी (वाक्कायचेष्टितं) वचन और शरीर की चेष्टा (अस्ति) हो जाती है।

गत्वा तत्र च नन्दाढ्यं पश्यन्सम्मदसादभूत्।

भ्रातुर्विलोकनं प्रीत्यै विप्रयुक्तस्य किं पुनः॥१०॥

अन्वयार्थ- (तत्र गत्वा च) और वहाँ जाकर जीवन्धरकुमार (नन्दाढ्यं) नन्दाढ्य को (पश्यन्) देखकर (सम्मदसात् अभूत्) अत्यन्त प्रसन्न हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भ्रातुः) भाई का (विलोकनं) देखना ही (प्रीत्यै) प्रीति के लिए {भवति} होता है, (विप्रयुक्तस्य) बिछुड़े

हुए का तो (किं) फिर कहना ही क्या है? अर्थात् बिछुड़े हुए भाई का मिलना अत्यन्त हर्ष उत्पन्न करनेवाला होता है।

अनुजोऽपि तमालोक्य मुमुचे दुःखसागरात्।

विस्मृतं हि चिरं भुक्तं दुःखं स्यात्सुखलाभतः॥११॥

अन्वयार्थ- (अनुजः अपि) छोटा भाई भी (तं) अपने बड़े भाई जीवन्धरकुमार को (आलोक्य) देखकर (दुःखसागरात्) दुःखरूपी समुद्र से (मुमुचे) पार हो गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (चिरं भुक्तं) चिरकाल तक भोगे हुए (दुःखं) दुःख का भी (सुखलाभतः) सुख मिलने पर (विस्मृतं) विस्मरण (स्यात्) हो जाता है।

कथमाया इति ज्यायानन्वयुङ्क्त मिथोऽनुजम्।

वञ्चनं चावमानं च न हि प्राज्ञैः प्रकाश्यते॥१२॥

अन्वयार्थ- (ज्यायान्) बड़े भाई जीवन्धरकुमार ने (अनुजं) छोटे भाई से (मिथः) एकान्त में तुम यहाँ (कथं) कैसे (आयाः) आए? (इति) इसप्रकार (अन्वयुङ्क्त) पूछा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्राज्ञैः) बुद्धिमान पुरुष (वञ्चनं) अपने ठगाए जाने को (च) और (अवमानं च) अपने निरादर को (न प्रकाश्यते) प्रकाशित नहीं करते हैं।

सखेदं ध्यातदुःखोऽयमाचख्यौ वृत्तिमात्मनः।

ध्यातेऽपि हि पुरा दुःखे भृशं दुःखायते जनः॥१३॥

अन्वयार्थ- (ध्यातदुःखः) पहले दुःख का जिसने अनुभव किया है ऐसे (अयं) इस नन्दाढ्य ने (आत्मनः) अपना (वृत्तिं) सारा वृत्तान्त (सखेदं) खेद सहित (आचख्यौ) कह दिया।

[अत्र नीतिः] (पुरा) पूर्व के (दुःखे ध्याते अपि) दुःख के स्मरण मात्र से (जनः) मनुष्य (भृशं) अत्यन्त (दुःखायते) दुःखी होता है।

पूज्यपाद तदास्माकं पापाद्भवति निर्गते।

मृतकल्पोऽप्यहं मर्तुं सर्वथा समकल्पयम्॥१४॥

अन्वयार्थ- (पूज्यपाद) हे पूज्यपाद! (तदा) उससमय (अस्माकं) हमारे (पापात्) पाप के उदय से (भवति) आपके (निर्गते) चले जाने पर (मृतकल्पः अपि) मरे हुए के समान भी (अहं) मैंने (सर्वथा मर्तुं) सर्व प्रकार से मरने के लिए (समकल्पयं) संकल्प कर लिया।

विद्याविदितवृत्तान्ता कथंवृत्ता प्रजावती।

इत्यालोच्यैव संस्थाने बोधो मे समजायत॥१५॥

अन्वयार्थ- (विद्याविदितवृत्तान्ता) विद्या के बल से वृत्तान्त को जाननेवाली (प्रजावती) मेरी भाभी (आपकी पत्नी गन्धर्वदत्ता) का (कथंवृत्ता) क्या समाचार है? (इति आलोच्य) इसप्रकार विचार करने से (संस्थाने) योग्य समय में (मे बोधः) मुझे सद्बुद्धि (समजायत) उत्पन्न हो गई।

एवं भाविभवदृष्टिशम्भरत्वादहं पुनः।

प्रजावतीगृहं प्राप्य सविषादमवास्थिषम्॥१६॥

अन्वयार्थ- (पुनः) फिर (एवं) इसप्रकार (भाविभवदृष्टिशम्भरत्वात्) भविष्य में आपके दर्शनरूपी सुख की आशा से (अहं) मैं (प्रजावतीगृहं प्राप्य) गन्धर्वदत्ता भाभी के घर जाकर वहाँ (सविषादं) खेद सहित (अवास्थिषं) बैठ गया।

स्वामिनि स्वामिहीनानां कुतः स्त्रीणां सुखासिका।

इति वक्तुमुपक्रान्ते हृदयज्ञा तु साभ्यधात्॥१७॥

अन्वयार्थ- (स्वामिनि) हे स्वामिनि! (स्वामिहीनानां) अपने स्वामी (निज पति) के बिना (स्त्रीणां) स्त्रियों की (सुखासिका) सुखपूर्वक स्थिति (कुतः) कैसे {स्यात्} हो सकती है? (इति) इसप्रकार (वक्तुं) कहने के लिए (उपक्रान्ते) मैं प्रारम्भ करनेवाला ही था (तु) कि (हृदयज्ञा) हृदय की बात जाननेवाली (सा) उस गन्धर्वदत्ता ने (अभ्यधात्) कहा।

अङ्ग किं खिद्यसे ज्यायाननुपद्रव एव ते।

वयमेव महापापा मध्ये दुःखाब्धिपातिताः॥१८॥

अन्वयार्थ- (अङ्ग) हे वत्स! (त्वं) तुम (किं) क्यों (खिद्यसे) खेद करते हो (ते) तुम्हारे (ज्यायान्) बड़े भाई जीवन्धरकुमार (अनुपद्रवः एव) सब प्रकार के कष्टों से रहित हैं; किन्तु (वयम् एव महापापाः मध्ये दुःखाब्धिपातिताः) हम महापापी ही दुःखरूपी समुद्र में पड़े हुए हैं।

प्रतिदेशं प्रतिग्रामं प्रतिगृह्यैव मह्यते।

विपच्च सम्पदे हि स्याद्भाग्यं यदि पचेलिमम्॥१९॥

अन्वयार्थ- उनकी तो (प्रतिदेशं) प्रत्येक देश में (च) और (प्रतिग्रामं) प्रत्येक ग्राम में (प्रतिगृह्य एव) आदरपूर्वक स्वागत के साथ (मह्यते) पूजा होती है।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (यदि) अगर (भाग्यं) भाग्य (पचेलिमं) फलोन्मुख हो तो (विपत् च) विपत्ति भी (सम्पदे) सम्पत्ति के लिए (स्यात्) हो जाती है।

द्रष्टुमिच्छसि चेद्वत्स तं जनं तव पूर्वजम्।

किं नु ताम्यसि गम्येत क्व नु पापा हि भामिनी॥२०॥

अन्वयार्थ- (वत्स) हे वत्स! (चेत्) यदि (तव) अपने (तं पूर्वजं जनं) उन बड़े भाई जीवन्धरकुमार को (द्रष्टुं) देखने की (इच्छसि) इच्छा करते हो तो (किं नु) क्यों (ताम्यसि) दुःखी होते हो? (गम्येत) जाओ। अर्थात् मैं तुम्हें विद्या के प्रभाव से उनके समीप पहुँचा देती हूँ, किन्तु (पापा भामिनी) हम पापिनी स्त्रियों का (क्व) क्या? हम तो जहाँ हैं, वहीं ठीक हैं।

इत्युक्त्वा शाययित्वा च शय्यायां साभिमन्त्रितम्।

मामत्रभवती चात्र सपत्रं प्राहिणोदिति॥२१॥

अन्वयार्थ- (इति) इसप्रकार (उक्त्वा) कहकर (अत्रभवती) पूज्य भाभी ने (आपकी पत्नी ने) (मां) मुझको (शय्यायां) सेज पर (साभिमन्त्रितं) मन्त्रपूर्वक (शाययित्वा) सुलाकर (सपत्रं) पत्रसहित (अत्र) यहाँ (प्राहिणोत्) भेज दिया। (इति) ऐसा नन्दाढ्य ने जीवन्धरकुमार से कहा।

अखिद्यत ततः स्वामी सदयैरनुजोदितैः।

स्नेहपाशो हि जीवानामासंसारं न मुञ्चति॥२२॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके बाद (स्वामी) जीवन्धरकुमार (सदयैः) दयाजनक (अनुजोदितैः) छोटे भाई नन्दाढ्य के कहे हुए वचनों से (अखिद्यत) अत्यन्त दुःखी हुए।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (आसंसारं) जबतक संसार है तबतक (जीवानां) प्राणियों का (स्नेहपाशः) स्नेहरूपी बन्धन (न) नहीं (मुञ्चति) छूटता है।

गुणमालाव्यथाशंसि पत्रं चायमवाचयत्।

चतुराणां स्वकार्योक्तिः स्वमुखान्न हि वर्तते॥२३॥

अन्वयार्थ- (अयं) फिर जीवन्धरकुमार ने (गुणमालाव्यथाशंसि) गुणमाला की विरहपीड़ा का सूचक (पत्रं च) गन्धर्वदत्ता का भेजा हुआ पत्र (अवाचयत्) पढ़ा।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (चतुराणां) चतुर पुरुषों का (स्वमुखात्) निज मुख से (स्वकार्योक्तिः) अपने कार्य के लिए कहना (न वर्तते) नहीं होता है।

अन्यापदेशसन्देशात्खेचर्या खेदवानभूत्।

विद्वेषः पक्षपातश्च प्रतिपात्रं च भिद्यते॥२४॥

अन्वयार्थ- जीवन्धरकुमार (अन्यापदेशसन्देशात्) गुणमाला के बहाने से पत्र में लिखित सन्देश से (खेचर्या) विद्याधरी गन्धर्वदत्ता के लिए ही (खेदवान्) खेदित (अभूत्) हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विद्वेषः) द्वेषभाव (च) और (पक्षपातः) पक्षपात अर्थात् प्रेमभाव (प्रतिपात्रं) प्रत्येक व्यक्ति की अपेक्षा (भिद्यते) भिन्न-भिन्न होता है।

प्रियाशोकश्रुतेर्जातः शोकोऽप्येतस्य नास्फुरत्।
न हि प्रसादखेदाभ्यां विक्रियन्ते विवेकिनः॥२५॥

अन्वयार्थ- (प्रियाशोकश्रुतेः) अपनी प्रिया गन्धर्वदत्ता के शोक को सुनने से (एतस्य) इन कुमार के (जातः) उत्पन्न (शोकः अपि) शोक भी (न अस्फुरत्) बाहर प्रगट नहीं हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विवेकिनः) विवेकी पुरुष (प्रसाद-खेदाभ्यां) हर्ष से और विषाद से (न विक्रियन्ते) विकारभाव को प्राप्त नहीं होते हैं।

वैवाहिकगृहस्थाश्च ह्यातस्थुरुनुजं भृशम्।
बन्धोर्बन्धौ च बन्धो हि बन्धुता चेदवज्जिता॥२६॥

अन्वयार्थ- (च) फिर (वैवाहिकगृहस्थाः) राजा दृढमित्र (जीवन्धर के श्वसुर) के घर में रहनेवाले पुरुषों ने (अनुजं) जीवन्धरकुमार के छोटे भाई नन्दाढ्य को (भृशं आतस्थुः) आकर चारों तरफ से घेर लिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (चेत्) यदि (अवज्जिता) अकृत्रिम निष्कपट (बन्धुता स्यात्) बन्धुता हो तो (बन्धोः) बन्धु के (बन्धौ) बन्धु में भी (बन्धः स्यात्) प्रेम हो जाता है।

अवस्कन्दाद्गवां गोपा अथाक्रोशन्नुपाङ्गणे।

पीडायां तु भृशं जीवा अपेक्षन्ते हि रक्षकान्॥२७॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (गोपाः) बहुत से ग्वाले (गवां अवस्कन्दात्) गायों के पकड़े जाने से (नृपाङ्गणे) राजा के आँगन में (आक्रोशन) रोने-चिल्लाने लगे।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भृशं) अत्यन्त (पीडायां) पीड़ा होने पर (जीवाः) प्राणी (रक्षकान्) अपनी रक्षा करनेवालों की (अपेक्षन्ते) अपेक्षा या आशा किया करते हैं।

सानुक्रोशं तदाक्रोशं क्षमाधीशो न चक्षमे।

पातापायान्न चेत्पायात्कुतो लोकव्यवस्थितिः॥२८॥

अन्वयार्थ- (क्षमाधीशः) राजा (सानुक्रोशं) करुणा को पैदा करने वाला (तदाक्रोशं) उनका रोना (न चक्षमे) सहन नहीं कर सका।

[अत्र नीतिः] (चेत्) यदि (पातापायात्) पतनरूपी विनाश से (न पायात्) प्रजा की रक्षा न की जाए तो (लोकव्यवस्थितिः कुतः) फिर संसार में राजा और प्रजा की व्यवस्था कैसे रह सकती है?

स्वामी श्वशुररुद्धोऽपि गोमोचनकृते ययौ।

पराभवो न सोढव्योऽशक्तैः शक्तैस्तु किं पुनः॥२९॥

अन्वयार्थ- (श्वशुररुद्धः अपि) ससुर के रोकने पर भी (स्वामी) जीवन्धरकुमार (गोमोचनकृते) गायों को छुड़ाने के लिए (ययौ) चले गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से जब (अशक्तैः) असमर्थ पुरुषों से भी (पराभवः) तिरस्कार (न सोढव्यः) सहन नहीं होता है (शक्तैः)

तो समर्थ पुरुषों का तो (किं पुनः) फिर कहना ही क्या है? अर्थात् वे तिरस्कार कैसे सहन कर सकते हैं? कभी भी नहीं सह सकते।

दस्यवोऽपि गवां तत्र मित्राण्येवाभवन्विभोः।

एधोगवेषिभिर्भाग्ये रत्नं चापि हि लभ्यते॥३०॥

अन्वयार्थ- (तत्र) वहाँ (गवां दस्यवः अपि) गायों को पकड़नेवाले चोर भी (विभोः) जीवन्धरकुमार के (मित्राणि एव) मित्र ही (अभवन्) थे।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भाग्ये सति) सद्भाग्य का उदय होने पर (एधोगवेषिभिः अपि) लकड़ी ढूँढनेवालों को भी (रत्नं च) रत्न (लभ्यते) मिल जाता है।

समोऽभूत्स्वामिमित्रेषु स्नेहश्चान्योन्यवीक्षणात्।

एककोटिगतस्नेहो जडानां खलु चेष्टितम्॥३१॥

अन्वयार्थ- (अन्योन्यवीक्षणात्) एक दूसरे को देखने से (स्वामिमित्रेषु) जीवन्धरकुमार और उनके मित्रों में (समः) एक सरीखा (स्नेहः) प्रेम (अभूत्) उत्पन्न हो गया।

[अत्र नीतिः] (खलु एक कोटिगतस्नेहः) एक कोटि को प्राप्त स्नेह अर्थात् इकतरफा प्रीति (जडानां) मूर्खों की (चेष्टितं) चेष्टा है। बुद्धिमानों की प्रीति इसप्रकार नहीं होती है।

जामातरि चमत्कारो राज्ञोऽभून्मित्रवीक्षणात्।

कृतिनोऽपि न गण्या हि वीतस्फीतपरिच्छदाः॥३२॥

अन्वयार्थ- (मित्रवीक्षणात्) जीवन्धरकुमार के मित्रों को देखने से (राज्ञः) राजा दृढमित्र को (जामातरि) अपने दामाद जीवन्धरकुमार के विषय में (चमत्कारः अभूत्) अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कृतिनः) पुण्यात्मा पुरुष (वीतस्फीत-परिच्छदाः अपि) समृद्धसेनादिक सामग्री से रहित भी (न गण्याः) नहीं समझने चाहिए अर्थात् उनको बहुत सामग्री युक्त समझना चाहिए।

समित्रावरजोऽहृष्यदतिमात्रमसौ कृती।

एकेच्छानामतुच्छानां न ह्यन्यत्सङ्गमात्सुखम्॥३३॥

अन्वयार्थ- (समित्रावरजः) छोटे भाई और मित्रों सहित (असौ कृती) विद्वान जीवन्धरकुमार (अतिमात्रं) अत्यन्त (अहृष्यत्) हर्षित हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अतुच्छानां) श्रेष्ठ पुरुषों के (एकेच्छानां) एक-सी इच्छा रखनेवालों के (सङ्गमात्) समागम से बढ़कर (अन्यत्सुखं) और कोई दूसरा सुख (न) नहीं है।

अयथापुरसन्मानात्समशेत सखीनसौ।

विशेते हि विशेषज्ञो विशेषाकारवीक्षणात्॥३४॥

अन्वयार्थ- (असौ) जीवन्धरकुमार ने (अयथापुरसन्मानात्) मित्रों के द्वारा अपना विलक्षण अपूर्व सम्मान होते देख (सखीन्) मित्रों पर (समशेत) सन्देह किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विशेषज्ञः) विशेषता को पहचाननेवाला बुद्धिमान (विशेषाकारवीक्षणात्) विशेष देखने से (विशेते) सन्देह करने लगता है।

रहस्येव वयस्येषु तन्निदानमचोदयत्।

एककण्ठेषु जाता हि बन्धुता ह्यवतिष्ठते॥३५॥

अन्वयार्थ- (रहसि एव) एकान्त में ही जीवन्धरकुमार ने (वयस्येषु) मित्रों से (तन्निदानं) उसका कारण (अचोदयत्) पूछा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (एककण्ठेषु) एक से अभिप्रायवाले बन्धुओं में (जाता) उत्पन्न हुई (बन्धुता) मित्रता ही (अवतिष्ठते) स्थिर रहती है।

मुख्यं सख्यं गतस्तेषामाचख्यौ पङ्कजाननः।

सज्जनानां हि शैलीयं सक्रमारम्भशालिता॥३६॥

अन्वयार्थ- (तेषां) उनमें से (मुख्यं सख्यं) प्रधान मित्रता को (गतः) प्राप्त (पङ्कजाननः) पद्मास्य नाम का मित्र (आचख्यौ) बोला।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सक्रमारम्भशालिता) क्रमपूर्वक किसी कार्य का आरम्भ करना (इयं) यह (सज्जनानां शैली) सज्जन पुरुषों की पद्धति है।

स्वामिन्स्वामिवियोगेऽपि युक्ता दग्धासुभिर्वयम्।

अस्तोकभाविभाग्येन हस्तग्राहं ग्रहादिव॥३७॥

अन्वयार्थ- (स्वामिन्) हे स्वामी! (स्वामिवियोगे) आपका वियोग होने पर (दग्धासुभिः) जले हुए प्राणों से (युक्ताः वयं) युक्त होने पर भी हम लोग (अस्तोकभाविभाग्येन) भविष्य में उदय होनेवाले महान भाग्य से (हस्तग्राहं ग्रहात् इव) हस्तावलम्बन देकर ग्रहण किए हुए के सदृश {अजीवाम} जीवित रहे।

साश्वासाश्च ततो देव्या दत्तहस्तावलम्बनाः।

प्रास्थिष्महि धुरं प्राप्ता वयमश्वीयपाणिनाम्॥३८॥

अन्वयार्थ- (ततः) फिर (देव्या) देवी गन्धर्वदत्ता ने (दत्तहस्तावलम्बनाः) सहारा देकर (साश्वासाश्च) आश्वासन दिया। तब (वयं) हम लोग (अश्वीयपाणिनां) घोड़ों को बेचनेवालों के (धुरं प्राप्ताः) मुखिया होकर (प्रास्थिष्महि) वहाँ से चल दिए।

अतिलङ्घय ततोऽध्वानमध्वश्रमविहानये।

दण्डकारण्यविख्यातं तापसाश्रममाश्रिताः॥३९॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (अध्वानं अतिलङ्घय) बहुत सा मार्ग तय करके (अध्वश्रमविहानये) मार्ग की थकावट दूर करने के लिए (दण्डकारण्यविख्यातं) दण्डकारण्य में प्रसिद्ध (तापसाश्रमं) तपस्वियों के आश्रम में (आश्रिताः) पहुँचे।

दर्शं दर्शं ततो दृश्यं विहरन्तोऽत्र विश्वतः।

अपश्याम क्वचित्काञ्चित्पुण्यतः पुण्यमातरम्॥४०॥

अन्वयार्थ- (अत्र) यहाँ (विश्वतः) चारों ओर (दृश्यं) मनोहर दृश्यों को (दर्शं दर्शं) देख-देखकर (विहरन्तः) विहार करते हुए (वयं)

हम लोगों ने (क्वचित्) किसी स्थान में (पुण्यतः) पुण्योदय से (काञ्चित्) किसी (पुण्यमातरं) पवित्र माता को (अपश्याम) देखा।

तन्मात्रा दृष्टमात्रेण कुत्रत्या इति चोदिताः।

वयमप्युत्तरं वक्तुमुपक्रम्य यथाक्रमम्॥४१॥

अन्वयार्थ- (तन्मात्रा) उस माता ने (दृष्टमात्रेण) हम लोगों को देखते ही (कुत्रत्याः) तुम कहाँ के रहनेवाले हो? (इति) इसप्रकार (चोदिताः) पूछा तब (वयं अपि) हम लोगों ने भी (यथाक्रमं) क्रमानुसार (उत्तरं वक्तुं) माता के प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रारम्भ करके {इति अवोचाम} ऐसा कहा।

अस्ति राजपुरे कश्चिद्विबुधानामपश्चिमः।

विशां च जीवकाख्योऽयमेतं जीवातुका वयम्॥ ४२॥

अन्वयार्थ- (राजपुरे) राजपुरी नगरी में (विबुधानां) पण्डितों के (च) और (विशां) वैश्यों के (अपश्चिमः) शिरोभूषण (कश्चित्) कोई (अयं) ये (जीवकाख्यः) जीवक (जीवन्धर) नाम के पुरुष रहते हैं और (वयं) हम लोग (एवं जीवातुकाः) उनके अनुजीवी के रूप में सेवक (मित्रगण) हैं।

काष्ठाङ्गाराह्वयः कोऽपि कोपादेनमनेनसम्।

हन्तुं किलेत्यवोचाम मूर्च्छिता सा च पेतुषी॥४३॥

अन्वयार्थ- (तत्र) उस नगर में (कः अपि) कोई (काष्ठाङ्गाराह्वयः) काष्ठाङ्गार नाम का राजा (कोपात्) क्रोध से (अनेनसं) निर्दोष

(एनं) इन जीवन्धरकुमार को (हन्तुं) मारने के लिए (किल) बस (इति अवोचाम) इतना ही कहा था कि (सा) वह माता (मूर्च्छिता) मूर्च्छित होकर (पेतुषी) गिर पड़ी।

हन्त हन्त हतो नायमम्बेत्यभिहिता मया।

पिहितासुप्रयाणा सा प्रालपल्लब्धचेतना॥४४॥

अन्वयार्थ- (हन्त हन्त) हाय! हाय! (अम्ब) हे माता! (अयं) ये जीवन्धरकुमार (न हतः) मारे नहीं गए जब (मया) मैंने (इति) इसप्रकार (अभिहिता) कहा तब (पिहितासुप्रयाणा) रुक गया है प्राणों का निकलना जिसका ऐसी (लब्धचेतना) सचेत होकर (सा) वह माता (प्रालपत्) प्रलाप करने लगी।

अम्भोदालीव दम्भोलीममृतं च मुमोच सा।

देवी समं प्रलापेन देवोदन्तमिदन्तया॥४५॥

अन्वयार्थ- (अम्भोदाली) मेघों की पंक्ति (इव) जिस प्रकार (दम्भोली) वज्रपात (च) और (अमृतं) जल को (मुमोच) वर्षाती है; उसीप्रकार (सा देवी) उस माता ने (प्रलापेन समं) प्रलाप के साथ (देवोदन्तं) आपके वृत्तान्त को (इदन्तया) इस रीति से {अकथयत्} कहा। अर्थात् आप की उत्पत्ति आदि की बीती हुई सब कथा उन्होंने खेद के साथ हम लोगों को सुनाई।

तन्मुखात्खादिवोत्पन्नां रत्नवृष्टिं तवोन्नतिम्।

उपलभ्य वयं लब्धाममन्यामहि तन्महीम्॥४६॥

अन्वयार्थ- (तन्मुखात्) उनके मुख से (तव उन्नतिं) आपकी उन्नति को (खात्) आकाश से (उत्पन्नां) बरसती हुई (रत्नवृष्टिं) रत्नों की वर्षा के (इव) समान (उपलभ्य) सुनकर (वयं) हम लोग (तन्महीं) उस पृथ्वी को (लब्धां) हाथ में आई हुई (अमन्यामहि) मानने लगे।

देववैभवसङ्कीर्त्या ततो देवीं पुनः पुनः।

आश्वास्यपृच्छ्य तद्देशादिमं देशं गता इति॥४७॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर (देववैभवसङ्कीर्त्या) आपके वैभव की महिमा के वर्णन से (देवीं) माता को (पुनः पुनः) बार-बार (आश्वास्य) धीरज बँधाकर (च) और (आपृच्छ्य) पूछकर (तद्देशात्) उस स्थान से (इमं देशं) इस देश को (गताः) आए हैं (इति) ऐसा पद्मास्य ने कहा।

मातुर्जीवन्मृतिज्ञानात्तत्त्वज्ञः सोऽप्यखिद्यत।

जीवानां जननीस्नेहो न ह्यन्यैः प्रतिहन्यते॥४८॥

अन्वयार्थ- (सः तत्त्वज्ञः) तत्त्वों का स्वरूप जाननेवाले उन जीवन्धरकुमार (मातुः) माता को (जीवन्मृतिज्ञानात्) जीवित होते हुए भी मृत जानने से (अखिद्यत) अत्यन्त खेद किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (जीवानां) प्राणियों का (जननीस्नेहः) मातृ-प्रेम (अन्यैः) दूसरे कारणों से (न प्रतिहन्यते) नष्ट नहीं होता है।

अत्वरिष्ट च तां द्रष्टुं कौरवो गुरुगौरवः।

अम्बामदृष्टपूर्वा च द्रष्टुं को नाम नेच्छति॥४९॥

अन्वयार्थ- (गुरुगौरवः) माता और पिता में है पूज्य-बुद्धि जिनकी ऐसे (कौरवः) कुरुवंशी जीवन्धरकुमार ने (तां द्रष्टुं) अपनी उस माता को देखने के लिए (अत्वरिष्ट) शीघ्रता की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कः नाम) ऐसा कौन पुरुष है (अदृष्टपूर्वा) जिसने नहीं देखा है पूर्व में जिसको (अम्बां) ऐसी माता को (द्रष्टुं) देखने के लिए (न इच्छति) इच्छा नहीं करता है? अर्थात् इच्छा करता ही है।

व्यस्मारि मातरि स्नेहान्मान्येनान्यदशेषतः।

रागद्वेषादि तेनैव बलिष्ठेन हि बाध्यते॥५०॥

अन्वयार्थ- (मान्येन) माननीय जीवन्धरकुमार (मातरि स्नेहात्) अपनी माता के स्नेह से (अन्यत्) अन्य सबको (अशेषतः) सर्वथा (व्यस्मारि) भूल गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (तेन एव बलिष्ठेन) उस बलवान स्नेह के द्वारा ही (रागद्वेषादि) राग-द्वेष आदि विकार भाव (बाध्यते) नष्ट कर दिए जाते हैं।

अन्वजिज्ञपदात्मीयां गतिं भार्या परानपि।

आवश्यकेऽपि बन्धूनां प्रातिकूल्यं हि शल्यकृत्॥५१॥

अन्वयार्थ- उन जीवन्धरकुमार ने (भार्या) अपनी स्त्री और (परान् अपि) अन्य पुरुषों को भी (आत्मीयां गतिं) अपने जाने की बात (अन्वजिज्ञपत्) बता दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (आवश्यक अति) आवश्यक कार्य में भी (बन्धूनां) बन्धुओं की (प्रातिकूल्यं) प्रतिकूलता (शल्यकृत) दुःख देने वाली होती है।

अनुनीयानुगान्बन्धून्प्रसभं प्रययौ ततः।

अनुनयो हि माहात्म्यं महतामुपबृंहयेत्॥५२॥

अन्वयार्थ- वे जीवन्धरकुमार (अनुगान्) साथ चलनेवाले (बन्धून्) अपने सालों को (अनुनीय) विनय से समझा-बुझाकर (ततः) वहाँ से (प्रसभं) शीघ्र (प्रययौ) चल दिए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अनुनयः) दूसरों का सम्मान करने से ही (महतां) महान पुरुषों की (माहात्म्यं) महानता (उपबृंहयेत्) बढ़ती है।

प्रसवित्रीं ततः प्रेक्ष्य प्रेमान्धोऽभूदवन्ध्यधीः।

तत्त्वज्ञानतिरोभावे रागादि हि निरङ्कुशम्॥५३॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर उस दण्डकारण्य में (अवन्ध्यधीः) निष्फल नहीं है किसी कार्य में बुद्धि जिनकी ऐसे जीवन्धरकुमार (प्रसवित्रीं) अपनी माता को (प्रेक्ष्य) देखकर (प्रेमान्धः अभूत्) मातृ-प्रेम से अन्धे हो गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (तत्त्वज्ञानतिरोभावे) तत्त्वज्ञानरूपी विचार के छिप जाने पर (रागादि) रागादिक भाव (निरङ्कुशं) बिना रुकावट के प्रबलता से (प्रवर्तते) ही प्रवर्तित हो जाते हैं।

जातजातक्षणत्यागाज्जातं दुर्जातमक्षिणोत्।

सुतवीक्षणतो माता सुतप्राणा हि मातरः॥५४॥

अन्वयार्थ- (माता) जीवन्धरकुमार की माता ने (जात-जातक्षणत्यागात्) पुत्र को जन्मसमय से ही त्याग देने से (जातं) उत्पन्न (दुर्जातं) दुःख को (सुतवीक्षणतः) पुत्र के देखने से ही (अक्षिणोत्) नष्ट कर दिया अर्थात् भूल गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सुतप्राणाः मातरः) माताओं के प्राण पुत्र ही होते हैं अर्थात् माताओं को पुत्र प्राणों से प्रिय होते हैं।

सूनोर्वीक्षणतस्तृप्ता क्षोणीशं तमियेष सा।

लाभं लाभमभीच्छा स्यान्न हि तृप्तिः कदाचन॥५५॥

अन्वयार्थ- (सूनोः) पुत्र के (वीक्षणतः) देख लेने से (तृप्ता) तृप्त होकर फिर (सा) वह माता (तं) पुत्र को (क्षोणीशं) राजा होने की (इयेष) इच्छा करने लगीं अर्थात् यह कब राजा होगा ऐसी माता ने इच्छा की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लाभं लाभं अभि) एक वस्तु के प्राप्त हो जाने पर मनुष्य की दूसरी वस्तु की प्राप्ति के लिए (इच्छा स्यात्) इच्छा हुआ ही करती है; परन्तु (तृप्तिः) इच्छा की पूर्ति अर्थात् सन्तोष (कदाचन न) कभी भी नहीं {भवति} होता है।

कश्चित्पितुः पदं ते स्यादङ्गपुत्रेत्यचोदयत्।

सामग्रीविकलं कार्यं न हि लोके विलोकितम्॥५६॥

अन्वयार्थ- (अङ्गपुत्र) हे पुत्र! (कश्चित्) कोई (ते) तुम्हारे (पितुः) पिता का (पदं स्यात्) पद तुझे मिलेगा? (इति) इसप्रकार जीवन्धरकुमार से उनकी माता ने (अचोदयत्) पूछा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (लोके) संसार में (सामग्रीविकलं) उत्पादक सामग्री के बिना (कार्यं) कार्य (न विलोकितं) नहीं देखा गया है।

अम्ब किं बत खेदेन वाढं स्यादिति सोऽभ्यधात्।
मुग्धेष्वतिविदग्धानां युक्तं हि बलकीर्तनम्॥५७॥

अन्वयार्थ- पुत्र ने कहा (वाढं स्यात्) हाँ, अवश्य! (अम्ब) हे माता! (बत खेदेन किं) व्यर्थ खेद से क्या लाभ? (इति) इसप्रकार (सः अभ्यधात्) उसने कहा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अतिविदग्धानां) चतुर पुरुषों का (मुग्धेषु) मूढजनों में (बलकीर्तनं) अपने बल का कथन करना (युक्तं स्यात्) उचित ही होता है।

पुत्रवाक्येन हस्तस्थां मेने माता च मेदिनीम्।
मुग्धाः श्रुतविनिश्चेया न हि युक्तिवितर्किणः॥५८॥

अन्वयार्थ- (च) और (पुत्रवाक्येन) पुत्र के इसप्रकार वचन सुनकर (माता) माता ने भी (मेदिनीं) पृथ्वी को (हस्तस्थां) हाथ में आया हुआ (मेने) समझा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मुग्धाः) मूढ पुरुष (श्रुतविनिश्चेयाः) किसी भी विषय का निश्चय केवल सुनने से ही करते हैं; किन्तु

(युक्तिवितर्किणः) युक्ति द्वारा किसी कार्य का विचार करने में तत्पर {न भवन्ति} नहीं होते हैं।

अपायस्थानमस्तोकं दूरक्षं व्याहरद्विभोः।

अमित्रो हि कलत्रं च क्षत्रियाणां किमन्यतः॥५९॥

अन्वयार्थ- माता ने (विभोः) जीवन्धरकुमार को (दूरक्षं) कष्टसाध्य (अस्तोकं) एक बड़ी भारी (अपायस्थानं) विपत्ति से बचने के लिए (व्याहरत्) सावधान किया अर्थात् राज्य की बात कहकर जीवन्धरकुमार को युद्ध के लिए तैयार कर दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (क्षत्रियाणां) क्षत्रियों की (कलत्रं) स्त्री/पत्नी भी (अमित्रः) शत्रु {भवति} हो जाती है (अन्यतः किं) औरों का तो फिर कहना ही क्या है?

कर्तव्यं च ततो मात्रा मन्त्रितं तेन मन्त्रिणा।

विचार्यैवेतरैः कार्यं कार्यं स्यात्कार्यवेदिभिः॥६०॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (तेन मन्त्रिणा) विचार करनेवाले उन जीवन्धरकुमार ने (मात्रा) माता के साथ (कर्तव्यं) करने योग्य कार्य का (मन्त्रितं) विचार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कार्यवेदिभिः) कार्य करने में चतुर पुरुष (इतरैः सह) दूसरों के साथ (कार्यं) कार्य को (विचार्य एव) विचार करके ही (कार्यं स्यात्) कार्य किया करते हैं।

प्राहिणोत्प्रसवित्रीं तां मातुलोपान्तिके कृती।

न हि मातुः सजीवेन सोढव्या स्यादुरासिका॥६१॥

अन्वयार्थ- फिर (कृती) विद्वान् जीवन्धरकुमार ने (तां प्रसवित्रीं) अपनी उस माता को (मातुलोपान्तिके) अपने मामा के समीप (प्राहिणोत्) भेज दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मातुः दुरासिका) अपनी माता की दुःखी अवस्था (सजीवेन) किसी भी पुत्र से (न सोढव्या) सहन नहीं की जा सकती है।

ततः सपरितोषोऽयं परिव्राजकपार्श्वतः।

निकषा स्वपुरं प्राप्य तदारामे निषण्णवान्॥६२॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर (सपरितोषः अयं) सन्तुष्ट यह जीवन्धरकुमार (परिव्राजकपार्श्वतः) दण्डक वन के तपस्वियों के पास से (स्वपुरं) अपने नगर के (निकषा) समीप (प्राप्य) पहुँचकर (तदारामे) वहाँ के बगीचे में (निषण्णवान्) ठहर गए।

तत्र मित्राण्यवस्थाप्य व्यहरत्परितः पुरीम्।

विशृङ्खला न हि क्वापि तिष्ठन्तीन्द्रियदन्तिनः॥६३॥

अन्वयार्थ- (तत्र) वहाँ पर जीवन्धरकुमार ने (मित्राणि) मित्रों को (अवस्थाप्य) ठहराकर (पुरीं परितः) नगरी के चारों ओर (व्यहरत्) भ्रमण किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विशृङ्खलाः) बन्धनरहित (इन्द्रिय-दन्तिनः) इन्द्रियरूपी हाथी (क्व अपि) कहीं एक जगह पर (न तिष्ठन्ति) स्थिर नहीं रहते हैं।

ततो राजपुरीं वीक्ष्य सुतरामतृपत्सुधीः।

ममत्वधीकृतो मोहः सविशेषो हि देहिनाम्॥६४॥

अन्वयार्थ- (ततः) फिर (सुधीः) बुद्धिमान जीवन्धरकुमार (राजपुरीं) राजपुरी नगरी को (वीक्ष्य) देखकर (सुतरां) अत्यन्त (अतृपत्) सन्तुष्ट हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (देहिनां) प्राणधारियों के (ममत्वधी-कृतः) ममत्व बुद्धि से किया हुआ (मोहः) मोह (सविशेषः भवति) बहुत अधिक होता है।

क्रीडन्ती कापि हर्म्याग्रात्पातयामास कन्दुकम्।
सम्पदामापदां चाप्तिर्व्याजेनैव हि केनचित्॥६५॥

अन्वयार्थ- उस नगरी में (क्रीडन्ती) क्रीड़ा करती हुई (का अपि) किसी एक युवा कन्या ने (हर्म्याग्रात्) अपने महल के ऊपर से (कन्दुकं) गेंद (पातयामास) फेकी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सम्पदां) सम्पत्ति (च) और (आपदां) विपत्ति की (आप्तिः केनचित्) प्राप्ति में कोई न कोई (व्याजेन एव भवति) निमित्त होता ही है।

उद्वक्त्रस्तद्वतीं सूत्यां दृष्ट्वामुह्यदबाह्यधीः।
वशिनां हि मनोवृत्तिः स्थान एव हि जायते॥६६॥

अन्वयार्थ- (अबाह्यधीः) बाह्य पदार्थों में नहीं है बुद्धि जिनकी ऐसे जीवन्धरकुमार (उद्वक्त्रः) ऊपर को मुख किए हुए (तद्वतीं) गेंद से खेलती हुई (सूत्यां) उस युवा कन्या को (वीक्ष्य) देखकर (अमुह्यत) उस पर मोहित हो गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वशिनां) जितेन्द्रिय पुरुषों के (मनोवृत्तिः) मन के भाव (स्थाने एव) योग्य स्थान में ही (जायते) प्रवृत्त होते हैं।

तन्मोहादयमध्यास्त तत्सौधाग्रवितर्दिकाम्।

अञ्जसा कृतपुण्यानां न हि वाञ्छापि वञ्चिता॥६७॥

अन्वयार्थ- (अयं) यह जीवन्धरकुमार (तन्मोहात्) उस कन्या के प्रेम से (तत्सौधाग्रवितर्दिकाम्) उसके मकान के आगे की चौकी पर (अध्यास्त) बैठ गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अञ्जसा कृतपुण्यानां) किया है अच्छी तरह से पुण्य जिन्होंने ऐसे पुरुषों की (वाञ्छा अपि) इच्छा भी (वञ्चिता न) निष्फल नहीं होती है।

वैश्येशः कोऽपि तं पश्यन्व्याजहे विकसन्मुखः।

चिरकाङ्क्षितसम्प्राप्त्या प्रसीदन्ति हि देहिनः॥६८॥

अन्वयार्थ- इसके अनन्तर (विकसन्मुखः) प्रसन्न है मुख जिसका ऐसे (कः अपि) कोई (वैश्येशः) सेठ (तं) उनको (पश्यन्) देखकर (व्याजहे) बोले।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (देहिनः) प्राणी (चिरकाङ्क्षित-सम्प्राप्त्या) बहुत काल से चाही हुई वस्तु के मिल जाने पर (प्रसीदन्ति) प्रसन्न होते हैं।

भद्र सागरदत्तोऽहं भवत्येष ममालयः।

विमला कमलोद्भूता सुता सूत्या च साभवत्॥६९॥

अन्वयार्थ- (भद्र) हे भद्र! (अहं) मैं (सागरदत्तः) सागरदत्त नाम का वैश्य हूँ और (एषः) यह (मम आलयः) मेरा घर (भवति) है और (कमलोद्भूता) कमला नाम की मेरी स्त्री से उत्पन्न (विमला) विमला नाम की मेरी (सुता) पुत्री है (सा च) और वह पुत्री भी (सूत्या अभवत्) युवा हो गई है।

रत्नजालमविक्रीतं विक्रीयेत यदागमे।

भाविज्ञास्तं पतिं तस्याः समुत्पत्तावजीगणन्॥७०॥

अन्वयार्थ- (तस्याः) उस कन्या की (समुत्पत्तौ) जन्म के समय में (भाविज्ञाः) ज्योतिष शास्त्रों के जाननेवालों ने (यदागमे) जिसके आने पर (अविक्रीतं) नहीं बिका हुआ (रत्नजालं) रत्नों का समूह (विक्रीयेत) बिक जाएगा (तं) उसको (पतिं) इसका पति (अजीगणन्) जानना।

भवत्यत्र प्रविष्टे च दृष्टमेतदलं परैः।

भाग्याधिक भवानेव योग्यः परिणयेदिति॥७१॥

अन्वयार्थ- और (भवति) आपके (अत्र प्रविष्टे) यहाँ प्रवेश करने पर (एतत् दृष्टं) यह सब देखा गया है। (च परैः अलं) और विशेष कहने से क्या? अतएव (भाग्याधिक) हे महाभाग्य! (योग्यः) योग्य (भवान् एव) आप ही (परिणयेत्) इस कन्या के साथ विवाह करें। (इति) इसप्रकार उसने कहा।

तन्निर्बन्धादयं चाभूदनुमन्ता तथाविधौ।

वाञ्छितार्थेऽपि कातर्यं वशिनां न हि दृश्यते॥७२॥

अन्वयार्थ- (अयं) इन जीवन्धरकुमार ने (तन्निर्बन्धात्) उसके अत्यन्त आग्रह करने पर (तथाविधौ) इस विषय में (अनुमन्ता अभूत्) अपनी अनुमति दे दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वाञ्छितार्थे अपि) इच्छित पदार्थ में भी (वशिनां) जितेन्द्रिय पुरुषों के (कातर्यं) अधीरता (न दृश्यते) नहीं देखी जाती है।

अथ सागरदत्तेन दत्तां सत्यन्धरात्मजः।

व्यवहद्विमलां कन्यां हव्यवाहसमक्षकम्॥७३॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (सत्यन्धरात्मजः) सत्यन्धर राजा के पुत्र जीवन्धरकुमार ने (सागरदत्तेन) सागरदत्त से (दत्तां) दी हुई (विमलां) विमला नाम की (कन्यां) कन्या को (हव्यवाहसमक्षकं) अग्नि की साक्षी-पूर्वक (व्यवहत्) वरण किया।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ
विमलालम्भो नाम अष्टमो लम्बः समाप्तः।

नवमो लम्बः

अथ व्यूढामतिस्निग्धां गाढस्नेहोऽन्वभूदिमाम्।
वाञ्छिता यदि वाञ्छेयुः ससारैव हि संसृतिः॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) विमला से विवाहोपरान्त (गाढस्नेहः) अत्यन्त स्नेही जीवन्धरकुमार ने (व्यूढां) नई ब्याही हुई (इमां) इस विमला नाम की पत्नी में (अतिस्निग्धां) बहुत स्नेह का (अन्वभूत) अनुभव किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वाञ्छिताः) जिनको हम चाहते हैं (यदि) अगर वे भी (वाञ्छेयुः) हमें चाहें तो (संसृतिः) संसार भी (ससारा एव) सार रूप ही लगता है।

ततोऽनुनीय तां हित्वा स मित्रैः समगच्छत।
अन्यरोधि न हि क्वापि वर्तते वशिनां मनः॥२॥

अन्वयार्थ- (ततः) फिर (सः) वे जीवन्धरकुमार (तां) उस अपनी स्त्री को (अनुनीय) समझाकर और {तत्र} वहीं (हित्वा) छोड़कर (मित्रैः) अपने मित्रों से (समगच्छत) आकर मिले।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वशिनां) जितेन्द्रिय पुरुषों का (मनः) मन (क्व अपि) कहीं पर भी (अन्यरोधि) दूसरों से रुकनेवाला (न वर्तते) नहीं होता है।

वरचिह्नं तमालोक्य बह्वमन्यन्त बान्धवाः।
ऐहिकातिशयप्रीतिरतिमात्रा हि देहिनाम्॥३॥

अन्वयार्थ- (बान्धवाः) जीवन्धरकुमार के मित्रों ने (वरचिह्नं) वर के चिह्नों से युक्त (तं) उन जीवन्धरकुमार को (आलोक्य) देखकर (बहु अमन्यन्त) अत्यन्त आदर-सत्कार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (देहिनां) प्राणियों को (ऐहिकातिशय-प्रीतिः) इस लोक सम्बन्धी अतिशय अर्थात् सांसारिक उत्कर्ष में ही प्रेम (अतिमात्रा भवति) अति मात्रा में होता है।

अब्रवीदस्य सोत्प्रासं बुद्धिषेणो विदूषकः।

बहुद्वारा हि जीवानां पराराधनदीनता॥४॥

अन्वयार्थ- फिर (अस्य) इन जीवन्धरकुमार के (बुद्धिषेणः) बुद्धिसेन नामक (विदूषकः) विदूषक ने (सोत्प्रासं) हँसकर (अब्रवीत्) कहा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पराराधनदीनता) दूसरों की सेवा करने की चतुराई (जीवानां) प्राणियों के (बहुद्वारा) नाना प्रकार की (भवति) होती है।

सुलभाः खलु दौर्भाग्यादन्योपेक्षितकन्यकाः।

व्यूढायां सुरमञ्जर्यां पौरोभाग्यं भवेदिति॥५॥

अन्वयार्थ- (दौर्भग्यात्) दुर्भाग्य के कारण (अन्योपेक्षितकन्यकाः) दूसरों से उपेक्षित कन्याएँ (सुलभाः खलु) चाहे जिसको मिल सकती हैं; किन्तु (सुरमञ्जर्यां व्यूढायां) सुरमञ्जरी के साथ विवाह करने पर ही (पौरोभाग्यं) आप

महाभाग्यशाली (भवेत्) कहलाएँगे (इति) इसप्रकार विदूषक ने जीवन्धरकुमार से कहा।

तद्वाक्यादयमुद्धोदुमवाञ्छीत्तां च मानिनीम्।
हेतुच्छलोपलम्भेन जृम्भते हि दुराग्रहः॥६॥

अन्वयार्थ- (अयं) इन जीवन्धरकुमार ने (तद्वाक्यात्) उस बुद्धिसेन-विदूषक के तानेरूप वचनों से (मानिनीं तां) मान करनेवाली उस सुरमज्जरी को (उद्धोदुं) ब्याहने के लिए (अवाञ्छीत्) इच्छा की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (हेतुच्छलोपलम्भेन) किसी बहाने के मिल जाने से (दुराग्रहः) मनुष्यों का दुराग्रह (जृम्भते) बढ़ ही जाता है।

तत्राप्यौपायिकं भूयो यक्षमन्त्रं व्यचीचरत्।
अनपायादुपायाद्धि वाञ्छिताप्तिर्मनीषिणाम्॥७॥

अन्वयार्थ- (भूयः) फिर (अयं) इन जीवन्धरकुमार ने (तत्र अपि) इस विषय में भी (औपायिकं) उपायभूत (यक्षमन्त्रं) यक्ष के द्वारा दिए हुए मन्त्र का (व्यचीचरत्) स्मरण किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मनीषिणां) विद्वानों को (वाञ्छिताप्तिः) इच्छित वस्तु की प्राप्ति (अनपायात् उपायात्) नाश नहीं होनेवाले स्थिर उपाय से ही {भवति} होती है।

वार्धकं तत्र चोपायमुपायज्ञोऽयमौहत।
करुणामात्रपात्रं हि बाला वृद्धाश्च देहिनाम्॥८॥

अन्वयार्थ- (उपायज्ञः) उपाय के जाननेवाले (अयं) इन जीवन्धरकुमार ने (तत्र) उस विषय में (वार्धकं उपायं) बूढ़े का रूप धारण करना अच्छा उपाय (औहत) सोचा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (देहिनां) लोगों के (बालाः वृद्धाः च) बालक और वृद्ध (करुणामात्रपात्रं) अपराध हो जाने पर भी करुणा के ही पात्र {भवन्ति} होते हैं।

वार्धकं तत्क्षणे चास्य मनुमाहात्म्यतोऽभवत्।

अनवद्या सती विद्या फलमूकापि किं भवेत्॥९॥

अन्वयार्थ- (मनुमाहात्म्यतः) मन्त्र की महिमा से (अस्य) इन जीवन्धरकुमार का (तत्क्षणे) उसी समय (वार्धकं) बूढ़े का रूप (अभवत्) हो गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अनवद्या) निर्दोष (सती) समीचीन (विद्या) विद्या (अपि किं) क्या कभी (फलमूका) फलरहित (भवेत्) होती है? {किन्तु न भवेत्} किन्तु नहीं होती।

विजहार पुनश्चायं वर्षीयान्परितः पुरीम्।

अन्यैरशङ्कनीया हि वृत्तिर्नीतिज्ञगोचराः॥१०॥

अन्वयार्थ- (पुनः च) और फिर (अयं वर्षीयान्) यह बूढ़ा (पुरीं परितः) उस नगरी के चारों ओर (विजहार) विहार करने लगा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (नीतिज्ञगोचराः) नीतिज्ञ पुरुष की (वृत्तिः) चाल (अन्यैः) दूसरों से (अशङ्कनीया भवति) शंका करने योग्य नहीं होती है।

प्रवयोविप्रवेषं तं वीक्षमाणा विवेकिनः।

विषयेषु व्यरज्यन्त वार्धकं हि विरक्तये॥११॥

अन्वयार्थ- (प्रवयोविप्रवेषं) बूढ़े ब्राह्मण के वेषधारी (तं) उसको (वीक्षमाणाः) देखनेवाले (विवेकिनः) विवेकी पुरुष (विषयेषु) इन्द्रियों के विषयों में (व्यरज्यन्त) विरक्त हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वार्धकं) बुढ़ापा (विरक्तये भवति) विरक्ति के लिए ही होता है।

माक्षिकापक्षतोऽप्यच्छे मांसाच्छादनचर्मणि।

लावण्यं भ्रान्तिरित्येतन्मूढेभ्यो वक्ति वार्धकम्॥१२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (वार्धकं) बुढ़ापा (मूढेभ्यः) मूढ़ मनुष्यों से (माक्षिकापक्षतः) मक्खियों के पंखों से भी (अच्छे) पतले (मांसाच्छादन चर्मणि) शरीर के मांस को ढकनेवाले चमड़े में (लावण्यं भ्रान्तिः) सुन्दरता मानना सर्वथा भ्रम है (इति एतत्) इस बात को (वक्ति) कहता है।

प्रतिक्षणविनाशीदमायुः कायमहो जडाः।

नैव बुध्यामहे किन्तु कालमेव क्षयात्मकम्॥१३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (जडाः) हे मूर्खों! (इदं) यह (आयुः कायं) आयु और शरीर (प्रतिक्षणविनाशि) क्षण-क्षण में नाश होनेवाला है; किन्तु (अहो) खेद है! (वयं) हम सब (न एव बुध्यामहे) नहीं जानते हैं (किन्तु कालं एव) किन्तु समय/काल को ही (क्षयात्मकं बुध्यामहे) नष्ट होनेवाला समझते हैं।

हन्त लोको वयस्यन्ते किमन्यैरपि मातरम्।

मन्यते न तृणायापि मृतिः श्लाघ्या हि वार्धकात्॥१४॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है! (लोकः) मनुष्य (अन्ते वयसि) बुढ़ापे में (मातरं अपि) जन्म देनेवाली माता को भी (तृणाय अपि न मन्यते) तृण के समान भी नहीं समझता है (अन्यैः किं) औरों का तो फिर कहना ही क्या है? (हि यतः) इसलिए (वार्धकात्) बुढ़ापे से (मृतिः) तो मरना ही (श्लाघ्या) अच्छा है।

इत्याद्यूहं च हास्यं च जनयन्प्राज्ञबालयोः।

अगारं सुरमज्जर्याः वर्षीयान्पुनरासदत्॥१५॥

अन्वयार्थ- (प्राज्ञबालयोः) बुद्धिमान और बालकों के (इत्यादि) इसप्रकार (ऊहं) विचार (च) और (हास्यं) हास्य को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (वर्षीयान्) यह बूढ़ा (पुनः) फिर (सुरमज्जर्याः अगारं) सुरमज्जरी के घर (आसदत्) पहुँचा।

पृष्टो दौवारिकस्त्रीभिराचष्ट फलमागतेः।

कुमारीतीर्थमात्मार्यं न ह्यसत्यं सतां वचः॥१६॥

अन्वयार्थ- (दौवारिकस्त्रीभिः) द्वार की रक्षा करनेवाली स्त्रियों से (पृष्टः) पूछे हुए प्रश्न का इस बूढ़े ने (आगतेः फलं) अपने आने के कारण को (आत्मार्यं) आत्मा के कल्याण के लिए (कुमारीतीर्थं) कुमारी तीर्थ में स्नान करने के लिए आया हूँ (इति) इसप्रकार (आचष्ट) कहा। (हि) निश्चय से (सतां वचः) सज्जन पुरुषों का वचन (असत्यं न) झूठा नहीं {भवति} होता है।

अहसन्नथ तद्वाक्यादङ्गना अप्यसङ्गतात्।

अविवेकिजनानां हि सतां वाक्यमसङ्गतम्॥१७॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (अङ्गनाः) द्वार की रक्षा करनेवाली स्त्रियाँ (अपि) भी (असङ्गतात्) असम्बद्ध/बेतुकी (तद्वाक्यात्) उसकी बात से (अहसन्) हँस पड़ीं।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (अविवेकिजनानां) अविवेकी पुरुषों को (सतां वाक्यं) सज्जन पुरुषों का वचन (असङ्गतं) असम्बद्ध {भासते} भासित होता है।

अरुद्धः कृपया ताभिरगाहिष्ट च तद्गृहम्।

सर्वथा दग्धबीजाभाः कुतो जीवन्ति निर्घृणाः॥१८॥

अन्वयार्थ- (ताभिः) उन स्त्रियों से (कृपया) कृपा करके (अरुद्धः) नहीं रोका हुआ वह बूढ़ा (तद्गृहं) सुरमज्जरी के घर में (अगाहिष्ट) चला गया।

[अत्र नीतिः/] (हि) निश्चय से (दग्धबीजाभाः) जले हुए बीज की तरह आभावाने (सर्वथा निर्घृणाः) सर्वथा दयारहित जीव (कुतः) कैसे (जीवन्ति) जी सकते हैं?

अभ्यधुः सुरमज्जर्याः सुन्दर्यः सभया इदम्।

सभयस्नेहसामर्थ्याः स्वाम्यधीना हि किङ्कराः॥१९॥

अन्वयार्थ- फिर (सुन्दर्यः) द्वार रक्षक सुन्दरियों ने (सभयाः) भयसहित (सुरमज्जर्याः) सुरमज्जरी से (इदं अभ्यधुः) यह सब बात कह दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वाम्यधीनाः) स्वामी के अधीन (किङ्कराः) नौकर (सभयस्नेहसामर्थ्याः) भय और स्नेह की सामर्थ्यवाले {भवन्ति} होते हैं।

पुरुषद्वेषिणी सापि वर्षीयांसं न्यशामयत्।

भवितव्यानुकूलं हि सकलं कर्म देहिनाम्॥२०॥

अन्वयार्थ- (पुरुषद्वेषिणी सा अपि) पुरुषों से द्वेष करनेवाली उस सुरमञ्जरी ने भी (वर्षीयांसं) उस बूढ़े को (न्यशामयत्) बिठा लिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (देहिनां) जीवों के (सकलं कर्म) सम्पूर्ण कार्य (भवितव्यानुकूलं भवन्ति) होनहार के अनुसार ही हुआ करते हैं।

बुभुक्षितं तमालक्ष्य भोजयामास सा सती।

अन्तस्तत्त्वस्य याथात्म्ये न हि वेषो नियामकः॥२१॥

अन्वयार्थ- (सा सती) उस श्रेष्ठ कन्या ने (तं बुभुक्षितं आलक्ष्य) उस बूढ़े को भूखा समझकर (भोजयामास) भोजन कराया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वेषः) बाहरी वेष (अन्तस्तत्त्वस्य) भीतरी/अन्दर स्वरूप के (याथात्म्ये) यथार्थता को (निमायकः न) {भवति} जतानेवाला नहीं होता है।

भुक्त्वाथ वार्धकेनेव सुष्वाप तलिमे कृती।

योग्यकालप्रतीक्षा हि प्रेक्षापूर्वविधायिनः॥२२॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (कृती) वह बुद्धिमान बूढ़ा (भुक्त्वा) भोजन करके (वार्धकेन इव) बुढ़ापे की थकावट से ही मानो (तलिमे) किसी शय्या पर (सुष्वाप) आराम करने के लिए सो गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्रेक्षापूर्वविधायिनः) विचारपूर्वक कार्य करनेवाले मनुष्य (योग्यकालप्रतीक्षाः) योग्य/उत्तम समय की राह देखनेवाले {भवन्ति} होते हैं।

भुवनमोहनं गानमगासीदथ गानवित्।

परस्परातिशायी हि मोहः पञ्चेन्द्रियोद्भवः॥२३॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (गानवित्) गानविद्या के जाननेवाले उस बूढ़े ने (भुवनमोहनं) जगत को मोहित करनेवाला (गानं) गीत (अगासीत्) गाया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पञ्चेन्द्रियोद्भवः) पाँचों इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ (मोहः) मोह (विषयों में प्रीति) (परस्परातिशायी) एक-दूसरे से अधिकाधिक प्रभावित करनेवाला {भवति} होता है।

गानकौशलतः सैनं शक्तिमन्तममन्यत।

विशेषज्ञा हि बुध्यन्ते सदसन्तौ कुतश्चन॥२४॥

अन्वयार्थ- (सा) उस सुरमञ्जरी ने (गानकौशलतः) गाने की कुशलता से (एनं) इस बूढ़े को (शक्तिमन्तं) और कार्य करने में भी शक्तिवाला (अमन्यत) समझा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विशेषज्ञाः) विशेष बात को जाननेवाले मनुष्य (कुतश्चन) किसी न किसी कारण से (सदसन्तौ) सत्-असत् बात का (बुध्यन्ते) निश्चय कर लिया करते हैं।

ततः स्वकार्यमप्यस्मात्सादराभूत्परीक्षितम्।
स्वकार्येषु हि तात्पर्यं स्वभावादेव देहिनाम्॥२५॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसलिए (सा) वह सुरमज्जरी (अस्मात्) उस बूढ़े ब्राह्मण से (स्वकार्यं) अपने कार्य की (परीक्षितुं अपि) परीक्षा करने के लिए भी (सादरा अभूत्) आदरयुक्त हुई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (देहिनां) देहधारियों को (स्वभावात्) स्वभाव से ही (स्वकार्येषु) अपने कार्यों में (तात्पर्यं भवति) तत्परता हुआ करती है।

गानवच्छक्तिरन्यत्र किमस्तीत्यन्वयुङ्क्त सा।
याज्यायां फलमूकायां न हि जीवन्ति मानिनः॥२६॥

अन्वयार्थ- (सा) उस सुरमज्जरी ने (गानवत्) गाने के सदृश (अन्यत्र अपि) दूसरे कार्यों में भी (किं) क्या तुम्हारी (शक्तिः अस्ति) शक्ति है? (इति) इसप्रकार (अन्वयुङ्क्त) पूछा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (याज्यायां) याचना के (फलमूकायां) निष्फल होने पर (मानिनः) मानी पुरुष का (न जीवन्ति) जीवित रहना कठिन हो जाता है।

वाढमस्ति समस्तेपीत्यब्रवीत्प्रौढनैपुणः।

उक्तिचातुर्यतो दाढ्यमुक्तार्थे हि विशेषतः॥२७॥

अन्वयार्थ- (प्रौढनैपुणः) अत्यन्त चतुर उस बूढ़े ने (वाढं) हाँ (मम शक्तिः) मेरी शक्ति (समस्ते अपि) सम्पूर्ण विषयों में (अस्ति) है। (इति) इसप्रकार (अब्रवीत्) कहा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (उक्तार्थे) कहे हुए पदार्थ के विषय में (उक्तिचातुर्यतः) कहने की चतुरता से ही (विशेषतः) बहुत (दाढ्यं) दृढ़ता {भवति} होती है।

अभीप्सितवरप्राप्तावुपायं साप्ययाचत।

रागान्धे हि न जागर्तियाज्चादन्यवितर्कणम्॥२८॥

अन्वयार्थ- (सा अपि) उस सुरमज्जरी ने भी (अभीप्सितवरप्राप्तौ) अपने चाहे हुए वर की प्राप्ति विषयक (उपायं अयाचत) उपाय की याचना की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (रागान्धे) प्रेम से अन्धे मनुष्य (याज्चादन्यवितर्कणं) याचना सम्बन्धी दीनता का विचार (न जागर्ति) नहीं होता।

कामं कामप्रदं सोऽयं कामदेवमुपादिशत्।

मनीषितानुकूलं हि प्रीणयेत्प्राणिनां मनः॥२९॥

अन्वयार्थ- फिर (सः अयं) उस बूढ़े ने (कामं) अतिशय रीति से (कामप्रदं) सब मनोरथों को सफल करनेवाला (कामदेवं) कामदेव की पूजा का (उपादिशत्) उपदेश दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मनीषितानुकूलं) इष्ट मनोरथ के अनुकूल कहना ही (प्राणिनां मनः) जीवों के मन को (प्रीणयेत्) प्रसन्न करता है।

मनीषितं च हस्तस्थं मेने सा सुरमञ्जरी।

मनोरथेन तृप्तानां मूललब्धौ तु किं पुनः॥३०॥

अन्वयार्थ- (सा सुरमञ्जरी) उस सुरमञ्जरी ने (मनीषितं) अपने-मनोरथ को (हस्तस्थं) अपने हाथ में आया हुआ (मेने) समझा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मनोरथेन तृप्तानां) मनोरथ से सन्तुष्ट होनेवाले मनुष्यों को (मूललब्धौ) यदि मूल पदार्थ मिल जाए (तु) तो (पुनः) फिर (किं) {वक्तव्यं} कहना ही क्या है?

अनैषीत्तामसौ पश्चात्कामकोष्ठं यथेप्सितम्।

विचाररूढकृत्यानां व्यभिचारः कुतो भवेत्॥३१॥

अन्वयार्थ- (पश्चात्) फिर (असौ) यह बूढ़ा ब्राह्मण (यथेप्सितं) निश्चित किए हुए (कामकोष्ठं) कामदेव के मन्दिर में (तां) उसको (अनैषीत्) ले गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विचाररूढकृत्यानां) विचारपूर्वक कार्य करनेवाले पुरुषों के (व्यभिचारः) कार्य में हानि (कुतः) कैसे (भवेत्) हो सकती है?

कामं सा प्रार्थयामास जीवकस्वामिकाम्यया।

जन्मान्तरानुबन्धौ हि रागद्वेषौ न नश्यतः॥३२॥

अन्वयार्थ- (सा) उस कुमारी ने (जीवकस्वामिकाम्यया) जीवन्धरकुमार की प्राप्ति होने की इच्छा से (कामं) कामदेव से (प्रार्थयामास) प्रार्थना की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (जन्मान्तरानुबन्धौ) जन्म-जन्मान्तर से बँधे हुए (रागद्वेषौ) राग और द्वेष (न नश्यतः) नाश नहीं होते हैं।

लब्धो वर इति प्रोक्तं बुद्धिषेणेन सा सती।

मनोभुवो वचो मेने स्त्रीणां मौढ्यं हि भूषणम्॥३३॥

अन्वयार्थ- (तदा) उससमय (सा सती) उस श्रेष्ठ कन्या ने (लब्धः वरः) तूने अपने वर को प्राप्त कर लिया (इति) इसप्रकार (बुद्धिषेणेन प्रोक्तं) बुद्धिसेन से कहे हुए वचन को (मनोभुवः) कामदेव का (वचः) वचन (मेने) समझा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्त्रीणां) स्त्रियों का (मौढ्यं) मूढता ही (भूषणं) भूषण {अस्ति} है।

कुमारं दर्शिताकारं दृष्ट्वा जिह्वाय तत्क्षणे।

मृतकल्पा हि कल्पन्ते निर्लज्जा निष्कृपा इव॥३४॥

अन्वयार्थ- फिर वह कन्या (तत्क्षणे) उसी समय (दर्शिताकारं) दिखलाया है असली रूप जिन्होंने ऐसे (कुमारं) जीवन्धरकुमार को (दृष्ट्वा) देखकर (जिह्वाय) लज्जित हुई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (निर्लज्जाः) लज्जारहित पुरुष (निष्कृपाः इव) दयाहीन पुरुषों की तरह (मृतकल्पाः) जीते हुए

भी मरे हुए के समान (कल्पन्ते) कल्पना किए जाते हैं/माने जाते हैं।

पतिकृत्येन पत्नीं तां सुतरां सोऽप्यतोषयत्।
संसारोऽपि हि सारः स्याद्दम्पत्योरेककण्ठयोः॥३५॥

अन्वयार्थ- वहाँ (सः अपि) उन जीवन्धरकुमार ने भी (पतिकृत्येन) पतिकृत्य प्रेमालापदि द्वारा (तां पत्नीं) उस स्त्री को (सुतरां) अत्यन्त (अतोषयत्) सन्तोषित किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (दम्पत्योः एककण्ठयोः) स्त्री पुरुष के एक-सा प्रेम होने पर (संसारः अपि) संसार भी (सारः स्यात्) साररूप हो जाता है।

ततः कुबेरदत्तेन दत्तां तां सुरमञ्जरीम्।
सुमतेरात्मजां सोऽयमुपयेमे यथाविधि॥३६॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (सः अयं) उन्हीं जीवन्धरकुमार ने (कुबेरदत्तेन दत्तां) कुबेरदत्त द्वारा दी हुई (सुमतेः आत्मजां) सुमति की पुत्री (तां सुरमञ्जरीं) उस सुरमञ्जरी को (यथाविधि) विधिपूर्वक (उपयेमे) ब्याहा।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ
सुरमञ्जरीलम्भो नाम नवमो लम्बः समाप्तः।

दशमो लम्बः

अथ पाणिगृहीतीं तां बहु मेने बहुप्रियः।

बहुयत्नोपलब्धे हि प्रेमबन्धो विशिष्यते॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (बहुप्रियः) अनेक स्त्रियों के पति जीवन्धरकुमार ने (तां पाणिगृहीतीं) नव परिणीता सुरमज्जरी पत्नी को (बहु मेने) बहुत सन्मान दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (बहुयत्नोपलब्धे) बहुत यत्न से प्राप्त वस्तु में (प्रेमबन्धः) प्रेम का सम्बन्ध (विशिष्यते) विशेष हुआ ही करता है।

कृच्छ्रेणाराध्य तां भूयो मित्राणां पार्श्वमाश्रितः।

स्वामीच्छाप्रतिकूलत्वं कुलजानां कुतो भवेत्॥२॥

अन्वयार्थ- (भूयः) फिर जीवन्धरकुमार (तां) उस स्त्री को (कृच्छ्रेण) किसी न किसी प्रकार से (आराध्य) समझा-बुझा करके (मित्राणां पार्श्वं) अपने मित्रों के समीप (आश्रितः) आ गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कुलजानां) कुलीन स्त्रियों के (स्वामीच्छाप्रतिकूलत्वं) अपने स्वामी की इच्छा के विरुद्धपना (कुतः) कैसे (भवेत्) हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

सचित्रीयैस्तदा मित्रैः पित्रोरन्तिकमाययौ।

आत्मदुर्लभमन्येन सुलभं हि विलोचनम्॥३॥

अन्वयार्थ- (तदा) उससमय सुरमज्जरी के सहज मिल जाने से (सचित्रीयैः) आश्चर्य युक्त (मित्रैः) मित्रों के साथ जीवन्धरकुमार (पित्रोः) सुनन्दा व गन्धोत्कट (माता-पिता) के (अन्तिकं) समीप (आययौ) आए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (आत्मदुर्लभं) अपने आपको दुर्लभ वस्तु यदि (अन्येन सुलभं) दूसरे को सहज ही मिल जाए तो (विलोचनं) विस्मय को करनेवाली ही {भवति} होती है।

पित्रोरप्यतिमात्रोऽभूत्पुत्रस्नेहोऽस्य वीक्षणात्।
कस्यानन्दकरो न स्यात्कृतान्तास्यादपागतः॥४॥

अन्वयार्थ- (अस्य वीक्षणात्) इनके देखने से (पित्रोः अपि) जीवन्धरकुमार के माता-पिता को भी (अतिमात्रः) अतिशय (पुत्रस्नेहः अभूत्) पुत्र प्रेम उत्पन्न हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कृतान्तास्यात्) मृत्यु के मुख से (अपागतः) {पुत्रः} निकला हुआ पुत्र (कस्य) किसको (आनन्दकरः न स्यात्) आनन्द करनेवाला नहीं होता है? अर्थात् सभी को होता है।

ततो गन्धर्वदत्ता च गुणमाला च वल्लभे।
उल्लाघतां क्रमान्नीते नीतिरेषा हि संसृतौ॥५॥

अन्वयार्थ- (ततः) फिर जीवन्धरकुमार (गन्धर्वदत्ता गुणमाला च वल्लभे) अपनी प्यारी पत्नियों गन्धर्वदत्ता और गुणमाला से

(क्रमात्) क्रमशः मिलकर (उल्लाघतां) प्रसन्नता को (नीते) प्राप्त हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (संसृतौ) संसार में (एषा) क्रमशः कार्य करना ही (नीतिः) नीति है।

अथ गन्धोत्कटेनायं मन्त्रयित्वा ततो ययौ।

विधित्सिते ह्यनुत्पन्ने विरमन्ति न पण्डिताः॥६॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (अयं) यह जीवन्धरकुमार (गन्धोत्कटेन सह) गन्धोत्कट के साथ (मन्त्रयित्वा) सलाह करके (ततः ययौ) वहाँ से चले गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पण्डिताः) विद्वान् पुरुष (विधित्सिते) इच्छित कार्य के (अनुत्पन्ने) पूर्ण नहीं होने तक (न विरमन्ति) विश्राम नहीं लेते हैं।

विदेहाख्ये ततो देशे धरण्यास्तिलकोपमाम्।

तिलकान्त धरण्याख्यां राजधानीमशिश्रयत्॥७॥

अन्वयार्थ- (ततः) वहाँ से चलकर जीवन्धरकुमार (विदेहाख्ये देशे) विदेह नाम के देश में (तिलकोपमां) तिलक के समान (तिलकान्तधरण्याख्यां) धरणीतिलका नाम की (राजधानीं) राजधानी में (अशिश्रयत्) पहुँचे।

महितो मातुलेनात्र विदेहाधिपभूभुजा।

भागिनेयो महाभागो मह्यां केन न मह्यते॥८॥

अन्वयार्थ- (अत्र) यहाँ (विदेहाधिपभूभुजा) विदेह देश के स्वामी- राजा (मातुलेन) इनके मामा ने (महितः) इनका बड़ा आदर- सत्कार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मह्यां) पृथ्वी में (महाभागः) भाग्यशाली (भागिनेयः) बहिन के पुत्र अर्थात् भानजे का (केन न मह्यते) कौन आदर नहीं करता?

आसीद्गोविन्दराजोऽपि तद्राज्यस्थापनोद्यतः।
स्वयं परिणतो दन्ती प्रेरितोऽन्येन किं पुनः॥९॥

अन्वयार्थ- (गोविन्दराजः अपि) गोविन्दराज भी (तद्राज्य-स्थापनोद्यतः) जीवन्धरकुमार के गए हुए राज्य को फिर से स्थापन करने के लिए तैयार (आसीत्) हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वयं परिणतः दन्ती) अपने आप ही दन्तप्रहार करनेवाला हाथी (अन्येन प्रेरितः) यदि दूसरे से प्रेरित किया जाए तो (किं पुनः) {वक्तव्यं} फिर कहना ही क्या है?

मन्त्रिभिर्मन्त्रशालायां मन्त्रयामास मन्त्रवित्।
न ह्यमन्त्रं विनिश्चयं निश्चिते च न मन्त्रणम्॥१०॥

अन्वयार्थ- (मन्त्रवित्) मन्त्र के जाननेवाले राजा ने (मन्त्रशालायां) मन्त्रशाला में (मन्त्रिभिः) मन्त्रियों के साथ (मन्त्रयामास) सलाह की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अमन्त्रं) विचार-विमर्श बिना {किमपि कार्यं} किसी भी कार्य का (न विनिश्चयं) निश्चय नहीं

करना चाहिए। (च निश्चिते) और विचार-विमर्श करके निश्चय हो जाने पर (मन्त्रणं न) फिर विचार-विमर्श {करणीयम्} नहीं करना चाहिए।

काष्ठाङ्गारस्य संदेशं सचिवैः शुश्रुवानयम्।

ज्ञात्वा हि हृदयं शत्रोः प्रारब्धव्या प्रतिक्रिया॥११॥

अन्वयार्थ- (अयं) इस गोविन्दराज ने (सचिवैः) मन्त्रियों द्वारा (काष्ठाङ्गारस्य) काष्ठांगार का यह वक्ष्यमाण (सन्देशं) सन्देश (शुश्रुवान्) सुना।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (शत्रोः) शत्रु का (हृदयं) मन (ज्ञात्वा) जानकर ही (प्रतिक्रिया) प्रतिकार (प्रारब्धव्या) आरम्भ करना चाहिए।

अघेनाहमपख्यातिं राजघे मदहस्तिनि।

लब्धवानवबुध्येत मिथ्येयं तत्त्ववेदिना॥१२॥

अन्वयार्थ- (राजघे मदहस्तिनि) राजा सत्यन्धर के एक मदीन्मत्त-हाथी के द्वारा मारे जाने पर (अघेन) मेरे पापोदय से (अहं) मैंने ही (अपख्यातिं) उनकी मृत्यु के अपयश को (लब्धवान्) प्राप्त किया, किन्तु (तत्त्ववेदिना) यथार्थ बात के जाननेवाले (इयं) यह बात (मिथ्या) झूठी (अवबुध्येत) समझते हैं।

निःशल्योऽहं भवाम्येष भवत्यत्र समागते।

दुर्जनेऽपि हि सौजन्यं सुजनैर्यदि सङ्गमः॥१३॥

अन्वयार्थ- (भवति) आपके (अत्र) यहाँ (समागते) आने पर (एषः अहं) अपयशी मैं (निःशल्यः) निःशल्य (भवामि) हो जाऊँगा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (यदि) अगर (सुजनैः) सज्जन पुरुषों के साथ (सङ्गमः) समागम हो जाए तो (दुर्जने अपि) दुष्ट पुरुष में भी (सौजन्यं) सज्जनता {भवति} आ जाती है।

इत्युक्त्या निश्चितोऽरातिरतिसन्धित्सुरञ्जसा।

असतां हि विनम्रत्वं धनुषामिव भीषणम्॥१४॥

अन्वयार्थ- (इति उक्त्या) राजा गोविन्दराज ने काष्ठांगार के इस सन्देश से (अरातिः) शत्रु (अञ्जसा) निश्चय से/वास्तविक (अति-सन्धित्सुः) धोखा देना चाहता है। (इति) यह (निश्चितः) निश्चय किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (असतां विनम्रत्वं) दुर्जनों का नम्र होना (धनुषां इव) धनुष के सदृश (भीषणं) भयंकर {भवति} होता है।

विप्रलम्भोत्सुके शत्रौ कार्यान्धोऽयमतप्यत।

दुर्जनाग्रे हि सौजन्यं कर्दमे पतितं पयः॥१५॥

अन्वयार्थ- (कार्यान्धः) अपने कार्य में अन्ध अर्थात् जिसे अपने काम के सिवाय दूसरा कुछ नहीं सूझता-ऐसे (अयं) यह गोविन्दराज (विप्रलम्भोत्सुके) धोखा देने में उत्सुक (शत्रौ) शत्रु के ऊपर (अतप्यत) अत्यन्त तप्तायमान हुए, क्रोधित हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (दुर्जनाग्रे) दुष्ट पुरुष के सामने (सौजन्यं) सज्जनता (कर्दमे) कीचड़ में (पयः पतितं) दूध फेंकने के समान है।

आहूतास्तेन साकूतं गच्छामस्तच्छलाद्वयम्।
इत्युच्चैर्निश्चिकायासौ बकायन्ते हि जिष्णवः॥१६॥

अन्वयार्थ- (तेन) उस काष्ठांगार द्वारा (साकूतं) छल से/किसी खोटे अभिप्राय से (आहूताः) बुलाए हुए (वयं) हम लोग भी (तच्छलात्) इस निमित्त से (गच्छामः) वहाँ चलें। (इति) इसप्रकार (असौ) इस गोविन्दराज ने (उच्चैः निश्चिकाय) अच्छी तरह से निश्चय किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (जिष्णवः) शत्रुओं को जीतनेवाले राजा लोग (बकायन्ते) बगुले के सदृश आचरण करते हैं।

काष्ठाङ्गारेण सज्जातं सख्यं प्रख्यापयन्नसौ।
डिण्डिमं ताडयामास गतेर्वार्ता हि पूर्वगा॥१७॥

अन्वयार्थ- (काष्ठाङ्गारेण सह) काष्ठांगार के साथ (सख्यं) हमारी मित्रता (सज्जातं) हो गई। (इति) ऐसा (प्रख्यापयन्) प्रसिद्ध करते हुए (असौ) इस राजा ने (डिण्डिमं) ढिंढोरा (ताडयामास) पिटवा दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वार्ता) समाचार (गतेः पूर्वगा) व्यक्ति जाने से पहले पहुँचता है।

चातुरङ्गबलं पश्चाच्चतुरोऽयं न्यशामयत्।

आलोच्यात्मारिकृत्यानां प्राबल्यं हि मतो विधिः॥१८॥

अन्वयार्थ- (पश्चात्) इसके अनन्तर (अयं चतुरः राजा) इस चतुर राजा ने (चातुरङ्गबलं) अपनी चतुरंगिणी बड़ी भारी सेना को (न्यशामयत्) चलने के लिए तैयार किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (आत्मारिकृत्यानां) अपनी और शत्रु के कार्यों की (प्राबल्यं) प्रबलता को (आलोच्य) विचार करके ही (विधिः मतः) कोई कार्य करना निश्चित किया जाता है।

प्रतस्थे चाथ सल्लग्ने पात्रदानादिपूर्वकम्।

दानपूजातपः शीलशालिनां किं न सिध्यति॥१९॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (सल्लग्ने) शुभलग्न में (पात्र-दानादिपूर्वकं) पात्रदानादि पुण्यकर्म पूर्वक जीवन्धरकुमार सहित गोविन्दराज (प्रतस्थे च) वहाँ से निकले।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (दानपूजातपः शीलशालिनां) दान, पूजा, तप और शीलादिक का पालन करनेवाले मनुष्यों के (किं) क्या (न सिध्यति) सिद्ध नहीं होता है? अर्थात् उनके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

अथ राजपुरीं प्राप्य राजा कैश्चित्प्रयाणकैः।

निकषा तत्पुरीं क्वापि निषसाद महाबलः॥२०॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (महाबलः) बड़ी भारी सेना का स्वामी (राजा) यह गोविन्दराज (कैश्चित् प्रयाणकैः) कई पड़ाव डालने के अनन्तर (राजपुरीं प्राप्य) राजपुरी को प्राप्त कर (तत्पुरीं

निकषा) उस राजपुरी नगरी के समीप (क्व अपि) कहीं पर (निषसाद) ठहर गया।

प्राभृतं प्राहिणोत्तस्य काष्ठाङ्गारो मुधा मुहुः।
हन्त कापटिका लोके बुधायन्ते हि मायया॥२१॥

अन्वयार्थ- (काष्ठाङ्गारः) काष्ठांगार ने (तस्य पार्श्वे) उस गोविन्दराज के पास (मुधा) व्यर्थ (मुहुः) बार बार (प्राभृतं) बहुत सी भेंट (प्राहिणोत्) भेजीं।

[अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है! कि (हि) निश्चय से (लोके) संसार में (कापटिका) कपटी लोग (मायया) माया से (बुधायन्ते) पण्डित पुरुषों के समान आचरण करते हैं।

प्रतिप्राभृतमेतस्मै प्राहैषीत्स्वामिमातुलः।
आ समीहितनिष्पत्तेराराध्याः खलु वैरिणः॥२२॥

अन्वयार्थ- (स्वामिमातुलः) जीवन्धरकुमार के मामा ने भी (एतस्मै) इस काष्ठांगार के लिए (प्रतिप्राभृतं) भेंट के बदले में भेंट (प्राहैषीत्) भेजी।

[अत्र नीतिः] (खलु) निश्चय से (आ समीहितनिष्पत्तेः) अपने मनोरथ की सिद्धि पर्यन्त (वैरिणः) शत्रु भी (आराध्याः) आराधना करने योग्य {भवन्ति} होते हैं।

कन्याशुल्कतया लोके यन्त्रभेदमघोषयत्।
उपायप्रष्टरूढा हि कार्यनिष्ठानिरङ्कुशाः॥२३॥

अन्वयार्थ- फिर गोविन्दराज ने (लोके) लोक में (कन्याशुल्कतया) कन्या के मूल्यरूप से (यन्त्रभेदं अघोषयत्) यन्त्र भेद की घोषणा कराई अर्थात् यह घोषणा कराई कि जो चन्द्रक यन्त्र का भेदन करेगा, उससे अपनी कन्या का विवाह करूँगा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (उपायप्रष्टरूढाः) सदुपाय में तत्पर पुरुष (कार्यनिष्ठानिरङ्कुशाः) नियम से कार्य को विघ्नरहित सिद्ध करनेवाले {भवन्ति} होते हैं।

धनुर्धराश्च सम्भूतास्त्रैवर्णिककुलोद्भवाः।

आमोहो देहिनामास्थामस्थानेऽपि हि पातयेत्॥२४॥

अन्वयार्थ- तदन्तर (त्रैवर्णिककुलोद्भवाः) तीनों वर्णों के कुल में उत्पन्न (धनुर्धराः) धनुर्धारी (सम्भूताः) वहाँ आकर इकट्ठे हो गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (आमोहः) जबतक मोह रहता है तबतक वह मोह (देहिनां) जीवों की (आस्थां) बुद्धि अथवा श्रद्धा का (अस्थाने अपि) नहीं पाने योग्य वस्तु में भी (पातयेत्) पतन करा देता है।

ततश्चन्द्रकयन्त्रस्थवराहत्रय भेदने।

न शेकुश्चापिनः सर्वे क्व विद्या पारगामिनी॥२५॥

अन्वयार्थ- (ततः) फिर (सर्वे चापिनः) सर्व धनुर्धारी (चन्द्रक-यन्त्रस्थवरात्रयभेदने) चन्द्रक यन्त्र में बने हुए वराहों के भेदने में (न शेकुः) समर्थ नहीं हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पारगामिनी) परिपूर्ण (विद्या) विद्या (क्व) कहाँ होती है?

अलातचक्रतः शीघ्रं चक्रमारुह्य हेलया।

विव्याध विजयासूनुर्भानुः किं न तमोहरः॥२६॥

अन्वयार्थ- (विजयासूनुः) विजया रानी के पुत्र जीवन्धरकुमार ने (चक्रं आरुह्य) चन्द्रक यन्त्र पर चढ़कर (हेलया) क्रीड़ा मात्र से (शीघ्रं) शीघ्र ही (अलातचक्रतः) अलातचक्र से तीनों वराहों का (विव्याध) भेदन कर दिया।

[अत्र नीतिः] निश्चय से (किं) क्या (भानुः) सूर्य (तमोहरः) {न भवति} अन्धकार को नाश करनेवाला नहीं है? किन्तु है ही।

अथ गोविन्दराजोऽपि राज्ञामित्थमचीकथत्।

सात्यन्धरिरयं हीति स्थाने हि कृतिनां गिरः॥२७॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (गोविन्दराजः अपि) गोविन्दराज ने भी (राज्ञां समक्षं) वहाँ राजाओं के सामने (अयं सात्यन्धरिः) यह सत्यन्धर महाराज के पुत्र हैं (इति इत्थं) इसप्रकार (अचीकथत्) कहा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कृतिनां) बुद्धिमान पुरुषों की (गिरः) वाणी (स्थाने) योग्य स्थान में ही {भवति} होती है।

राजानोऽप्येवमस्माभिरस्मारीत्यभ्यनन्दिषुः।

आचष्टे हि नरेन्द्रत्वमालीढादिषु पाटवम्॥२८॥

अन्वयार्थ- (राजानः अपि) यह बात सुनकर राजा लोगों ने भी (एवं) ऐसा (अस्माभिः) हम लोग भी (अस्मारि) स्मरण करते हैं (इति) इसप्रकार (अभ्यनन्दिषुः) राजपुत्र की प्रशंसा की। (हि) निश्चय से (आलीढादिषु पाटवं) आलीढादि पाँच स्थानों पर पाई गई चतुरता ने जीवन्धरकुमार के (नरेन्द्रत्वं) राजापने को (आचष्टे) प्रगट कर दिया अर्थात् धनुर्धारियों में जीवन्धरकुमार की चतुराई देखकर राजा लोगों ने यह निश्चय कर लिया कि ये अवश्य सत्यन्धर महाराज के ही पुत्र हैं।

काष्ठाङ्गारः कुमारस्य वीक्षणात्क्षीणमानसः।

तच्छ्रुतेर्मृत कल्पोऽयमनल्पाधिरचिन्तयत्॥२९॥

अन्वयार्थ- (कुमारस्य) जीवन्धरकुमार को (वीक्षणात्) देखने से (क्षीणमानसः) मन में खेद को प्राप्त हुआ (अयं काष्ठाङ्गारः) यह काष्ठाङ्गार (तच्छ्रुतेः) गोविन्द महाराज की वार्ता को सुनने से (मृतकल्पः) मरे हुए के समान (अनल्पाधिः) अत्यन्त मानसिक व्यथा से व्यथित होकर (अचिन्तयत्) विचार करने लगा।

सात्यन्धरौ च सत्यस्मिन्सद्यो हन्त वयं हताः।

वीरेण हि मही भोग्या योग्यतायां च किं पुनः॥३०॥

अन्वयार्थ- (सात्यन्धरौ अस्मिन् सति) काष्ठाङ्गार सोचता है कि इसके सत्यन्धर महाराज का पुत्र होने पर तो (हन्त) हाय! (वयं) हम सब (सद्यः) अभी (हताः) मारे गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मही) पृथ्वी (वीरेण) वीरों द्वारा (भोग्या) भोग्य {भवति} होती है (पुनः) फिर (योग्यतायां) सब

प्रकार की योग्यता रहने पर (तु किं वक्तव्यं) तो कहना ही क्या है?

कथमेनं वणिक्पाशं मथनोऽप्यवधीत्तदा।

आत्मनीने विनात्मानमज्जसा न हि कश्चन॥३१॥

अन्वयार्थ- (तदा) उससमय (मथनः अपि) मथन ने भी (एनं-वणिक्पाशं) इस कुत्सित वैश्य को (कथं) कैसे (अवधीत्) मारा?

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से इस लोक में (आत्मनीने) अपने हित के लिए (आत्मानं) अपने (विना) सिवाय (कश्चन) अन्य कोई (अज्जसा हितः न) सच्चा हितकारी नहीं {अस्ति} है।

दुराकूतः किमाहूतो मातुलोऽस्य मया मुधा।

स्ववधाय हि मूढात्मा कृत्योत्थापनमिच्छति॥३२॥

अन्वयार्थ- (मया) मैंने (दुराकूतः) दुष्ट अभिप्रायवाले (अस्य) इसके (मातुलः) मामा को (मुधा) व्यर्थ (किं) क्यों (आहूतः) बुलाया?

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मूढात्मा) मूर्ख पुरुष (स्ववधाय) अपने नाश के लिए (कृत्योत्थापनं) बेताल (व्यन्तर विशेष) के जगाने की अपने आप ही (इच्छति) इच्छा करता है।

गोविन्दराजयुक्तोऽयं दुर्दान्तः किं न विधित्सति।

मरुत्सखे मरुद्भूते मह्यां किं वा न दह्यते॥३३॥

अन्वयार्थ- (गोविन्दराजयुक्तः) राजा गोविन्दराज जिसका सहयोगी है। ऐसा (अयं दुर्दान्तः) यह कठिनाई से दमन होनेवाला

जीवन्धरकुमार (किं न विधित्सति) क्या नहीं करेगा? अर्थात् यह मेरे लिए सब अनिष्टों को करने के लिए समर्थ होगा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मरुद्भूते) वायु के वेग से प्रज्वलित (मरुत्सखे) अग्नि के होने पर (मह्यां) पृथ्वी में (किं वा) क्या कौन-सी वस्तु (न दह्यते) नहीं जलती है? अर्थात् सब भस्मीभूत हो जाता है।

इति चिन्ताकुलं शत्रुं स्वामिमित्राणि चिक्षिपुः।

विपदो वीतपुण्यानां तिष्ठन्त्येव हि पृष्ठतः॥३४॥

अन्वयार्थ- (स्वामिमित्राणि) जीवन्धरकुमार के मित्रों ने (इति) इसप्रकार (चिन्ताकुलं) चिन्ता से व्याकुल (शत्रुं) शत्रु काष्ठांगार को (चिक्षिपुः) भड़काया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (वीतपुण्यानां) जिनका पुण्यकर्म क्षीण हो गया है, उन पुरुषों के (विपदः) विपत्तियाँ (पृष्ठतः) पीछे (तिष्ठन्ति एव) लगी ही रहती हैं।

मत्सरी कौरवेणायं भर्त्सनादयुयुत्सत।

मत्सराणां हि नोदेति वस्तुयाथात्मयचिन्तनम्॥३५॥

अन्वयार्थ- फिर (अयं मत्सरी) मत्सरभाव रखनेवाले इस काष्ठांगार ने (भर्त्सनात्) ताड़न और अपमान से (कौरवेण सह) कुरुवंशी जीवन्धरकुमार के साथ (अयुयुत्सत) युद्ध करने की इच्छा की।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मत्सराणां) मत्सरी पुरुषों के (वस्तुयाथात्म्यचिन्तनं) पदार्थ के स्वरूप का विचार करना (न उदेति) नहीं होता है।

केचित्कौरवतः केचिद्वैरितोऽप्यभवन्नृपाः।

सुजनेतरलोकोऽयमधुना न हि जायते॥३६॥

अन्वयार्थ- {युद्धे} उस युद्ध में (केचित् नृपाः) कुछ राजा तो (कौरवतः) जीवन्धरकुमार की ओर (अभवन्) हो गए और (केचित्) कुछ (वैरितः अपि) शत्रु के पक्ष में (अभवन्) हो गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सुजनेतरलोकः) सज्जन और दुर्जन का पक्ष करनेवाला (अयं) यह संसार (अधुना) अभी (न जायते) नहीं हुआ है; किन्तु हमेशा से चला आ रहा है।

कौरवौ ऽप्याहवेऽरातिं लोकान्तरमजीगमत्।

दुर्बला हि बलिष्ठेन बाध्यन्ते हन्त संसृतौ॥३७॥

अन्वयार्थ- (कौरवः अपि) कुरुवंशी जीवन्धरकुमार ने भी (आहवे) संग्राम में (अरातिं) शत्रु को (लोकान्तरं अजीगमत्) परलोक पहुँचा दिया।

[अत्र नीतिः] (हन्त) खेद है! हाय! (हि) निश्चय से (संसृतौ) संसार में (दुर्बलाः) दुर्बल प्राणी (बलिष्ठेन) बलवानों से (बाध्यन्ते) हारते आए हैं।

अथ सङ्ग्रामसंरम्भं कौरवोऽयमवारयत्।

मुधावधादिभीत्या हि क्षत्रिया व्रतिनो मताः॥३८॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (अयं कौरवः) इस जीवन्धरकुमार ने शत्रु के मर जाने पर (सङ्ग्रामसंरम्भं) संग्राम के आरम्भ को (अवारयत्) बन्द कर दिया॥

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (मुधा) व्यर्थ, निष्प्रयोजन (वधादि-भीत्या) हिंसादिक पाँच पापों के डर से (क्षत्रियाः) क्षत्रिय लोग (व्रतिनः मताः) व्रती माने गए हैं।

वीरसूर्विजया जाता वीरपत्नी च मे सुता।

इत्युक्त्वा मातुलोऽप्येनमानन्दादभ्यनन्दयत्॥३९॥

अन्वयार्थ- (मातुलः अपि) जीवन्धरकुमार के मामा ने भी (विजया वीरसूः) मेरी बहिन विजया वीरपुत्र को (जाता) उत्पन्न करनेवाली (च) और (मे सुता) मेरी पुत्री (वीरपत्नी) वीर पुरुष की स्त्री (जाता) हुई (इति) इसप्रकार (उक्त्वा) कहकर (एनं) कुमार का (आनन्दात्) आनन्द से (अभ्यनन्दयत्) अभिनन्दन किया।

समन्ततः समायाताः सामन्तास्तं सिषेविरे।

समौ हि नाट्यसभ्यानां सम्पदां च लयोदयौ॥४०॥

अन्वयार्थ- फिर (समन्ततः) चारों ओर से (समायाताः) आए हुए (सामन्ताः) छोटे-छोटे देशों के राजा (तं सिषेविरे) उनकी सेवा करने लगे।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (नाट्यसभ्यानां) नाटक के सभ्यों अर्थात् दर्शकों के लिए (सम्पदां) नाटक के पात्र की सम्पत्ति का (लयोदयौ) नाश और उदय (समौ) तुल्य होता है।

राजपुर्यामगाच्चायमभिषेक्तुं जिनालयम्।
भगवद्विव्यसान्निध्ये निष्प्रत्यूहा हि सिद्धयः॥४१॥

अन्वयार्थ- - फिर यह जीवन्धरकुमार (राजपुर्यां) राजपुरी नगरी के अन्दर (अभिषेक्तुं) राज्याभिषेक से अभिषिक्त होने के लिए (जिनालयं) जिनमन्दिर में दर्शनार्थ (अगात्) गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भगवद्विव्यसान्निध्ये) भगवान की दिव्य समीपता होने पर (सिद्धयः) सिद्धियाँ (निष्प्रत्यूहाः भवन्ति) निर्विघ्न प्राप्त होती हैं।

तावता संन्यधात्तत्र यक्षो यक्षचरो मुदा।
फलमेव हि यच्छन्ति पनसा इव सज्जनाः॥४२॥

अन्वयार्थ- (तावता) उसी समय (यक्षचरः यक्षः) कुत्ते का जीव यक्ष (मुदा) हर्ष से (तत्र) वहाँ (संन्यधात्) आया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सज्जनाः) सज्जन पुरुष (पनसाः इव) कटहल के वृक्षों की तरह (फलं एव) फल को ही (यच्छन्ति) देते हैं।

अथ गोविन्दराजेन यक्षराजो यथाविधि।
अभ्यषिञ्चन्महाराजं कौरवं गुरुगौरवात्॥४३॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (यक्षराजः) यक्षेन्द्र ने (गोविन्दराजेन सह) गोविन्दराज के साथ (गुरुगौरवात्) बड़े गौरव से (महाराजं कौरवं) महाराजा जीवन्धरकुमार का (यथाविधि) विधिपूर्वक (अभ्यषिञ्चत्) राज्याभिषेक किया।

अयादापृच्छ्य राजेन्द्रं यक्षेन्द्रोऽपि स्वमन्दिरम्।
न ह्यासक्त्या तु सापेक्षो भानुः पद्मविकासने॥४४॥

अन्वयार्थ- (यक्षेन्द्रः अपि) यक्षेन्द्र भी (राजेन्द्रं आपृच्छ्य) राजेन्द्र से पूछकर (स्वमन्दिरं) अपने स्थान को (अयात्) चला गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भानुः) सूर्य (पद्मविकासने) कमलों के प्रफुल्लित होने पर (आसक्त्या) फिर किसी आसक्ति से (सापेक्षः न भवति) अपेक्षा नहीं करता है अर्थात् कमलों को खिलाकर फिर उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता हुआ अस्ताचल की ओर चला जाता है।

तर्पिताखिललोकोऽस्मात्सौधाभ्यन्तरमाश्रितः।
सिंहासनमलञ्चक्रे राजसिंहः क्रमागतम्॥ ४५॥

अन्वयार्थ- (तर्पिताखिललोकः) फिर प्रसन्न किया है सम्पूर्ण लोक को जिसने ऐसे (राजसिंहः) उन राजाओं में श्रेष्ठ जीवन्धरकुमार ने (अस्मात्) इस जिनमन्दिर से निकलकर (सौधाभ्यन्तरमाश्रितः) और अपने महल को प्राप्त करके (क्रमागतं) कुलपरम्परा से प्राप्त (सिंहासनं) राजसिंहासन को (अलञ्चक्रे) सुशोभित किया।

तद्वृत्तान्तवितर्कोऽभूल्लोके विस्मयबृंहितः।
अतर्क्यसम्पदापद्भ्यां विस्मयो हि विशेषतः॥४६॥

अन्वयार्थ- (लोके) फिर सारे लोक में (विस्मयबृंहितः) विस्मय से वृद्धिंगत (तद्धृतान्तवितर्कः) जीवन्धरकुमार के वृत्तान्त का विचार (अभूत्) हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अतर्क्यसम्पदापद्भ्यां) अकल्पित सम्पत्ति एवं विपत्ति के आने से (विशेषतः) विशेषरूप से (विस्मयः) आश्चर्य {भवति} हुआ करता है।

क्व पूज्यं राजपुत्रत्वं प्रेतावासे क्व वा जनिः।

क्व वा राज्यपुनः प्राप्तिरहो कर्मविचित्रता॥४७॥

अन्वयार्थ- (क्व) कहाँ तो (पूज्यं) पूज्य (राजपुत्रत्वं) राजपुत्रपना (क्व वा) और कहाँ उनका (प्रेतावासे जनिः) श्मशान भूमि में जन्म लेना (क्व वा) तथा कहाँ (राज्यपुनः प्राप्तिः) फिर से राज्य का मिल जाना।

[अत्र नीतिः] (अहो) अहो! (कर्मविचित्रता) कर्मों की विचित्रता आश्चर्यजनक है।

पुण्यपापादृते नान्यत्सुखे दुःखे च कारणम्।

तन्तवो हि लूतायाः कूपपातनिरोधिनः॥४८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पुण्यपापात्) पुण्य और पाप के (ऋते) बिना (अन्यत्) और कोई भी वस्तु (सुखे) सुख (च) और (दुःखे) दुःख में (कारणं न) कारण नहीं है। जैसे पाप का उदय होने से (लूतायाः) मकड़ी के जाले के (तन्तवः)

छोटे-छोटे तन्तु (कूपपातनिरोधिनः) कूप में गिरने से रोकने वाले {न भवन्ति} नहीं होते हैं।

हत्त्वा जिघांसुमात्मानं लेभे राज्यं जिघांसितः।
भाव्यवश्यं भवेदेव न हि केनापि रुध्यते॥४९॥

अन्वयार्थ- (जिघांसितः) जिसको मारना चाहते थे उसने (आत्मानं) अपने (जिघांसुं) मारनेवाले को (हत्त्वा) मारकर (राज्यं) राज्य (लेभे) ले लिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भावि) जो कुछ होना है, वह (अवश्यं एव) अवश्य ही (भवेत्) होता है। (केन अपि) किसी से भी (न रुह्यते) नहीं रोका जाता है।

जिजीविषा प्रपञ्चेन जातोऽयं राजवज्चकः।
काष्ठाङ्गारोऽपि नष्टोऽभूत्स्वयं नाशी हि नाशकः॥५०॥

अन्वयार्थ- (जिजीविषा प्रपञ्चेन) अपने जीने की इच्छा के विस्तार से (राजवज्चकः) राजा को धोखे से मारनेवाला (अयं काष्ठाङ्गारः अपि) यह काष्ठांगार भी (नष्टः अभूत्) मारा गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (नाशी) दूसरे का नाश करनेवाला (स्वयं नाशकः स्यात्) अपना ही नाश करनेवाला होता है।

यक्षः क्षणोपकारेण प्राणदायी बभूव सः।
काष्ठाङ्गारः कृतघ्नोऽभूत्स्वभावो न हि वार्यते॥५१॥

अन्वयार्थ- (सः यक्षः) कुत्ते का जीव वह यक्ष (क्षणोपकारेण) क्षणमात्र के उपकार से (प्राणदायी बभूव) जीवन्धरकुमार के

प्राणों के बचानेवाला हुआ और (काष्ठाङ्गारः) काष्ठांगार (कृतघ्नः अभूत्) कृतघ्न हुआ अर्थात् महाराज ने जिसे राज्य दिया था, वही उन्हीं के प्राणों का घातक हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वभावः) प्रकृति किसी की भी (न वार्यते) निवारण नहीं की जा सकती है।

अपकारोपकाराभ्यां सदसन्तौ न भेदिनौ।

दग्धं च भाति कल्याणं केनाङ्गारविशुद्धता॥५२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (सदसन्तौ) सज्जन और दुर्जन (अपकारोपकाराभ्यां) अपकार और उपकार करने से (न भेदिनौ) दुर्जन और सज्जन नहीं हो जाते अर्थात् सज्जनों के साथ अपकार करने से वह दुर्जन नहीं हो जाते और दुर्जनों के साथ उपकार करने से वे सज्जन नहीं होते हैं। (हि) निश्चय से (दग्धं च कल्याणं) जला हुआ भी सोना (भाति) शोभायमान होता है; किन्तु (अङ्गारविशुद्धता) कोयले में श्वेतपना (केन अपि उपायेन) किसी भी उपाय से {न भवति} नहीं होता।

रिक्तारिक्तदशायां च सदसन्तौ न भेदिनौ।

खाताऽपि हि नदी दत्ते पानीयं न पयोनिधिः॥५३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (रिक्तारिक्तदशायां च) धनी और निर्धन की अवस्था में भी (सदसन्तौ) सज्जन और दुर्जन (न भेदिनौ) भेदित नहीं होते हैं। अर्थात् निर्धन अवस्था में भी सज्जन उपकार ही करते हैं; परन्तु दुर्जन धनयुक्त अवस्था में भी अपकार ही करता है। (हि) निश्चय से (खाता अपि नदी) सूख जाने पर भी

खोदी हुई नदी (पानीयं दत्ते) प्यासों को जल देती है, किन्तु (पयोनिधिः न) लबालब खारे जल से भरा हुआ समुद्र पीनेयोग्य पानी नहीं देता।

इतीयं किंवदन्ती च तद्देशे शंवदाप्यभूत्।

राजवन्ती सती भूमिः कुतो वा न सुखायते॥५४॥

अन्वयार्थ- (तद्देशे) जीवन्धरकुमार के राज्य में (अपि) भी (इति) इसप्रकार (इयं किंवदन्ती) यह कहावत (शंवदा अभूत्) सबको प्रिय हुई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (राजवन्ती) उत्तम राजा से युक्त (सती) समीचीन (भूमिः) पृथ्वी (कुतो वा न सुखायते) क्या प्रजा को सुख देनेवाली नहीं होती है? किन्तु होती ही है।

काष्ठाङ्गारकुटुम्बस्याप्यनुमेने सुखासिकाम्।

स्वस्थानेऽपि महाराजो न ह्यस्थानेऽपि रुट् सताम्॥५५॥

अन्वयार्थ- (महाराजः) महाराज जीवन्धर ने (काष्ठाङ्गारकुटुम्बस्य) काष्ठांगार के कुटुम्ब को (अपि) भी (स्वस्थाने अपि) अपने ही स्थान में (सुखासिकां) सुखपूर्वक रहने की (अनुमेने) अनुमति दे दी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सतां) सज्जन पुरुषों का (रुट्) क्रोध (अस्थाने) अयोग्य स्थान में (न) {भवति} नहीं होता है।

यौवराज्ये च नन्दाढ्यं वृद्धक्षत्रोचिते पदे।

गन्धोत्कटं च चक्रेऽसौ लोकवन्द्ये च मातरौ॥५६॥

अन्वयार्थ- फिर (असौ) इन जीवन्धरकुमार ने (यौवराज्ये) युवराज के पद पर अपने छोटे भाई (नन्दाढ्यं) नन्दाढ्य को (च) और (वृद्धक्षत्रोचिते पदे) बूढ़े क्षत्रियों के योग्य पद पर (गन्धोत्कटं) गन्धोत्कट को (च) और (मातरौ) दोनों माताओं को (लोकवन्द्ये) लोकपूज्य (पदे) पद पर (चक्रं) स्थापित किया।

अकरामकरोद्धात्रीं वर्षाणि द्वादशाप्ययम्।

महिषैः क्षुभितं तोयं न हि सद्यः प्रसीदति ॥५७॥

अन्वयार्थ- और (अयं) इन जीवन्धरकुमार ने (धात्रीं) पृथ्वी को (प्रजा को) (द्वादशवर्षाणि) बारह वर्ष पर्यन्त (अकरां) कर से रहित (अकरोत्) कर दिया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (महिषैः) भैंसाओं से (क्षुभितं तोयं) गन्दा किया हुआ जल (सद्यः) शीघ्र ही (न प्रसीदति) निर्मल नहीं होता है।

पद्मवक्त्रादिमित्रेभ्यो यथायोग्यमदात्पदम्।

अविशेषपरिज्ञाने न हि लोकोऽनुरज्यते ॥५८॥

अन्वयार्थ- इन जीवन्धरकुमार ने (पद्मवक्त्रादिमित्रेभ्यः) पद्मास्य आदि मित्रों के लिए (यथायोग्यं पदं) यथायोग्य पद (अदात्) दिए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (अविशेषपरिज्ञाने) सबको समान मानने से (लोकः) लोग (न अनुरज्यते) संतुष्ट नहीं होते हैं अर्थात् जीवन्धरकुमार ने मित्रों को कौन किस पद के योग्य है ऐसा परिज्ञान करके उनको यथायोग्य पद दिया।

पद्मादयोऽपि तद्देव्यः समागत्य तदाज्ञया।

तं समीक्ष्य क्षणे चासन्क्षीणाखिलमनोव्यथाः॥५९॥

अन्वयार्थ- (तदाज्ञया पद्मादयः अपि देव्यः) उससमय राजा जीवन्धरकुमार की आज्ञा से उनकी पद्मा आदि स्त्रियाँ (समागत्य) आकर (तं समीक्ष्य) उन जीवन्धरकुमार को देखकर (क्षणे च क्षीणाखिलमनोव्यथाः) उसी समय/तत्काल सम्पूर्ण मन की पीड़ा से रहित (आसन्) हुई।

चिरस्थाय्यपि नष्टं स्याद्विरुद्धार्थे हि वीक्षिते।

सन्निधावपि दीपस्य किं तमिस्रं गुहामुखम्॥६०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (विरुद्धार्थे) विरुद्ध पदार्थ के (वीक्षिते) देखने पर (चिरस्थायी) चिरकाल से स्थित पदार्थ (अपि) भी (नष्टं स्यात्) नष्ट हो जाते हैं अर्थात् थोड़ा-सा सुख मिलने से पूर्व के सब दुःख भूल जाते हैं (दीपस्य सन्निधौ अपि) दीपक के सान्निध्य में भी (किं) क्या (गुहामुखं) गुफाओं का मुख (तमिस्रं) अन्धकार सहित {स्यात्} रह सकता है?

अथायं नुवतेः पुत्रीं दत्ता गोविन्दभूभुजा।

पर्यणैषीन्महाराजः पार्थिवैर्विहितोत्सवः॥६१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (पार्थिवैः विहितोत्सवः) राजाओं ने किया है उत्सव जिनके लिए ऐसे (अयं महाराजः) इन महाराज जीवन्धरकुमार ने (गोविन्दभूभुजा) गोविन्दराज से (दत्तां) दी हुई (नुवतेः) नुवति की (पुत्रीं) पुत्री लक्ष्मणा को (यथाविधि पर्यणैषीत्) विधिपूर्वक ब्याहा।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ
लक्ष्मणालम्भो नाम दशमो लम्बः।

एकादशो लम्बः

अथ राज्यश्रिया लब्ध्वा लक्ष्मणां मुमुदे कृती।
चिरकाङ्क्षितलाभे हि तृप्तिः स्यादतिशायिनी॥१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (कृती) विद्वान राजा जीवन्धरकुमार (राज्यश्रिया) {सह} राज्यलक्ष्मी के साथ (लक्ष्मणां लब्ध्वा) लक्ष्मणा को प्राप्त करके (मुमुदे) अत्यन्त प्रसन्न हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (चिरकाङ्क्षितलाभे) चिरकाल की चाही हुई वस्तु की प्राप्ति होने पर ही (अतिशायिनी) अत्यन्त (तृप्तिः) प्रसन्नता (स्यात्) होती है।

लब्ध्वा राज्यमयं राजा रेजे सर्वगुणैरपि।
काचो हि याति वैगुण्यं गुण्यतां हारगो मणिः॥२॥

अन्वयार्थ- (अयं राजा) यह महाराजा जीवन्धरकुमार (राज्यं लब्ध्वा) राज्य को प्राप्त करके (सर्वगुणैः अपि) सब गुणों से भी (रेजे) शोभायमान हुए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (हारगः काचः) हार में पिरोया हुआ काँच (वैगुण्यं याति) बुरा प्रतीत होता है (तु) किन्तु उसके स्थान पर पिरोई हुई (मणिः) मणि (गुण्यतां याति) शोभा को प्राप्त होती है अर्थात् सर्वगुण सम्पन्न जीवन्धरकुमार को राज्य की प्राप्ति सुवर्ण में सुगन्ध की तरह हुई।

कृतिनामेकरूपा हि वृत्तिः सम्पदसम्पदोः।
न हि नादेयतोयेन तोयधेरस्ति विक्रिया॥३॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सम्पदसम्पदोः) सम्पत्ति और विपत्ति में (कृतिनां) बुद्धिमानों की (वृत्तिः) वृत्ति (एकरूपा भवेत्) एक सी रहती है। [अत्र नीतिः] सच है (नादेयतोयेन) नदी के जल से (तोयधेः) समुद्र में (विक्रिया न अस्ति) विकार भाव अर्थात् मर्यादा का उल्लंघन नहीं होता है।

सुखदुःखे प्रजाधीने तदाभूतां प्रजापतेः।

प्रजानां जन्मवर्जं हि सर्वत्र पितरौ नृपाः॥४॥

अन्वयार्थ- (तदा) उससमय अर्थात् राज्य मिलने पर (प्रजापतेः) महाराजा जीवन्धरकुमार के (सुखदुःखे) सारे सुख-दुःख (प्रजाधीने) प्रजा के अधीन (अभूतां) हो गए अर्थात् प्रजा के सुख-दुःख से वे अपने को सुखी दुःखी समझने लगे।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (जन्मवर्जं) जन्म देने के सिवाय सर्वत्र अन्य सब विषयों में (नृपाः) राजा ही (प्रजानां) प्रजा के (पितरौ स्तः) माँ-बाप हैं।

आसीत्प्रीतिकरं तस्य करदानं च दानवत्।

वृषलाः किं न तुष्यन्ति शालेये बीजवापिनः॥५॥

अन्वयार्थ- (च) और (तस्य) उसकी प्रजा का (करदानं) राजा को कर देना (दानवत्) दान देने की तरह (प्रीतिकरं) प्रीतिकर अर्थात् आनन्ददायक (आसीत्) हुआ।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (शालेये) धान्य के खेत में (बीज-वापिनः) बीज बोनेवाले (वृषलाः) किसान लोग (किं) क्या

(न तुष्यन्ति) सन्तुष्ट नहीं होते हैं? अर्थात् होते ही हैं जिसप्रकार किसान खेत में बीज बोने से खुश होते हैं; उसीप्रकार प्रजा राजा को कर देने में प्रसन्न थी।

मित्रोदासीनशत्रूणां विषयेष्वपसर्पतः।

तदज्ञानेऽपि तदज्ञानात्तदैवासीत्प्रतिक्रिया॥६॥

अन्वयार्थ- (तदज्ञाने अपि) उस राजा के राज्य में राजा को स्वयं किसी कार्य का साक्षात् ज्ञान नहीं होने पर भी (मित्रोदासीनशत्रूणां) मित्र, शत्रु और उदासीन राजाओं के (विषयेषु) देशों में (अपसर्पतः) घूमनेवाले गुप्तचरों द्वारा (तदज्ञानात्) उनका सारा वृत्तान्त जानकर (तदा एव) उसी समय (तत्प्रतिक्रिया) उसका उपाय (आसीत्) होता था।

रात्रिन्दिवविभागेषु नियतो नियतिं व्यधात्।

कालातिपातमात्रेण कर्तव्यं हि विनश्यति॥७॥

अन्वयार्थ- (नियतः) नियमपूर्वक कार्य करनेवाले उन राजा ने (रात्रिन्दिवविभागेषु) रात-दिन के विभागों में (नियतिं) नियत किए हुए कार्य को (व्यधात्) यथासमय पर किया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कालातिपातमात्रेण) काम करने योग्य समय के निकल जाने पर (कर्तव्यं विनश्यति) कार्य नष्ट होता है।

तपसा हि समं राज्यं योगक्षेमप्रपञ्चतः।

प्रमादे सत्यधः पातादन्यथा च महोदयात्॥८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (योगक्षेमप्रपञ्चतः) योग और क्षेम के विस्तार से (तपसा समं राज्यं) तप के समान राज्य है अर्थात् जिसप्रकार तप में योग और क्षेम की आवश्यकता है, उसीप्रकार राज्य में योग और क्षेम की आवश्यकता है। (प्रमादे सति) प्रमाद होने पर अर्थात् राजा और तपस्वी राज्य पालन और तपस्या में यदि प्रमाद करें तो (अधःपातात्) दोनों का अधःपतन होता है (च) और (अन्यथा) प्रमादरहित योग और क्षेम पालन करने से (महोदयात्) दोनों का महान उदय होता है।

प्रबुद्धेऽस्मिन्भुवं कृत्स्नां रक्षत्येकपुरीमिव।
राजन्वती च भूरासीदन्वर्थं रत्नसूरपि॥९॥

अन्वयार्थ- (प्रबुद्धे अस्मिन्) सारे कार्यों में सावधान इन राजा के (एकपुरीं इव) एक नगरी के समान (कृत्स्नां भुवं) सारी पृथ्वी की (रक्षति सति) बुद्धिमानी से रक्षा करने पर (भूः) पृथ्वी (राजन्वती) श्रेष्ठ राजा से युक्त (अन्वर्थं) सार्थक (रत्नसूः अपि) रत्नों को देनेवाली (आसीत्) हुई।

एवं विराजमानेऽस्मिन् राजराजे महोदये।

विजया जननी तस्य विरक्ता संसृतावभूत्॥१०॥

अन्वयार्थ- (एवं) इसप्रकार (महोदये) महान उदयवाले (अस्मिन् राजराजे विराजमाने) इस राजेश्वर के विराजमान होने पर (विजया तस्य जननी) विजया नाम की जीवन्धरकुमार की माता (संसृतौ विरक्ता) संसार से विरक्त (अभूत्) हुई अर्थात् उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ।

पैतृकं पदमद्राक्षमत्राहं पुत्रपुङ्गवे।

कृताः पुरोपकर्तारः कृतकृत्या यथोचितम्॥११॥

अन्वयार्थ- (अत्र पुत्रपुङ्गवे) इस पुत्रश्रेष्ठ में (अहं) मैंने (पैतृकं) पिता के (पदं) पद को अर्थात् राजा के पद को (अद्राक्षं) देख लिया और (पुरोपकर्तारः) पहले उपकार करनेवाले को भी (यथोचितं) यथोचित (कृतकृत्याः) कृतकृत्य (कृताः) कर दिया है अर्थात् पहले जिन्होंने हम पर उपकार किया था, उन सबका हमने प्रत्युपकार कर दिया।

फलं च पुण्यपापानां मया मय्येव वीक्षितम्।

शास्त्रादृते किमन्यत्र कर्मपाकोऽयमीक्षितः॥१२॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (च) और जब (मया) मैंने (शास्त्रात् ऋते) शास्त्रों के बिना (मयि एव) अपने आप में ही (पुण्यपापानां) पुण्य और पाप का (फलं) फल (वीक्षितं) देख लिया तो (पुनः) फिर (अयं कर्मपाकः) यह कर्मों का फल (अन्यत्र) दूसरे स्थान में {भवति} (किं ईक्षितः) मैं क्यों देखूं?

अतोऽपास्य सुतस्नेहं तपस्यामि यथोचितम्।

ज्ञात्वापि कुण्डपातोऽयं कुत्सितानां हि चेष्टितम्॥१३॥

अन्वयार्थ- (अतः) इसलिए (अहं) मैं (सुतस्नेहं) पुत्र का मोह (अपास्य) छोड़ करके (यथोचितं) यथायोग्य (तपस्यामि) तप करूँगी।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से {संसारभावं} (ज्ञात्वापि) संसार के स्वभाव को जानकर भी (अयं कुण्डपातः) इस संसाररूपी गड्ढे में पड़े रहना (कुत्सितानां) नीच पुरुषों की (चेष्टितं) चेष्टा है।

इति वैराग्यतस्तस्याः सुनन्दापि व्यरज्यत।

पाके हि पुण्यपापानां भवेद्बाह्यं च कारणम्॥१४॥

अन्वयार्थ- (इति) इसप्रकार (तस्याः) विजया रानी के (वैराग्यतः) विरक्त हो जाने पर (सुनन्दा अपि) गन्धोत्कट की स्त्री सुनन्दा भी (व्यरज्यत) संसार से विरक्त हो गई।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पुण्यपापानां च) पुण्य और पाप के (पाके) उदय आने में (बाह्यं कारणं) बाह्य कारण (भवेत्) {एव} अवश्य ही होता है।

ततः कृच्छ्रायमाणं ते महीनाथं च कृच्छ्रतः।

अनुज्ञाप्य ततो गत्वादीक्षितां यथाविधि॥१५॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (ते) उन दोनों माताओं ने (कृच्छ्रायमाणं) शोकयुक्त (महीनाथं) राजा जीवन्धरकुमार को (कृच्छ्रतः) किसी प्रकार कष्ट से (अनुज्ञाप्य) समझाकर (ततः गत्वा) और वन में जाकर (यथाविधि) विधिपूर्वक (अदीक्षितां) जिनदीक्षा ग्रहण की।

पद्माख्या श्रमणीमुख्या विश्राण्य श्रमणीपदम्।

तन्मातृभ्यां ततस्तं च महीनाथमबोधयत्॥१६॥

अन्वयार्थ- (श्रमणीमुख्या) उससमय सम्पूर्ण आर्यिकाओं में श्रेष्ठ (पद्माख्या) पद्मा नाम की आर्यिका ने (तन्मातृभ्यां) उन दोनों माताओं के लिए (श्रमणीपदं) आर्यिका का पद (विश्राण्य) देकर (ततः) फिर (तं च महीनाथं) उन राजा जीवन्धरकुमार को (अबोधयत्) प्रतिबोधित किया।

प्रव्रज्याः जातुचित्प्राज्ञैः प्रतिषेद्धुं न युज्यते।

न हि खादापतन्ती चेद्रत्नवृष्टिर्निवार्यते॥१७॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (प्राज्ञैः) बुद्धिमानों द्वारा (जातुचित्) कभी भी (प्रव्रज्याः) दीक्षा लेने से (प्रतिषेद्धुं) रोकना (न युज्यते) उचित नहीं है। (हि) निश्चय से (चेत्) यदि (खात्) आकाश से (रत्नवृष्टिः) रत्नों की वर्षा (आपतन्ती) होती है तो (न निवार्यते) रोकी नहीं जाती।

वयस्यन्तेऽपि वा दीक्षा प्रेक्षावद्भिरपेक्ष्यताम्।

भस्मने रत्नहारोऽयं पण्डितैर्न हि दह्यते॥१८॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] (अपि वा) और (प्रेक्षावद्भिः) बुद्धिमान पुरुष (अन्ते वयसि) अवस्था के अन्त में जिनदीक्षा ग्रहण करने की (अपेक्ष्यतां) अपेक्षा किया करते हैं। (हि) निश्चय से (पण्डितैः) पण्डित पुरुष (अयं रत्नहारः) इस मनुष्यजन्मरूपी रत्नों के हार को (भस्मने) इन्द्रिय विषयरूपी भस्म के लिए (न दह्यते) नहीं जलाते हैं।

इति प्रबोधितो नत्वा प्रसवित्रीं सकाशतः।

प्रश्रयेण गतो राजा प्राविक्षन्पमन्दिरम्॥१९॥

अन्वयार्थ- (इति) इसप्रकार (प्रबोधितः) समझाए हुए (राजा) राजा जीवन्धरकुमार ने (नत्वा) नमस्कार करके (प्रसवित्रीं सकाशतः) माता के समीप से (प्रश्रयेण गतः) विनयपूर्वक लौटकर (नृपमन्दिरं प्राविक्षत्) राजमहल में प्रवेश किया।

न चिराद्धि पदं दत्ते कृतिनां हृदि विक्रिया।

यदि रत्नेऽपि मालिन्यं न हि तत्कृच्छ्रशोधनम्॥२०॥

अन्वयार्थ- [अत्र नीतिः] जिसप्रकार (रत्ने अपि) रत्न में भी (यदि मालिन्यं) यदि मलिनता हो तो (तत्कृच्छ्रशोधनं न) उसका साफ होना कुछ कठिन नहीं है। इसीप्रकार (विक्रिया) इष्ट वियोगादिजन्य शोकादि भाव (कृतिनां हृदि) बुद्धिमानों के हृदय में (चिरात्) बहुत काल तक (पदं) स्थान (न दत्ते) प्राप्त नहीं करता है।

अथास्य क्षात्रविद्यस्य क्षणवद्भुज्जतो महीम्।

त्रिदशोपमसौख्येन त्रिंशद्वर्षाण्ययासिषुः॥२१॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (क्षात्रविद्यस्य) क्षात्र विद्या में निपुण (अस्य) इन जीवन्धर महाराजा के (त्रिदशोपमसौख्येन) देवताओं के समान सुख से (महीं) पृथ्वी को (भुज्जतः) भोगते हुए (त्रिंशत् वर्षाणि) तीस वर्ष (क्षणवत्) एक क्षण के समान (अयासिषुः) बीत गए।

ततः कदाचिदस्यासीज्जलक्रीडामहोत्सवः।

वसन्ते सह कान्ताभिरष्टाभिरतिकौतुकात्॥२२॥

अन्वयार्थ- (ततः) इसके अनन्तर (कदाचित्) कभी (वसन्ते) वसन्त ऋतु में (अष्टाभिः कान्ताभिः सह) अपनी आठ स्त्रियों के साथ (अति-कौतुकात्) अति कौतुहल से (अस्य) इन जीवन्धरकुमार ने (जलक्रीडा-महोत्सवः) जलक्रीड़ा का महान उत्सव (आसीत्) किया।

जलक्रीडा श्रमात्सोऽयमाक्रीडे च सनीडके।

क्रीडन्कापटिकैः श्लाघ्यं कापेयं निरवर्तयत्॥२३॥

अन्वयार्थ- (सः अयं) फिर उन्हीं जीवन्धरकुमार ने (जलक्रीडाश्रमात्) जलक्रीड़ा के परिश्रम से थककर (सनीडके) लतामण्डप युक्त (आक्रीडे) किसी उद्यान में (कापटिकैः क्रीडन) बन्दरों के साथ क्रीड़ा करते हुए (श्लाघ्यं कापेयं) प्रशंसनीय बन्दरों की चेष्टा (निरवर्तयत्) देखी।

अन्यसम्पर्कतः क्रुद्धां मर्कटीं कोऽपि मर्कटः।

प्रकृतिस्थां बहुपायैर्नाशकत्कर्तुमुद्यतः॥२४॥

अन्वयार्थ- तत्पश्चात् (कः अपि) कोई एक (मर्कटः) बन्दर (अन्य-सम्पर्कतः) किसी दूसरी बन्दरी से सम्भोग करने के कारण (क्रुद्धां) क्रोधित हुई (मर्कटीं) अपनी प्यारी बन्दरी को (बहुपायैः) बहुत उपायों से (प्रकृतिस्थां) पूर्व की तरह प्रसन्न (कर्तुं) करने के लिए (उद्यतः न अशक्त) समर्थ नहीं हुआ।

ततः शाखामृगोऽप्यासीन्मायिको मृतवद्दशः।

तदवस्थां भयग्रस्ता वानरीऽयमपाकरोत्॥२५॥

अन्वयार्थ- (ततः) फिर (मायिकः) छली/मायावी (शाखामृगः अपि) वह बन्दर भी (मृतवद्दशः) मरे हुए के समान दशावाला (आसीत्) हो गया अर्थात् श्वास रोककर पृथ्वी पर लेट गया। यह देखकर (भयग्रस्ता) भय से पीड़ित (इयं वानरी) इस बन्दरी ने (तदवस्थां) उसकी मृततुल्य अवस्था को (अपाकरोत्) दूर किया।

हर्षलो हरिरप्यस्यै पनसस्य फलं ददौ।

वनपालो जहारैतद्वानरीमपि भर्त्सयन्॥२६॥

अन्वयार्थ- (हर्षलः हरिः अपि) तब हर्षित उस बन्दर ने भी (अस्यै) अपनी इस बन्दरी के लिए (पनसस्य फलं) एक पनस का फल (ददौ) दिया; परन्तु (वनपालः) वनपाल ने (वानरीं अपि भर्त्सयन्) बन्दरी की भर्त्सना करके (एतत् जहार) यह फल छीन लिया।

इत्यशेषं विशेषज्ञो वीक्षमाणः क्षितीश्वरः।

तत्क्षणे जातवैराग्यादनुप्रेक्षामभावयत्॥२७॥

अन्वयार्थ- (इति) यह (अशेषं) सब घटना (वीक्षमाणः) देखनेवाले (विशेषज्ञः) विद्वान (क्षितीश्वरः) राजा जीवन्धरकुमार ने (तत्क्षणे) उसी समय (जातवैराग्यात्) वैराग्य उत्पन्न होने से (अनुप्रेक्षां) बारह भावनाओं का (अभावयत्) चिन्तन किया।

मद्यते वनपालोऽयं काष्ठाङ्गारायते हरिः।

राज्यं फलायते तस्मान्मयैव त्याज्यमेव तत्॥२८॥

अन्वयार्थ- (अयं वनपालः) यह वनपाल (मद्यते) मेरे समान है (हरिः) वानर (काष्ठाङ्गारायते) काष्ठांगार के समान है और (राज्यं) राज्य (फलायते) पनस फल के समान है; (तस्मात्) इसलिए (तत्) यह राज्य (मया एव) मेरे द्वारा ही (त्याज्यं एव) छोड़ने ही योग्य है।

जाताः पुष्टाः पुनर्नष्टा इति प्राणभृतां प्रथाः।

न स्थिता इति तत्कुर्याः स्थायिन्यात्मन्यपदे मतिम्॥२९॥

अन्वयार्थ- (जाताः) जन्म लिया (पुष्टाः) पुष्ट हुए (पुनः नष्टाः) और फिर नष्ट हो गए (इति) ऐसी (प्राणभृतां) संसार में प्राणियों की (प्रथाः) परिपाटी है (न) {के अपि} (स्थिताः) कोई भी स्थिर नहीं है। (तत्) इसलिए (आत्मन्) हे आत्मा! (स्थायिनी पदे) सदा स्थिर रहनेवाले मोक्षस्थान में ही (मतिं) बुद्धि अर्थात् अपने ध्यान को (कुर्याः) लगा।

स्थायीति क्षणमात्रं वा ज्ञायते न हि जीवितम्।

कोटेरप्यधिकं हन्त जन्तूनां हि मनीषितम्॥३०॥

अन्वयार्थ- (हि) निश्चय से (जीवितं) यह जीवन (क्षणमात्रं वा) क्षणमात्र भी (स्थायीति न ज्ञायते) स्थायी नहीं-यह जान पड़ता है। (हन्त!) खेद है! फिर भी (जन्तूनां) प्राणियों की (मनीषितं) इच्छाएँ (कोटेः अपि अधिकं) करोड़ों से भी अधिक हैं।

अवश्यं यदि नश्यन्ति स्थित्वापि विषयाश्चिरम्।

स्वयं त्याज्यास्तथा हि स्यान्मुक्तिः संसृतिरन्यथा॥३१॥

अन्वयार्थ- (यदि) अगर (विषयाः) इन्द्रियों के विषय (चिरं) बहुत काल तक (स्थित्वा अपि) स्थिर रहकर भी (अवश्यं) अवश्य (नश्यन्ति) नाश को प्राप्त हो जाते हैं, तो (स्वयं) स्वयं ही (त्याज्याः) छोड़ देने चाहिए। (तथाहि) ऐसा करने पर (मुक्तिः स्यात्) आत्मा कर्म बन्धन से छूट जाता है। (अन्यथा) और इसके विपरीत करने से (संसृतिः एव स्यात्) संसार ही होता है अर्थात् फिर संसार में घूमना पड़ता है।

अनश्वरसुखावाप्तौ सत्यां नश्वरकायतः।

किं वृथैव नयस्यात्मन्क्षणं वा सफलं नय॥३२॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मा! यदि (नश्वरकायतः) नाशवान शरीर से (अनश्वरसुखावाप्तौ सत्यां) अविनाशी सुख अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो सके तो (किं) क्यों (वृथा एव) वृथा ही (क्षणं) समय को (नयसि) खोता है (सफलं नय) तू इस समय को सफल कर।

पयोधौ नष्टनौकस्य पतत्रेरिव जीव ते।

सत्यपाये शरण्यं न तत्स्वास्थ्ये हि सहस्रधा॥३३॥

अन्वयार्थ- (जीव) हे जीव! (पयोधौ) समुद्र में (नष्टनौकस्य) डूब गया है नौकारूपी आश्रय जिसका, ऐसे (पतत्रेः इव) पक्षी की तरह (ते) तेरे (अपाये सति) नाश अर्थात् मृत्यु के समय (शरण्यं न) कोई भी शरण नहीं है।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (स्वास्थ्ये) सुखी अवस्था में (सहस्रधा शरण्यं भवन्ति) हजारों शरण हो जाते हैं।

आयुधीयैरतिस्निग्धैर्बन्धुभिश्चाभिसंवृतः।

जन्तुः संरक्ष्यमाणोऽपि पश्यतामेव नश्यति॥३४॥

अन्वयार्थ- (आयुधीयैः) आयुध को लिए हुए (अतिस्निग्धैः) अत्यन्त प्यारे (बन्धुभिः) बन्धुओं से (अभिसंवृतः) चारों ओर से घेरे हुए और (संरक्ष्यमाणः अपि) संरक्षित भी (जन्तुः) प्राणी (पश्यतां एव) देखनेवालों के आगे (नश्यति) नाश को प्राप्त होता है।

मन्त्रयन्त्रादयोऽप्यात्मन्स्वतन्त्रं शरणं न ते।

किन्तु सत्येव पुण्ये हि नो चेत्के नाम तैः स्थिताः॥३५॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मा! (मन्त्रयन्त्रादयः अपि) मन्त्र-यन्त्रादिक भी (ते) तेरे (स्वतन्त्रं) स्वतन्त्र (शरणं न) रक्षक नहीं हैं; (किं तु) परन्तु (पुण्ये सति एव) पुण्य होने पर ही ये सब सहायता करते हैं। (नो चेत्) यदि पुण्य का उदय नहीं है तो (तैः) इन मन्त्र-तन्त्रादिकों से (के नाम स्थिताः) संसार में कौन स्थिर है अर्थात् कोई भी स्थिर नहीं है।

नटवन्नैकवेषेण भ्रमस्यात्मन्स्वकर्मतः।

तिरश्चि निरये पापाद्विपुण्याद्द्वयान्नरे॥३६॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन्! (त्वं) तू (नैकवेषेण) नाना प्रकार के वेष धारण करके (नटवत्) नट के समान (स्वकर्मतः) अपने कर्मों के वश से (भ्रमसि) घूम रहा है और (पापात्) पाप से (तिरश्चि निरये) तिर्यच और नरक गति में (पुण्यात्) पुण्य से

(दिवि) स्वर्ग में और (द्वयात्) पुण्य-पाप से (नरे) मनुष्य गति में जन्म धारण करता है।

पञ्चानन इवामोक्षादसिपञ्जर आहितः।

क्षणेऽपि दुःसहे देहे देहिन्हन्त कथं वसेः॥३७॥

अन्वयार्थ- (देहिन्) हे देही! (हन्त) खेद है! (असिपञ्जरे आहितः) तू लोहे के पिंजरे में कैद हुए (पञ्चाननः इव) सिंह की तरह (अमोक्षात्) बिना मोक्ष के (क्षणे अपि दुःसहे) क्षणमात्र भी नहीं सहा जाए ऐसे (देहे) शरीर में (कथं) किस प्रकार (वसेः) रहता है?

तन्नास्ति यन्न वै भुक्तं पुद्गलेषु मुहुस्त्वया।

तल्लेशस्तव किं तृप्त्यै बिन्दुः पीताम्बुधेरिव॥३८॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन्! (पुद्गलेषु) पुद्गलों में (तत् न अस्ति) कोई परमाणु ऐसा नहीं है (यत्) जो (त्वया) तूने (मुहुः) बार-बार (न वै भुक्तं) नहीं भोगा हो और (तल्लेशः) उन पुद्गलों का थोड़ा अंश (पीताम्बुधेः) पूरे समुद्र का जल पीने वाले को (बिन्दुः इव) बूँद के समान है (किं) क्या वह (तव) तुम्हारी (तृप्त्यै) तृप्ति के लिए {स्यात्} होगा? {अपि तु न स्यात्} कदापि नहीं है।

भुक्तोज्झितं तदुच्छिष्टं भोक्तुमेवोत्सुकायसे।

अभुक्तं मुक्तिसौख्यं त्वमतुच्छं हन्त नेच्छसि॥३९॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन्! (हन्त) खेद है! (त्वं) तू (भुक्तोज्झितं) भोगकर छोड़े गए (तत् उच्छिष्टं) उन्हीं उच्छिष्ट भोगों को (भोक्तुं

एव) फिर भोगने के लिए (उत्सुकायसे) उत्कण्ठित हो रहा है और (अभुक्तं) पूर्व में नहीं किया है भोग जिसका ऐसे (अतुच्छं) महान (मुक्तिसौख्यं) मोक्षरूपी सुख की (न इच्छसि) इच्छा नहीं करता है।

संसृतौ कर्म रागाद्यैस्ततः कायान्तरं ततः।

इन्द्रियाणीन्द्रियद्वारा रागाद्याश्चक्रकं पुनः॥४०॥

अन्वयार्थ- (संसृतौ) संसार में (रागाद्यैः) रागादिक भावों से (कर्म) कर्म बँधते हैं। (ततः) फिर उसी कर्म से (कायान्तरं) नवीन शरीर उत्पन्न होता है (ततः) और फिर उसी शरीर से (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और (इन्द्रियद्वारा रागाद्याः) इन्द्रियों के द्वारा ही राग-द्वेषादिक होते हैं। (पुनः) इसीप्रकार (चक्रकं) संसारचक्र की उत्पत्ति होती है।

सत्यनादौ प्रबन्धेऽस्मिन्कार्यकारणरूपके।

येन दुःखायसे नित्यमद्य वात्मन्विमुञ्च तत्॥४१॥

अन्वयार्थ- (कार्यकारणरूपके) कार्य-कारणरूप (अस्मिन् अनादौ) इस अनादि (प्रबन्धे सति) प्रबन्ध के होने पर (येन) जिससे (त्वं नित्यं दुःखायसे) तू नित्य दुःखी होता है। (अद्य वा) अब (तत् विमुञ्च) उसको (राग-द्वेषादि परिणामों को) छोड़ दो।

त्यक्तोपात्तशरीरादिः स्वकर्मानुगुणं भ्रमन्।

त्वमात्मन्नेक एवासि जनने मरणेऽपि च॥४२॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन! (त्यक्तोपात्त शरीरादिः) छोड़कर फिर ग्रहण किया है शरीरादिक को जिसने ऐसा (त्वं) तू (स्वकर्मानुगुणं भ्रमन्) अपने कर्मों के अनुसार भ्रमण करता हुआ (जनने) जन्म (मरणे अपि च) और मरण के समय में भी (एकः एव असि) अकेला ही है।

बन्धवो हि श्मशानान्ता गृह एवार्जितं धनम्।
भस्मने गात्रमेकं त्वां धर्म एव न मुञ्चति॥४३॥

अन्वयार्थ- देख! (बन्धवः) बन्धुजन भी (श्मशानान्ताः) केवल श्मशान पर्यन्त ही साथ जाते हैं, (अर्जितं धनं) कमाया हुआ धन (गृहे एव) घर में ही रह जाता है और (गात्रं भस्मने) शरीर भी तेरा भस्मरूप परिणत हो जाता है। (एकं) केवल एक (धर्मः एव) धर्म ही (त्वां न मुञ्चति) तुझको नहीं छोड़ता है अर्थात् धर्म ही एक तेरे साथ जाता है।

पुत्र-मित्र-कलत्राद्यमन्यदप्यन्तरालजम्।
नानुयायीति नाश्चर्यं नन्वङ्गं सहजं तथा॥४४॥

अन्वयार्थ- (पुत्रमित्रकलत्राद्यम्) पुत्र, मित्र, स्त्री तथा (अन्तरालजं अन्यत् अपि) बीच में मिलनेवाले और भी (न अनुयायि) यदि तेरे साथ नहीं जाते तो (इति न आश्चर्यं) इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। (ननु अङ्गं सहजं तथा) किन्तु इस पर्याय के प्रारम्भ से ही साथ रहनेवाला शरीर भी साथ नहीं जाता है {इति आश्चर्यम्} आश्चर्य इसमें है।

त्वमेव कर्मणां कर्ता भोक्ता च फलसन्ततेः।

मोक्ता च तात किं मुक्तौ स्वाधीनायां न चेष्टसे॥४५॥

अन्वयार्थ- (त्वं एव) तू ही (कर्मणां) कर्मों का (कर्ता) कर्ता और (फलसन्ततेः) फल-परंपरा का (भोक्ता) भोगनेवाला है (मोक्ता च) और तू ही कर्मों का नाश करके मुक्ति को प्राप्त करनेवाला है। इसलिए (तात) हे तात! (स्वाधीनायां मुक्तौ) अपने स्वाधीन मुक्ति की प्राप्ति में (किं) क्यों (न चेष्टसे) प्रयत्न नहीं करता है?

अज्ञातं कर्मणैवात्मन्स्वाधीनेऽपि सुखोदये।

नेहसे तदुपायेषु यतसे दुःखसाधने॥४६॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन्! (कर्मणा एव अज्ञातं) कर्मों के उदय से अज्ञानी होकर तू (स्वाधीने अपि) स्वाधीन होने पर भी (सुखोदये) मोक्षसुख में और (तत् उपायेषु) उसके उपायों में (न ईहसे) चेष्टा नहीं करता है; किन्तु (दुःखसाधने) दुःखों के कारणों में निरन्तर (यतसे) यत्न किया करता है।

देहात्मकोऽहमित्यात्मज्जातु चेतसि मा कृथाः।

कर्मतो ह्यपृथक्त्वं ते त्वं निचोलासिसन्निभः॥४७॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन्! (देहात्मकः अहं) मैं देहरूप हूँ (इति) यह बात (त्वं) तू (जातु) कदापि (चेतसि) अपने चित्त में (मा कृथाः) मत ला। (हि) निश्चय से (कर्मतः) कर्म से (ते) तेरे (अपृथक्त्वं) शरीर की एकता है। (त्वं) तू तो (निचोलासिसन्निभः) म्यान के भीतर रहनेवाली तलवार के समान {असि} है।

अध्रुवत्वादमेध्यत्वादचित्त्वाच्चान्यदङ्गकम्।
चित्त्वनित्यत्वमेध्यत्वैरात्मन्नन्योऽसि कायतः॥४८॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (अध्रुवत्वात्) अनित्य (अमेध्यत्वात्) अपवित्र और (अचित्त्वात्) चेतनारहित-इन तीन कारणों से (अङ्गकं) शरीर (अन्यत्) आत्मा से भिन्न है और (चित्त्वनित्यत्वमेध्यत्वैः) सचेतनत्व, नित्यत्व, पावित्र्य होने के कारण (त्वं) तू (कायतः अन्यः असि) शरीर से भिन्न है।

हेये स्वयं सती बुद्धिर्यत्नेनाप्यसती शुभे।
तद्धेतुकर्म तद्वन्तमात्मानमपि साधयेत्॥४९॥

अन्वयार्थ- (बुद्धिः) बुद्धि (हेये) बुरे कामों में (स्वयं सती) अपने आप ही लग जाती है; किन्तु (शुभे यत्नेन अपि असती) अच्छे कार्यों में प्रयत्न करने पर भी प्रवृत्त नहीं होती। (तद्वेतुः) इस प्रवृत्ति का कारण (कर्म) कर्म ही है जो (आत्मानं अपि) आत्मा को भी (तद्वन्तं साधयेत्) अपने समान ही कर देता है।

मेध्यानामपि वस्तूनां यत्सम्पर्कादमेध्यता।
तद्गात्रमशुचीत्येतत्किं नाल्पमलसम्भवम्॥५०॥

अन्वयार्थ- (यत्सम्पर्कात्) जिसके सम्बन्ध से (मेध्यानां) पवित्र (वस्तूनां अपि) वस्तुएँ भी (अमेध्यता) अपवित्र हो जाती हैं और जो (अल्पमलसम्भवं) अल्प रुधिर-वीर्यादि मलों से उत्पन्न हुआ है (तत् गात्रं) वह शरीर (किं) क्या (अशुचि न) अपवित्र नहीं है? (इति) इसलिए (एतत्) यह अवश्य ही अपवित्र है।

अस्पष्टं दृष्टमङ्गं हि सामर्थ्यात्कर्मशिल्पिनः।

रम्यमूहे किमन्यत्स्यान्मलमांसास्थिमज्जतः॥५१॥

अन्वयार्थ- (हि) निश्चय से (कर्मशिल्पिनः) कर्मरूपी कारीगर की (सामर्थ्यात्) चतुराई से (अङ्गं) शरीर का अंतरंग (अस्पष्टं दृष्टं) स्पष्ट दिखाई नहीं देता है। (अतः) इसलिए (रम्यं भासते) सुन्दर मालूम होता है; (ऊहे सति) परन्तु विचार करने पर इसमें (मलमांसास्थिमज्जतः) मल, मांस, हड्डी और मज्जा के सिवाय (अन्यत् किं स्यात्) और क्या है? अर्थात् शरीर इन्हीं अपवित्र वस्तुओं से बना है।

दैवादन्तः स्वरूपं चेद्बहिर्देहस्य किं परैः।

आस्तामनुभवेच्छेयमात्मन्को नाम पश्यति॥५२॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (परैः किं) और तो क्या (चेत्) यदि (दैवात्) दैवयोग से (देहस्य) इस शरीर का (अन्तः स्वरूपं) भीतरी हिस्सा (बहिः स्यात्) शरीर से बाहर निकल आए तो (इयं अनुभवेच्छा) इसके सुखानुभव करने की इच्छा तो (दूरे आस्तां) दूर ही रहे (कः नाम पश्यति) कोई इसे देखेगा भी नहीं।

एवं पिशितपिण्डस्य क्षयिणोऽक्षयशङ्कृतः।

गात्रस्यात्मन्क्षयात्पूर्वं तत्फलं प्राप्य तत्त्यज॥५३॥

अन्वयार्थ- (एवं) इसप्रकार हे आत्मन! (क्षयिणः) नाश को प्राप्त होनेवाले (अक्षयशङ्कृतः) किन्तु अविनाशी सुख के कारणभूत (पिशितपिण्डस्य गात्रस्य) इस मांस के पिण्डरूप शरीर के

(क्षयात् पूर्वं) नाश होने से पहले (तत्फलं प्राप्य) इससे मोक्षरूपी फल को प्राप्त करके (तत् त्यज) इसको छोड़ दे।

आत्तसारं वपुः कुर्यास्तथात्मंस्तत्क्षयेऽप्यभीः।

आत्तसारेक्षुदाहेऽपि न हि शोचन्ति मानवाः॥५४॥

अन्वयार्थ- (हि) निश्चय से (यथा) जिसप्रकार (मानवाः) मनुष्य (आत्तसारेक्षुदाहे अपि) ग्रहण कर लिया है रसरूपी सार जिसका ऐसे ईख के छिलकों के जलाने में (न शोचन्ति) शोक नहीं करते हैं। (तथा) उसीप्रकार हे आत्मन! (त्वं) तू भी (आत्तसारं) गृहीतसार इस (वपुः) शरीर को (कुर्याः) कर ले; {यतः} जिससे तू (तत्क्षये अपि) इस शरीर के नाश होने पर भी (अभीः) भयरहित रहे।

अजस्रमास्रवन्त्यात्मन्दुर्मोचाः कर्मपुद्गलाः।

तैः पूर्णस्त्वमधोऽधः स्या जलपूर्णो यथा प्लवः॥५५॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (दुर्मोचाः) बड़े दुःख से अलग होनेवाले (कर्मपुद्गलाः) जो कर्मरूपी पुद्गल (अजस्रं) निरन्तर (आश्रवन्ति) आते हैं (तैः पूर्णः) उन कर्मों से परिपूर्ण भरा हुआ (त्वं) तू (जलपूर्णः प्लवः यथा) जल से भरी हुई नौका के समान (अधोऽधः स्याः) नीचे ही नीचे चला जाता है अर्थात् अधोगति को प्राप्त होता जाता है।

तन्निदानं तवैवात्मन्योगभावौ सदातनौ।

तौ विद्धि सपरिस्पन्दं परिणामं शुभाशुभम्॥५६॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (तन्निदानं) उस आस्रव के कारण (तव एव) तेरे ही (सदातनौ) अनादि काल से प्रवृत्त (योगभावौ स्तः) योग और आत्मा के कषायादिक भाव हैं, (त्वं) तू (सपरिस्पन्दं) आत्मा के प्रदेशों में चंचलतासहित (शुभाशुभं) शुभ और अशुभरूप (परिणामं) परिणाम को (तौ) योग और कषाय (विद्धि) जान।

आस्रवोऽयममुष्येति ज्ञात्वात्मन्कर्मकारणे।

तत्तन्निमित्तवैधुर्यादपवाह्योर्ध्वगो भव॥५७॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (अमुष्य) अमुक कर्म का (अयं आस्रवः) यह आस्रव है (इति ज्ञात्वा) इसप्रकार भली-भाँति जानकर (तत्तन्निमित्त वैधुर्यात्) कर्म के निमित्त के त्यागने से (कर्मकारणे) कर्म और कारणरूप आस्रव को (अपवाह्य) छोड़कर (ऊर्ध्वगः भव) ऊर्ध्वगामी हो अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर।

संरक्ष्य समितिं गुप्तिमनुप्रेक्षापरायणः।

तपः संयमधर्मात्मा त्वं स्या जितपरीषहः॥५८॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन्! (अनुप्रेक्षापरायणः) बारह भावनाओं में तत्पर (त्वं) तू (तपः संयमधर्मात्मा) तप-संयम और धर्मरूप होकर (समितिं गुप्तिं) समिति और गुप्तियों का (संरक्ष्य) पालन करता हुआ (जितपरीषहः) बाईस परीषहों का जीतनेवाला (स्याः) हो।

एवं च त्वयि सत्यात्मन्कर्मस्रवनिरोधनात्।

नीरन्ध्रपोतवद्भूया निरपायो भवाम्बुधौ॥५९॥

अन्वयार्थ- (च) और हे आत्मन्! (कर्मास्रवनिरोधनात्) कर्मों का आस्रव रुक जाने से (त्वयि एवं सति) तू इसप्रकार निरास्रव होने पर (नीरन्ध्रपोतवत्) छिद्ररहित नौका के समान तुम (भवाम्बुधौ) संसाररूपी समुद्र में (निरपायः भूयाः) निर्विघ्न हो जाओगे।

विकथादिवियुक्तस्त्वमात्मभावनयान्वितः।

त्यक्तबाह्यस्पृहो भूया गुप्त्याद्यास्ते करस्थिताः॥६०॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन्! (विकथादिवियुक्तः) विकथादि प्रमादों से रहित और (आत्मभावनयान्वितः) आत्मभावना से युक्त होकर (त्वं) तू (त्यक्त बाह्यस्पृहः भूयाः) बाह्य पदार्थों में वांछा रहित हो। (तथा सति) ऐसा होने पर (गुप्त्याद्याः) गुप्ति आदि (ते) तेरे (करस्थिताः स्युः) हाथ पर ही रखी हुई वस्तु की तरह हो जाएँगी।

एवमक्लेशगम्येऽस्मिन्नात्माधीनतया सदा।

श्रेयोमार्गे मतिं कुर्याः किं बाह्ये तापकारिणि॥६१॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन्! (एवं) इसप्रकार (सदा) हमेशा (आत्माधीनतया) आत्मा की स्वाधीनता से (अक्लेशगम्ये) सुलभ प्राप्त (अस्मिन्) इस (श्रेयोमार्गे) मुक्तिमार्ग में (मतिं कुर्याः) अपनी बुद्धि लगाओ। (तापकारिणि बाह्ये) दुःखदायी बाह्य मार्ग में {बुद्ध्याः} (किं प्रयोजनं) बुद्धि लगाने से क्या प्रयोजन?

शुष्कनिर्बन्धतो बाह्ये मुह्यतस्तव हृदयथा।

प्रत्यक्षितैव नन्वात्मन्प्रत्यक्षनिरयोचिता॥६२॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (बाह्ये) बाह्य पदार्थों में (शुष्कनिर्बन्धतः) निस्सार सम्बन्ध करके (मुह्यतः तव) मोह करते हुए तेरे (हृदयथा) हृदय में पीड़ा (प्रत्यक्षनिरयोचिता) प्रत्यक्ष नरक के समान (प्रत्यक्षिता एव) प्रत्यक्ष सिद्ध ही है।

रत्नत्रयप्रकर्षेण बद्धकर्मक्षयोऽपि ते।

आध्मातः कथमप्यग्निर्दाह्यं किं वावशेषयेत्॥६३॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (रत्नत्रयप्रकर्षेण) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की वृद्धि से (ते) तेरे (बद्धकर्मक्षयः अपि भवेत्) संचित कर्मों का भी नाश हो ही जाता है। जैसे (आध्मातः) धोंकनी से उद्दीप्त हुई (अग्निः) अग्नि (दाह्यं) दाह्य वस्तु को (किं) क्या (कथं अपि) किसी प्रकार (अवशेषयेत्) बाकी रहने देती है? बिलकुल नहीं रहने देती।

क्षयादनास्रवाच्चात्मन्कर्मणामसि केवली।

निर्गमे चाप्रवेशे च धाराबन्धे कुतो जलम्॥६४॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन! (कर्मणां) पूर्व संचित कर्मों के (क्षयात्) क्षय से (अनास्रवात् च) और आगामी आनेवाले कर्मों के निरोध से तू (केवली असि) केवली है। जैसे (धाराबन्धे) सरोवर में (जलस्य निर्गमे) पूर्व संचित जल के निकल जाने पर और (अप्रवेशे च) नवीन जल के नहीं आने पर (जलं) पानी (कुतः) कहाँ से {भवेत्} हो सकता है?

रत्नत्रयस्य पूर्तिश्च त्वयात्मन्सुलभैव सा।

मोहक्षोभविहीनस्य परिणामो हि निर्मलः॥६५॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन! (च) और तब (सा रत्नत्रयस्य पूर्तिः) वह रत्नत्रय की पूर्ति (त्वया सुलभा एव) तेरे लिए सुलभ ही है। (हि) निश्चय से (मोहक्षोभविविहीनस्य) मोह एवं क्षोभ से रहित जीव के (परिणामः) परिणाम (निर्मलः) निर्मल {भवति एव} ही होता है।

परिणामविशुद्ध्यर्थं तपो बाह्यं विधीयते।

न हि तण्डुलपाकः स्यात्पावकादिपरिक्षये॥६६॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (परिणामविशुद्ध्यर्थं) परिणामों की शुद्धि के लिए (बाह्यं तपः) बाह्य तप (विधीयते) करना चाहिए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (पावकादिपरिक्षये) अग्नि आदिक के बुझ जाने पर (तण्डुलपाकः न स्यात्) चावलों का पकना नहीं होता है।

परिणामविशुद्धिश्च बाह्ये स्यान्निःस्पृहस्य ते।

निःस्पृहत्वं तु सौख्यं तद्बाह्ये मुह्यसि किं मुधा॥६७॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (बाह्ये) बाह्य पदार्थों में (निःस्पृहस्य ते) इच्छा रहित होने से तेरे (परिणामविशुद्धिः स्यात्) परिणामों की विशुद्धि होगी (तु पुनः) और (निःस्पृहत्वं सौख्यं भवति) बाह्य पदार्थों में इच्छा न करना ही सुख है (तत्) इसलिए (बाह्ये) बाह्य पदार्थों में (किं) क्यों (मुधा) वृथा (मुह्यसि) मोह करता है?

गुप्तेन्द्रियः क्षणं वात्मन्नात्मन्यात्मानमात्मना।

भावयन्पश्य तत्सौख्यमास्तां निश्चेयसादिकम्॥६८॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (गुप्तेन्द्रियः) जितेन्द्रिय होकर (आत्मनि) आत्मा में (आत्मना) आत्मा के द्वारा (आत्मानं) आत्मा को (क्षणं भावयन्) क्षण मात्र अनुभवन करता हुआ (त्वं) तू (तत्सौख्यं पश्य) उस सुख को देख (निश्चयेसादिकं दूरे आस्तां) मोक्ष का सुख तो दूर ही रहने दे।

अनन्तं सौख्यमात्मोत्थमस्तीत्यत्र हि सा प्रमा।

शान्तस्वान्तस्य या प्रीतिः स्वसंवेदनगोचरा॥६९॥

अन्वयार्थ- (शान्तस्वान्तस्य) शान्त अन्तःकरणवाले पुरुषों को (स्वसंवेदनगोचरा) अपने अनुभव में आनेवाली (प्रीतिः) प्रीति ही (आत्मोत्थं) आत्मा से उत्पन्न (अनन्तं सौख्यं) अनन्त सुख है (हि) निश्चय से (इत्यत्र) इसमें (सा प्रमा) यही प्रमाण है।

प्रसारिताङ्घ्रिणा लोकः कटिनिक्षिप्तपाणिना।

तुल्यः पुंसोर्ध्वमध्याधोविभागत्रिमरुद्धतः॥७०॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (ऊर्ध्वमध्याधोविभागः) ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक-ये तीन विभाग हैं जिसके ऐसा और (त्रिमरुद्धतः) घनोदधिवातवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय-इन तीन वातवलयों से वेष्टित (प्रसारिताङ्घ्रिणा) पैर फैलाए हुए (कटिनिक्षिप्त-पाणिना) कमर पर हाथ रखा है जिसने ऐसे (पुंसा) पुरुष के (तुल्यः) समान (लोकः) {अस्ति} यह लोक है।

जन्ममृत्योः पदे ह्यात्मन्नसंख्यातप्रदेशके।

लोके नायं प्रदेशोऽस्ति यस्मिन्नाभूरनन्तशः॥७१॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (जन्ममृत्योः) जन्म-मरण के (पदे) स्थान-स्वरूप (असंख्यातप्रदेशके) असंख्यात प्रदेशरूप (लोके) इस लोक में (अयं प्रदेशः न अस्ति) ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है (यस्मिन्) जिस प्रदेश में (त्वं) तू (अनन्तशः) अनन्त बार (न अभूः) न जन्मा-मरा हो।

सत्यज्ञाने पुनश्चात्मन्पूर्ववत्संसरिष्यसि।

कारणे जृम्भमाणेऽपि न हि कार्यपरिक्षयः॥७२॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (अज्ञाने सति) मिथ्याज्ञान के होने पर (त्वं) तू (पूर्ववत्) पहले की तरह (पुनः च) फिर (संसरिष्यसि) संसार में घूमेगा।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कारणे जृम्भमाणे) कारण के वर्धमान रहने पर (अपि) क्या (कार्यपरिक्षयः) {भवति} कार्य नष्ट हो जाता है? {न भवति} अर्थात् कार्य कदापि नष्ट नहीं होता है।

यतस्व तत्तपस्यात्मन्मुक्त्वा मुग्धोचितं सुखम्।

चिरस्थाय्यन्धकारोऽपि प्रकाशे हि विनश्यति॥७३॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन! (मुग्धोचितं) मूढ़ पुरुषों के भोगने योग्य (सुखं) इन्द्रिय सुख को (मुक्त्वा) छोड़कर (तपसि यतस्व) तप करने में यत्न कर।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (प्रकाशे) प्रकाश होने पर (चिरस्थायी) चिरकाल से स्थित (अन्धकारः अपि) अन्धकार भी (विनश्यति) नष्ट हो जाता है।

भव्यत्वं कर्मभूजन्म मानुष्यं स्वङ्गवंश्यता।

दुर्लभं ते क्रमादात्मन्समवायस्तु किं पुनः॥७४॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन्! (ते) तेरा (भव्यत्वं) भव्यपना होना, (कर्मभूजन्म) कर्म भूमि में जन्म लेना, (मानुष्यं) मनुष्यपर्याय का पाना, (स्वङ्गवंश्यता) सुन्दर शरीर और अच्छे कुल में उत्पन्न होना-ये सब बातें (क्रमात्) क्रम से (दुर्लभं) उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं (तु) और (समवायः) इन सबका एक जगह मिलने पर तो (किं पुनः) बात ही क्या कहें?

व्यर्थः स समवायोऽपि तवात्मन्धर्मधीर्न चेत्।

कणिशोद्गमवैधुर्ये केदारादिगुणेन किम्॥७५॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन्! अब भी (चेत्) यदि (तव) तेरी (धर्मधीः न) धर्म में बुद्धि नहीं हुई तो (सः समवायः अपि व्यर्थः) पूर्वोक्त सब बातों का मिलना भी निष्फल है।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (कणिशोद्गमवैधुर्ये) अन्न के पौधों में अन्नयुक्त बालों के न निकलने पर (केदारादिगुणेन) खेत आदिक सामग्रियों के उत्तम होने से (किं) क्या प्रयोजन?

तदात्मन्दुर्लभं गात्रं धर्मार्थं मूढ कल्प्यताम्।

भस्मने दहतो रत्नं मूढः कः स्यात्परो जनः॥७६॥

अन्वयार्थ- (मूढ) हे मूढात्मन्! (तत्) इसलिए (दुर्लभं गात्रं) दुर्लभ शरीर को (धर्मार्थं) धर्म के लिए (कल्प्यतां) संकल्प कर दे।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (भस्मने) भस्म के लिए (रत्नं दहतः) रत्न को जलाने वाले पुरुष की अपेक्षा (परः) दूसरा (कः) कौन (जनः) मनुष्य (मूढः) मूर्ख (स्यात्) है?

देवता भविता श्वापि देवः श्वा धर्मपापतः।

तं धर्मं दुर्लभं कुर्या धर्मो हि भुवि कामसूः॥७७॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन (धर्मपापतः) धर्म और पाप से (श्वा अपि) कुत्ता भी (देवः) देव और (देवता) देवता (श्वा) कुत्ता (भविता) हो जाता है। इसलिए तू (दुर्लभं) दुर्लभ (तं) उस (धर्मं) धर्म को (कुर्याः) धारण कर। (हि) निश्चय से (भुवि) संसार में (धर्मः) धर्म (कामसूः) इच्छित कार्य को पुष्ट करनेवाला है।

भव्यस्याबाह्यचित्तस्य सर्वसत्त्वानुकम्पिनः।

करणत्रयशुद्धस्य तवात्मन्बोधिरेधताम्॥७८॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन (भव्यस्य) भव्य, (अबाह्यचित्तस्य) बाह्य पदार्थों में मानसिक वृत्तिरहित, (सर्वसत्त्वानुकम्पिनः) सम्पूर्ण जीवों पर दया करनेवाले और (करणत्रयशुद्धस्य) अधःकरण, अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरणरूप परिणामों से निर्मल (तव) तेरे (बोधिः एधतां) सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र की वृद्धि होवे।

पश्यात्मन्धर्ममाहात्म्यं धर्मकृत्यो न शोचति।

विश्वैर्विश्वस्यते चित्रं स हि लोकद्वये सुखी॥७९॥

अन्वयार्थ- (आत्मन्) हे आत्मन! (धर्ममाहात्म्यं पश्य) धर्म का माहात्म्य देख! (धर्मकृत्यः) धर्म-कार्य करनेवाला मनुष्य (न

शोचति) कभी शोक नहीं करता है और (विश्वैः विश्वस्यते) सब मनुष्य उसका विश्वास करते हैं। (हि) निश्चय से (चित्रं) आश्चर्य है (सः) वह (लोकद्वये) दोनों लोकों में (सुखी भवति) हमेशा सुखी रहता है।

तवात्मन्नात्मनीनेऽस्मिज्जैनधर्मेऽतिनिर्मले।

स्थवीयसी रुचिः स्थेयादामुक्तेर्मुक्तिदायिनी॥८०॥

अन्वयार्थ- हे आत्मन! (आमुक्तेः) जबतक मुक्ति न हो तबतक (आत्मनीने) आत्मा का हित करनेवाले (अतिनिर्मले) अत्यन्त निर्मल (अस्मिन् जैनधर्मे) इस जैनधर्म में (तव) तेरी (स्थवीयसी) स्थिर (मुक्ति-दायिनी) मुक्ति को देनेवाली (रुचिः स्थेयात्) श्रद्धा होवे।

इत्यनुप्रेक्षया चासीदक्षोभ्यास्य विरक्तता।

व्यवस्था हि सतां शैली साहाय्येऽप्यत्र किं पुनः॥८१॥

अन्वयार्थ- (इति) इसप्रकार (अनुप्रेक्षया) बारह भावनाओं के चिन्तन करने से (अस्य) इन जीवन्धर महाराज का (विरक्तता) वैराग्य भाव (अक्षोभ्या) स्थिर (आसीत्) हो गया।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से (सतां) सज्जन पुरुषों की (शैली) किसी कार्य के प्रारम्भ करने की प्रवृत्ति (व्यवस्था स्यात्) व्यवस्थित/निश्चित हुआ करती है और (अपि) यदि (अत्र साहाय्ये) इसमें सहायता मिल जाए तो (किं पुनः वक्तव्यं) फिर कहना ही क्या है?

विरक्तो राज्यमन्यच्च न तृणायाप्यमन्यत।
हस्तस्थेप्यमृते को वा तिक्तसेवापरायणः॥८२॥

अन्वयार्थ- (विरक्तः) फिर संसार के विषयों से विरक्त राजा जीवन्धरकुमार ने (राज्यं) अपने राज्य को (अन्यत् च) और सब पदार्थों को (तृणाय अपि) तृण के समान भी (न अमन्यत) नहीं समझा।

[अत्र नीतिः] निश्चय से (हस्तस्थे) हाथ में रखे हुए (अमृते अपि) अमृत के होने पर भी (कः वा) कौन बुद्धिमान पुरुष (तिक्तसेवापरायणः स्यात्) कड़वी वस्तु के सेवन करने में तत्पर होगा? कोई भी नहीं।

ततस्तस्माद्विनिर्गत्य सम्पूज्य परमेश्वरम्।
योगीन्द्रादश्रृणोद्धर्ममधीती जिनशासने॥८३॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर (जिनशासने अधीती) जैन शास्त्रों के जाननेवाले उन जीवन्धरकुमार ने (तस्मात् विनिर्गत्य) वहाँ से निकलकर (परमेश्वरं सम्पूज्य) जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके (योगीन्द्रात्) किसी ऋद्धिधारी मुनि से (धर्मं अश्रृणोत्) धर्मश्रवण किया।

धर्मश्रुतेर्बभूवायं धार्मविद्योऽतिनिर्मलः।
अत्युत्कटो हि रत्नांशुस्तज्जवेकटकर्मणा॥८४॥

अन्वयार्थ- फिर (धर्मश्रुतेः) धर्म का स्वरूप सुनने से (अयं) ये राजा जीवन्धरकुमार (अति निर्मलः) अत्यन्त निर्मल (धार्मविद्यः बभूव) धर्म विद्या के जाननेवाले हो गए।

[अत्र नीतिः] (हि) निश्चय से जिसप्रकार (रत्नांशुः) रत्नों की किरणों (तज्जवेकटकर्मणा) रत्न को शाण पर रखनेवाले चतुर मनुष्य की चमक लाने की चतुराई से (अत्युत्कटः अभूत) अत्यन्त उज्ज्वल हो जाती हैं; उसी प्रकार जीवन्धरकुमार धर्म का स्वरूप सुनने से और अधिक तत्त्वज्ञाता हो गए।

पुनश्चारणयोगीन्द्रः पूर्वजन्मबुभुत्सया।

भूपेन परिपृष्टोऽयमाचष्टास्य पुराभवम्॥८५॥

अन्वयार्थ- (पुनः च) फिर (पूर्वजन्मबुभुत्सया) अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त को जानने की इच्छा से (भूपेन) राजा द्वारा (परिपृष्टः) पूछे गए प्रश्न का (अयं चारणयोगीन्द्रः) उन चारण ऋषिधारी मुनिराज ने (अस्य पुराभवं) जीवन्धरकुमार के पूर्वजन्म का वृत्तान्त (आचष्ट) इस प्रकार कहा।

भूपेन्द्र धातकीखण्डे भूम्यादितिलके पुरे।

सूनुः पवनवेगस्य राज्ञोऽभूस्त्वं यशोधरः॥८६॥

अन्वयार्थ- (भूपेन्द्र) हे राजन! (धातकीखण्डे) धातकी खण्ड नाम के द्वीप में (भूम्यादितिलके पुरे) भूमितिलक नाम के नगर में (त्वं) तुम (राज्ञः पवनवेगस्य) राजा पवनवेग के (यशोधरः सूनुः अभूः) यशोधर नाम के पुत्र थे।

राजहंस कदाचित्त्वं राजहंसस्य शावकम्।
नीडात्क्रीडार्थमानीय निरवद्यमवीवृधः॥८७॥

अन्वयार्थ- (राजहंस) हे राजश्रेष्ठ! (त्वं) तुमने (कदाचित्) किसी समय (राजहंसस्य शावक) हंस के बच्चे को (क्रीडार्थ) खेलने के लिए (नीडात् आनीय) घोंसले से लाकर (निरवद्यं यथा स्यात् तथा अवीवृधः) उसका निर्दोषता से पालन-पोषण किया।

तत्कुतोऽपि समाकर्ण्य धार्मविद्यः स ते पिता।
तदा धर्ममुपादिक्षद्यतोऽभूरतिधार्मिकः॥८८॥

अन्वयार्थ- (तदा) उस समय (सः) उस (ते) तुम्हारे (धार्मविद्यः) धर्मात्मा (पिता) पिता ने (तत् कुतः अपि) यह बात कहीं से (समाकर्ण्य) सुनकर तुमको (धर्म उपादिक्षत्) धर्म का उपदेश दिया; (यतः) जिस उपदेश के सुनने से (त्वं) तुम (अतिधार्मिकः अभूः) अत्यन्त धर्मात्मा बन गए।

निवारितोऽपि पित्रा त्वमतिनिर्वेदतस्ततः।
जातरूपधरो जातः स्त्रीभिरष्टाभिरन्वितः॥८९॥

अन्वयार्थ- (ततः) फिर (पित्रा) पिता से (निवारितः अपि) रोके हुए भी (त्वं) तुम (अतिनिर्वेदतः) अत्यन्त वैराग्य के कारण (अष्टाभिः स्त्रीभिः अन्वितः) आठ स्त्रियों सहित (जातरूपधरः जातः) दिगम्बर मुनि एवं तुम्हारी स्त्रियाँ आर्यिका हो गयीं।

घोरेण तपसा लब्ध्वा देवत्वं च त्रिविष्टपात्।
अष्टाभिः स्त्रीभिरेताभिरत्राभूर्भव्यपुङ्गव॥९०॥

अन्वयार्थ- (भव्यपुङ्गव) हे भव्य श्रेष्ठ! फिर (त्वं) तुम (घोरेण तपसा) घोर तपश्चरण के द्वारा (देवत्वं च लब्ध्वा) देवपर्याय को प्राप्त कर (त्रिविष्टपात्) फिर उस स्वर्ग से चयकर (अत्र) यहाँ पर (एताभिः अष्टाभिः स्त्रीभिः सह) इन आठ स्त्रियों के साथ (अभूः) उत्पन्न हुए हो।

स्वपदाद्वालहंसस्य पितृभ्यां च पुराभवे।

वियोजनाद्वियोगस्ते बन्धोऽभूदिव बन्धनात्॥९१॥

अन्वयार्थ- इसलिए (पुराभवे) पूर्वजन्म में (बालहंसस्य) हंस के बच्चे को (स्वपदात्) उसके स्थान (पितृभ्यां च) और माता-पिता से (वियोजनात्) वियोग करने से (ते वियोगः) तुम्हारा स्थान और माता-पिता से वियोग और (बन्धनात्) उस बच्चे को पिंजरे में बन्द कर रोकने से (बन्धः अभूत्) तुम्हारा बन्धन हुआ।

इति योगीन्द्रवाक्येन भोगीव पविपाततः।

भीतो राज्यादयं राजा प्रणम्य स्वपुरीमयात्॥९२॥

अन्वयार्थ- (इति योगीन्द्रवाक्येन) इसप्रकार मुनि के वचनों से (पविपाततः) बिजली के गिरने से (भीतः भोगी इव) डरे हुए सर्प की तरह (राज्यात् भीतः) राज्य से भयभीत (अयं राजा) ये राजा जीवन्धरकुमार (प्रणम्य) मुनि को नमस्कार कर (स्वपुरीं अयात्) अपनी नगरी में आ गए।

सद्धर्मामृतपानेन सानुजास्तस्य वल्लभाः।

विषप्रख्यममन्यन्त तत्सौख्यं विषयोद्भवम्॥९३॥

अन्वयार्थ- (सानुजाः) इनके छोटे भाई सहित (तस्य वल्लभाः) उनकी आठों स्त्रियों ने (सद्धर्मामृतपानेन) धर्मरूपी अमृत का पान करने से (विषयोद्भवं सौख्यं) पंचेन्द्रियों के विषय से उत्पन्न सुख को (विषप्रख्यं अमन्यन्त) विष के समान समझा।

तत्र गन्धर्वदत्तायाः पुत्रं सत्यंधराह्वयम्।

अभिषिच्य ततस्ताभिः प्रापदास्थायिकां कृती॥९४॥

अन्वयार्थ- (तत्र) वहाँ पर (कृती) बुद्धिमान राजा जीवन्धरकुमार ने (गन्धर्वदत्तायाः) अपनी रानी गन्धर्वदत्ता के (सत्यंधराह्वयं) सत्यन्धर नाम के (पुत्रं) पुत्र को (अभिषिच्य) राज्याभिषेक करके राज्य सौंप कर (ततः) फिर (ताभिः सह) अपनी आठों स्त्रियों के साथ स्वयं (आस्थायिकां प्रापत्) भगवान के समवशरण में पहुँचे।

श्रीसभायां समभ्येत्य श्रीवीरं जिननायकम्।

पूजयामास पूज्योऽयमस्तावीच्च पुनः पुनः॥९५॥

अन्वयार्थ- फिर (अयं पूज्यः) इन पूज्य जीवन्धरकुमार ने (श्रीसभायां समभ्येत्य) समवशरण की धर्मसभा में पहुँच कर (जिननायकं श्रीवीरं) जिनेन्द्र श्री महावीर स्वामी की (पूजयामास) पूजा की और (पुनः पुनः अस्तावीत्) बारम्बार उनका स्तवन किया।

भगवन्भवरोगेण भीतोऽहं पीडितः सदा।

त्वय्यकारणवैद्योऽपि सह्या किं तस्य कारणा॥९६॥

अन्वयार्थ- (भगवान्) हे भगवन्! (अहं) मैं (भवरोगेण) संसार के जन्म-मरण के रोग से (सदा) अनादिकाल से (पीडितः) पीड़ित {च} और (भीतः) भयभीत {अस्मि} हूँ। {अधुना} (त्वयि अकारणवैद्ये) {सति} (अपि) आपके अकारण वैद्य होने पर भी (तस्य कारणा) उसकी वेदना (सह्या किम्) क्या सहने योग्य है? अर्थात् आप इस वेदना को शीघ्र ही नष्ट करें।

त्वं सार्वः सर्वविद्देव सर्वकर्मणि कर्मठः।

भव्यश्चाहं कुतो वा मे भवरोगो न शाम्यति॥९७॥

अन्वयार्थ- (देव) हे देव! (त्वं) आप (सार्वः) सबके हित करनेवाले (सर्ववित्) सब कुछ देखने-जाननेवाले और (सर्वकर्मणि कर्मठः) सभी कर्मों के करने में शूरवीर {असि} हो {च} और (अहं) मैं (भव्यः) भव्य हूँ तो (मे भवरोगः) मेरा संसार का रोग (कुतः वा न शाम्यति) क्यों शान्त नहीं होता?

निर्मोह मोहदावेन देहजीर्णोरुकानने।

दह्यमानतया शश्वन्मुह्यन्तं रक्ष रक्ष माम्॥९८॥

अन्वयार्थ- (निर्मोह) हे मोहरहित वीतराग जिनेन्द्र! (देहजीर्णोरु-कानने) देहरूपी बहुत पुरानी गहन अटवी में (मोहदावेन) मोहरूपी दावानल से (दह्यमानतया) जलने के कारण (शश्वत् मुह्यन्तं) निरन्तर विवेकरहित (मां) मेरी (रक्ष रक्ष) रक्षा करो, रक्षा करो।

संसारविषवृक्षस्य सर्वापत्फलदायिनः।

अंकुरं रागमुन्मूलं वीतराग विधेहि मे॥९९॥

अन्वयार्थ- (वीतराग) हे वीतराग! (सर्वापत्फलदायिनः) सर्व प्रकार की विपत्तिरूपी फल को देनेवाले (संसारविषवृक्षस्य) संसाररूपी विषवृक्ष के (अंकुरं) अंकुर के समान (मे रागं) मेरे रागभाव को (उन्मूलं विधेहि) जड़ से रहित कर दो।

कर्णधार भवार्णोधेर्मध्यतो मज्जता मया।

कृच्छ्रेण बोधिनीर्लब्धा भूयान्निर्वाणपारगा॥१००॥

अन्वयार्थ- (कर्णधार) हे सच्चे खेवटिया भगवान! (भवार्णोधेः मध्यतः) संसाररूपी समुद्र के मध्य में (मज्जता मया) डूबते हुए मेरे द्वारा (कृच्छ्रेण लब्धा) बड़ी कठिनाई से प्राप्त की हुई (बोधिनीः) रत्नत्रयरूपी नौका (निर्वाणपारगा भूयात्) मुझे मोक्षरूपी पार पर पहुँचानेवाली होवे।

इति स्तोत्रावसाने च लब्ध्वायं त्रिजगद्गुरोः।

अनुज्ञां जिनदीक्षायामानमद्गणनायकम्॥१०१॥

अन्वयार्थ- (इति त्रिजगद्गुरोः) इसप्रकार तीन जगत के स्वामी महावीर तीर्थंकर के (स्तोत्रावसाने) स्तवन के अन्त में (अयं) इन्होंने (अनुज्ञां लब्ध्वा) आज्ञा पाकर (जिनदीक्षायां) जिनदीक्षा लेने के प्रारम्भ में (गणनायकं) गणधरदेव को (आनमत्) नमस्कार किया।

प्राज्ञः प्रव्रज्य तत्पार्श्वं तपस्तेपेऽतिदुश्चरम्।

येन कर्माष्टकस्यापि नष्टता स्याद्यथाक्रमम्॥१०२॥

अन्वयार्थ- फिर (प्राज्ञः) बुद्धिमान राजा ने (प्रव्रज्य) दीक्षा ग्रहण करके (तत्पार्श्वं) महावीरस्वामी के निकट (अतिदुश्चरं तपः) बहुत

कठोर तप (तेपे) किया (येन) जिस तप के द्वारा (कर्माष्टकस्य) आठ कर्मों का (नष्टता) नाश (यथाक्रमं स्यात्) यथाक्रम से होता है।

श्रीरत्नत्रयपूर्त्याथ जीवन्धरमहामुनिः।

अष्टाभिः स्वगुणैः पुष्टोऽनन्तज्ञानसुखादिभिः॥१०३॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (जीवन्धरमहामुनिः) वे जीवन्धर महामुनि (श्रीरत्नत्रयपूर्त्या) पवित्र सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की परिपूर्णता से (अनन्तज्ञानसुखादिभिः) अनन्तज्ञान-सुखादिक (अष्टाभिः स्वगुणैः) आत्मा के आठ स्वाभाविक गुणों से (पुष्टः अभूत्) पुष्ट हुए।

सिद्धो लोकोत्तराभिख्यां केवलाख्यामकेवलाम्।

अनुपमामनन्तां तामनुबोभूयते श्रियम्॥१०४॥

अन्वयार्थ- फिर (सिद्धः भूत्वा) सिद्ध पदवी को प्राप्त कर (लोकोत्तरा-भिख्यां) अलौकिक (अनुपमां) उपमारहित (तां) उस (अनन्तां) अनन्त (केवलाख्यां) अनन्य (अकेवलां श्रियं) मुख्य मोक्षरूपी लक्ष्मी का (अनुबोभूयते) अनुभव किया।

एवं निर्मलधर्मनिर्मितमिदं शर्म स्वकर्मक्षय-

प्राप्तुं प्राप्तमतुच्छमिच्छतितरां यो वा महेच्छो जनः।

सोऽयं दुर्मतकुञ्जरप्रहरणे पञ्चाननं पावनं

जैनं धर्ममुपाश्रयेत मतिमान्निश्चयेः प्राप्तये॥१०५॥

अन्वयार्थ- (य वा महेच्छः जनः) जो उत्तम सहृदय पुरुष (एवं) इसप्रकार (निर्मलधर्मनिर्मितं) पवित्र धर्म से रचित (स्वकर्मक्षयप्राप्तं) आत्मा के अष्टकर्मों के नाश होने से प्राप्त (अतुच्छं) महान (इदं शर्म) इस सुख को (प्राप्तुं) प्राप्त करने की (इच्छतितरां) इच्छा करता है (सः अयं मतिमान्) वही बुद्धिमान पुरुष (निश्चेयसः प्राप्तये) मोक्ष की प्राप्ति के लिए (दुर्मतकुञ्जरप्रहरणे) मिथ्यामत रूपी हस्तियों के नाश करने के लिए (पञ्चाननं) सिंह के समान पवित्र (जैनं धर्मं) जिनधर्म को (उपाश्रयेत) धारण करे।

राजतां राजराजोऽयं राजराजो महोदयैः।

तेजसा वयसा शूरः क्षत्रचूडामणिर्गुणैः॥१०६॥

अन्वयार्थ- (गुणैः क्षत्रचूडामणिः) राजा के गुणों से क्षत्रियों के शिरोभूषण (तेजसा) तेज (च) और (वयसा) युवावस्था से (शूरः) शूरवीर (महोदयैः) महान ऐश्वर्य से (राजराजः) कुबेर के समान (अयं राजराजः) राजाओं के राजा जीवन्धर महाराज निरन्तर (राजतां) शोभायमान होवें।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ
एकादशो लम्बः समाप्तः।

इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ समाप्तः।

